Title

" बांगरू लोकगीतों का अनुशीलन "

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की
पी. एच. डी. उपाधि के लिये

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

निर्देशक :-
डा. दयाशंकर शुक्ल
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
बड़ौदा.

Kum. Laxmi Bhagirath Beniwal

प्रस्तुतकर्त्री :-
लक्ष्मी बैनीवाल

हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय
बड़ौदा.
जून १९८९

"आमुख" Preface

" बांगरू लोकगीतों का अनुशीलन "

लोक साहित्य में जन सामान्य की सरलता, सहजता और स्वाभाविकता अभिव्यक्ति पाती है । इसमें कृत्रिमता व आडम्बर का अभाव रहता है । लोक-साहित्य में जीवन की सर्वांगीणता विद्यमान है । वह हमारी परम्परा को अपने में संजोये रखता है । लोक-साहित्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक रूप में वाणी द्वारा प्राप्त होता है । हमारे पूर्वजों के संस्कार, रहन-सहन, सोच-विचार सभी कुछ जनमानस के कंठों पर लोकगीतों के रूप में विराजमान हैं । लोक-साहित्य में सदियों से प्रचलित जातीय तत्त्व, रीति-रिवाज, अंध-विश्वास, सभ्यता, संस्कृति, व्यवसाय आदि का सम्यक् निरूपण मिलता है । यह हमारी संस्कृति की आत्मा और समाज का दर्पण है । लोक साहित्य का रचयिता देशकाल के बन्धनों से परे होता है । उसके हृदय की गहराइयों से निकले भावों से लोक-साहित्य का निर्माण होता है, जो शिष्ट साहित्य से कहीं ऊँचा उठ जाता है । सामान्य जनता की सुख-दु:खमयी हर्षोल्लास और अवसादपूर्ण मन:स्थिति का चित्रण लोक-साहित्य में होता है । इसमें लोक-जीवन की अभिव्यक्ति जितनी सच्चाई और गहराई से अभिव्यक्त होती है उतनी साहित्य में नहीं । हमारी संस्कृति का बीज लोक साहित्य में सुरक्षित है । भारतीय संस्कृति को संजोकर रखने का श्रेय लोक साहित्य को ही है, जिसके कारण संस्कृति की सत्ता आज भी स्थापित है । जब मनुष्य पढ़ना-लिखना नहीं जानता था, तभी से लोक में संस्कृति का निर्माण हो रहा था । कबीर की उक्ति 'मसि कागज छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ' लोकमानस पर अक्षरश: सत्य सिद्ध होती है । मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी लोकमानस शिक्षा लेता

और देता रहता है । लोक जिह्वा में विराजमान होने के कारण यह शीघ्र कण्ठस्थ होता है । विश्व के सम्पूर्ण वाङ्•मय के निर्माण के मूल में लोक विद्यमान है । कल्पना,भावना और कथानक लोकमानस के मस्तिष्क की उपज है । संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यों का कथानक लोक-प्रचलित कथाओं के आधार पर निर्मित है । आदिम मानव की अभिव्यक्ति को विश्व की साहित्यिक कृतियों में स्थान मिला है । हमारे घरों में प्रचलित मान्यताएं, जादू,टोने-टोटके, नज़र,झाड़ू-फूंक आदि उसी आदिम लोकजीवन के अवशेष हैं । मानवीय सुख-दु:ख, प्रणय,शृंगार, श्रद्धा-भक्ति,रौद्र-वीर और भय आदि मनोविकारों का सजीव चित्रण इन लोकगीतों में होता है । इसके अतिरिक्त प्रदेश-विशेष के रीति-रिवाज व्रत-उपवास,रहन-सहन, आस्था-विश्वास,धार्मिक व आनुष्ठानिक क्रियाएं इनमें अंकित होती हैं ।

लोक साहित्य का सांस्कृतिक एकता की स्थापना में भी अमूल्य योगदान है । मानव मस्तिष्क की मूलभूत एकता के इसमें दर्शन होते हैं । विश्व के लोक-साहित्य का अध्ययन करने पर इनके मूल में अद्भुत एकता देखकर आश्चर्य होता है । सर्वत्र एक जैसे भाव हैं, एक जैसी अनुभूतियां हैं । प्रकृति,पशु-पक्षी, मान्यता-विश्वासों आदि में भी समानता पाई जाती है । यही मूल एकता है जो ऊपरी तौर पर अलग-अलग आभासित होते हुए भी मानव को मानव के निकट रखती है, उनमें परस्पर सहानुभूति बनाये रखती है । लोक-साहित्य का ऊपरी कलेवर यद्यपि भिन्न है, तथापि उसमें प्रवाहित आन्तरिक भावों में समानता मिलती है ।

लोक गीत तथा लोककथाएं मुझे बचपन से ही आकर्षित करती रहीं और उन्होंने मुझे इस तरह अपने में बांध लिया कि एम•ए• करने के उपरान्त इच्छा हुई कि क्यों न अपनी मिट्टी की गंध से सने और विविध रंगों से रंगे

इन लोकगीतों को अपने शोध का विषय बनाऊँ और देखूँ इनकी गहराई में जाकर कि ये कितनी दूर तक हमसे जुड़े हैं, हमें प्रस्तुत करते हैं, हमारे जीवन को अभिव्यक्ति देते हैं, हमारे इतिहास और भूगोल के साक्षी बनते हैं । यही है इस विषय चयन की मेरी प्रेरणा । और यही कारण था कि गुजरात राज्य में रहते हुए भी अपनी जन्मभूमि से सम्पर्क का मोह त्यागा नहीं गया और अन्तत: बांगरू लोकगीतों के अनुशीलन का कार्य शोध के रूप में आरम्भ किया गया ।

किसी भी देश के विकास की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेखा, सामाजिक बोध की एक-एक अवस्था, जन-साधारण की आशा, हर्ष-विषाद, चिन्तन-मनन आदि की सजीव अभिव्यक्ति लोक साहित्य में होती है । उस देश की राष्ट्रीय, जातीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक गतिविधि का ज्ञान लोक साहित्य से होता है । इसी अपरिमेय गुण के कारण लोक साहित्य लोक संस्कृति का पर्याय माना जाने लगा है । यही कारण है कि लोक साहित्य साहित्यिक विद्वानों, विवेचनकर्ताओं और नृतत्ववेत्ताओं का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है । विश्व के समस्त देशों में लोक साहित्य के संकलन का कार्य जोर शोर से चल रहा है । सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वानों ने लोक साहित्य सम्बंधी अनुसंधान कार्य को आरम्भ किया था । उन्होंने लोक साहित्य का संग्रह करके उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया है । भारतवर्ष में अंग्रेजों के शासनकाल में ही लोक साहित्य के संकलन का कार्य आरम्भ हो गया था । जनमानस की तहों में छिपे लोक तत्वों को उजागर करना इसका मुख्य उद्देश्य था । बीसवीं शताब्दी में आंग्ल भाषियों के प्रयासों से अनुप्रेरित होकर भारतीय मनीषी लोक साहित्य के अध्ययन में संलग्न हुए । सभी प्रान्तों में अलग-अलग बोलियों में कार्य प्रकाश में आने लगा । परिणामत: अवधी, ब्रज, कन्नौजी, गुजराती, बंगला, मराठी, पंजाबी, राजस्थानी, हरियाणवी, कश्मीरी, गढ़वाली आदि सभी बोलियों में

लोक साहित्य पर कार्य हुआ है । भारत में हुए लोक साहित्य सम्बंधी शोधपूर्ण कार्य का अवलोकन करने पर एक बात सामने आती है कि इसमें मात्र संग्रह की अधिकता है, वैज्ञानिक विवेचन की कमी है । लोक साहित्य की सभी विधाओं में सर्वाधिक संग्रह व शोधपूर्ण कार्य लोकगीतों पर हुआ है । जन-मानस की वाणी में विराजमान लोकगीतों को काल के गर्भ में कवलित होने से बचाने के सतत् प्रयास किये जा रहे हैं । हरियाणा में लोक-साहित्य पर अपेक्षाकृत कम कार्य हुआ है । डॉ0 शंकरलाल यादव का शोध प्रबन्ध 'हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य' इसमें प्रमुख है । लोकगीतों के कुछ संग्रह हैं । प्रस्तुत प्रबंध के द्वारा इस रिक्तता का यदि किंचित् भी निराकरण हो सका तो यह प्रयास सफल समझा जायेगा । प्रस्तुत प्रबंध सात अध्यायों में विभक्त है । अन्त में परिशिष्ट की योजना है ।

प्रथम अध्याय में लोक साहित्य के स्वरूप की चर्चा की गई है । इसके छ: खण्ड किये गये हैं । प्रथम खण्ड में 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए लोक-साहित्य की परिभाषा एवं व्याख्या पर प्रकाश डाला गया है । 'लोक' व्यापक सत्ता का प्रतीक है । इसमें वह समस्त मानव समाज समाविष्ट हो जाता है जो आडम्बरमयी विलासिता से दूर स्वाभाविक व प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता है ।

द्वितीय खण्ड में लोक साहित्य को परिभाषित और व्याख्यायित किया गया है । लोक साहित्य शब्द 'फोकलोर' का समवर्ती शब्द है, जिसके अन्तर्गत लोकजीवन में व्याप्त समस्त मानसिक एवं क्रियात्मक विषयों का विवेचन हुआ है । हमारे शिष्ट साहित्य के पल्लवित वृक्ष की मूल लोकमानस की भाव-भूमि से ही जीवन तत्व ग्रहण करती है ।

लोकजीवन में व्याप्त समस्त मानसिक एवं क्रियात्मक विषयों का विवेचन हुआ है । हमारे शिष्ट साहित्य के पल्लवित वृक्ष की मूल लोकमानस की भावभूमि से ही जीवन तत्व ग्रहण करती है ।

तृतीय खण्ड में लोक साहित्य की परम्परा स्पष्ट की गई है - प्राचीन से अर्वाचीन तक । लोक साहित्य की धारा प्राचीन काल से आज तक निरन्तर चली आ रही है, जो हमारे प्राचीन समाज और आज के समाज को जोड़ने वाली कड़ी है ।

चतुर्थ खण्ड में लोक साहित्य की विशेषताओं एवं महत्व को प्रतिपादित किया गया है । लोक साहित्य में सामान्य जन-जीवन के अखण्ड सत्यों का उद्घाटन किया गया है । लोक साहित्य के निम्नलिखित महत्वों की विवेचना की गई है -- ऐतिहासिक महत्व, भौगोलिक महत्व, सामाजिक महत्व, धार्मिक महत्व, आर्थिक-महत्व, नैतिक महत्व, सांस्कृतिक महत्व, भाषा शास्त्रीय महत्व और साहित्यिक-महत्व । महत्ता के प्रत्येक धरातल पर लोक साहित्य को रखकर उसकी सम्यक् समीक्षा की गई है ।

पंचम खण्ड में लोक साहित्य का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । लोक साहित्य को आठ वर्गों में विभक्त करके उनका विवेचन प्रस्तुत किया गया है । ये वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है - लोकगीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक उक्तियां, लोक विश्वास, लोक नाट्य, मुहावरे और पहेलियां ।

षष्ठ खण्ड में लोक साहित्य और साहित्य के विभेदक तत्वों को उद्घाटित किया गया है । दोनों में जहां अनेक समानताएं हैं, वहां असमानताएं भी हैं ।

द्वितीय अध्याय के दो भाग हैं, जिनमें प्रथम भाग को चार खण्डों और द्वितीय भाग को चार खण्डों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम भाग के प्रथम खण्ड में लोकगीत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसकी परिभाषा दी गई है । लोकगीत जनमानस की हर्ष-विषादमयी भावनाओं का व्यक्त रूप है ।

द्वितीय खण्ड में लोकगीतों की सार्वभौम प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है । इनमें समूह की प्रधानता, मौखिकता, भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति, पुनरावृत्ति की अधिकता, टेक की प्रवृत्ति आदि मुख्य हैं ।

तृतीय खण्ड में लोकगीत और कलागीत के अन्तर व साम्य को स्पष्ट किया गया है । दोनों गीत की श्रेणी में आते हैं । इनका अन्तर इतना सूक्ष्म है कि कहीं-कहीं ये एक -दूसरे को स्पर्श करते से लगते हैं ।

चतुर्थ खण्ड में लोकगीतों की भारतीय परम्परा का दिग्दर्शन किया गया है । इसका मूल ज्ञात होते हुए भी अज्ञात है जिस प्रकार किसी नदी का उद्गम-स्थल निश्चित रूप से ढूंढ पाना कठिन है ।

द्वितीय अध्याय के दूसरे भाग को चार खण्डों में विभक्त किया गया है जिसमें प्रथम खण्ड में हरियाणा प्रदेश की ऐतिहासिकता का वर्णन है । यहां का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है । इसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है ।

द्वितीय खण्ड में हरियाणा के नामकरण व क्षेत्र विस्तार को विवेचित किया गया है । इसका नामकरण हरेभरे वन प्रदेश के कारण हुआ । हरियाणा का क्षेत्र-विस्तार वही है जो भौगोलिक मानचित्र में दिया गया है ।

तृतीय खण्ड में हरियाणा की विभिन्न उप बोलियों के विषय में

बताया गया है । ये उप बोलियां मेवाती, अहीरवाटी,शेखावटी और बागड़ी हैं जो मूलत: राजस्थान की बोलियां हैं, लेकिन हरियाणा के सीमावर्ती भागों में भी बोली जाती हैं ।

चतुर्थ खण्ड में बांगरू बोली के नामकरण के विषय में विवेचना प्रस्तुत करते हुए इसके क्षेत्र का विस्तार दिया गया है । "बांगर" शब्द में सम्बन्धवाची "उ" प्रत्यय लगाकर "बांगरू" शब्द बना है ।

तृतीय अध्याय में बांगरू लोकगीतों में प्रचलित संस्कार विषयक लोकगीतों की चर्चा विस्तार से की गई है । भारतीय संस्कृति में संस्कार अतुलनीय महत्त्व रखते हैं । जीवन के प्राथमिक चरण से अन्तिम चरण तक कुछ विशेष नीतियों का पालन ही संस्कार है । परम्परा से चले आने वाले जन्म,विवाह व मृत्यु संस्कारों का समग्र चित्रण इन लोकगीतों में हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय में बांगरू बोली के धार्मिक गीतों का अवलोकन किया गया है । समस्त भारतीय जीवन धर्म से अनुप्राणित है । "धर्म" शब्द अत्यन्त व्यापक एवं विराट है । "धर्म" उन शाश्वत सिद्धान्तों के समुदाय को कह सकते हैं । जिनके द्वारा मानव समाज सन्मार्ग में प्रवृत होकर तथा उन्नतिशील बनकर अपने अस्तित्व को धारण करता है । बांगरू लोकगीतों में विभिन्न देवी,देवताओं, लोक-देवताओं,प्रकृति पूजा और व्रतोपवास का विधान मिलता है ।

पंचम अध्याय में विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले ऋतुगीतों को समग्रतया विवेचित करने का प्रयास किया गया है । इन ऋतुगीतों से जनमानस तरंगायित हो विभिन्न ऋतुओं में ~~जनमानस~~ अपने मनोरंजनार्थ लोकगीत गाता है जिनमें उसके जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्तिहोती है ।

षष्ठ अध्याय में विविध गीत संकलित और विवेचित हैं जिनमें कृषि विषयक गीत, राजनैतिक प्रभाव के गीत, सैनिक विषयक गीत और अन्य गीतों का समावेश हो जाता है । इसके अतिरिक्त पनघट, फैशन, हुचकी, चरखा के गीत भी इसमें विवेचित हैं ।

सप्तम अध्याय में लोकगीतों की काव्यात्मकता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । लोकगीतों की मुख्य विशेषता उसकी सरलता, स्वाभाविकता और सहजता है । अनायास ही इसमें साहित्य के तत्वों का समावेश हो गया है, जिसमें कहीं-कहीं कविता का अपूर्व सौन्दर्य लहरा उठा है । इसमें अनेक स्थलों पर अलंकार, रस आदि की सुन्दर समायोजना हुई है । भाषा शैली, बिम्ब, प्रतीक सभी की अवस्थिति इन लोकगीतों में मिलती है । अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सहायक ग्रन्थों व पत्रिकाओं की सूची दी गई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पूर्ण प्रामाणिक एवं व्यापक बनाने के लिए अनेक पुस्तकालयों का अध्ययन किया गया । इनमें बड़ौदा का केन्द्रिय पुस्तकालय, दिल्ली का लोक सभा पुस्तकालय, रोहतक का ज़िला पुस्तकालय, हिसार का ज़िला पुस्तकालय व हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय का पुस्तकालय आदि हैं । क्षेत्रीय कार्य के लिए हरियाणा प्रदेश के सोनीपत, रोहतक, हिसार और भिवानी शहर, खरखौदा कस्बा और मंटिडु, मुकलाण, चूलीबागड़ियान्, खाबड़ा गांवों का परिभ्रमण किया गया । रोहतक व हिसार जिले के गजेटियर का अध्ययन किया गया । सम्पूर्ण बांगरू वांगमय के एक ही स्थान पर अनुशीलन करने की सामर्थ्य के अभाव में केवल लोकगीतों के अनुशीलन का प्रयास किया गया है । इस प्रबंध की मौलिकता के विषय में कहा जा सकता है कि जहां इसके लिए अनेक साहित्य

मीमांसकों के चिन्तन का लाभ उठाया गया है वहीं लोक साहित्य व गीतों को परिभाषित करने, वर्गीकृत करने, इनका सांस्कारिक, ऋतुपरक, धार्मिक, साहित्यिक विश्लेषण करने में नई दृष्टि देने का विनम्र प्रयास किया गया है । जहां तक बांगरू लोकगीतों के संकलन का प्रश्न है, उसमें स्वयं शोधार्थिनी द्वारा गीत एकत्र किये गये हैं और संकलन ग्रंथों की सहायता भी ली गई है । लेकिन इनकी प्रस्तुति निजी और मौलिक है । जिन विद्वान् मनीषियों की पुस्तकों की सहायता ली गई है, उनकी पुस्तकों की सूची संलग्न है । अन्त में अपनी शोध स्थापना की पूर्ति बेला पर मैं उन महानुभावों व निकटजनों के प्रति आभारावनत हूं, जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, आशीर्वाद व सहयोग से मैं निर्दिष्ट पथ पर चलकर यह शोध कार्य सम्पन्न कर सकी हूं । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूं ।

सर्वप्रथम परम श्रद्धेय डॉ० दयाशंकर जी शुक्ल अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, म॰स॰ विश्वविद्यालय, बड़ौदा के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिनकी महती कृपा, प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से मैं यह शोध प्रबंध सुचारू रूप से प्रस्तुत कर सकी हूं । उनके द्वारा मुझे अपने कार्य पूर्ति के लिए नित्य प्रति एक सबल प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा । वे मेरे पूज्य हैं । मैं उनके प्रति सतत् श्रद्धावनत हूं । वे मेरे इस शोध प्रबन्ध के निर्देशक भी हैं । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के अधिकारियों की मैं आभारी हूं जिनका आर्थिक सहयोग मेरे लिए लाभप्रद रहा । यह शोध कार्य पूज्यनीय माता-पिता और आदरणीय भाई-भावज के सहयोग के बिना अपूर्ण रहता जिनके आशीर्वादों व शुभ कामनाओं की छत्रछाया में मैं अपने लक्ष्य पथ पर निर्विघ्न रूप से चली हूं । मेरे पूज्य पिताश्री भागीरथ विद्याध्ययन के क्षेत्र में सर्वदा मेरी सफलताओं के प्रेरणा केन्द्र

रहे हैं । मैं उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकती । अपनी सहपाठी श्रीमती कुसुम शर्मा व श्री हरिप्रसाद पाण्डेय का सहयोग मैं कभी भुला नहीं सकूँगी, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में मेरी यथोचित सहायता की ।

मैं अपनी बड़ी बहन श्रीमती शीला सांगा व जीजा जी श्री रणबीर सांगा की सदैव आभारी हूँ जिनके स्नेहपूर्ण सहयोग व मंगलभावनाओं ने मुझे निरन्तर प्रगति की शक्ति प्रदान की । क्षेत्रीय कार्य के दौरान मिली उनकी सहायता अतुलनीय है । मैं उन ग्रामीणजनों की आभारी हूँ जिनसे मुझे गीतों की एक पर्याप्त संख्या प्राप्त हुई । उन पुस्तकालयों एवं संस्थाओं के प्रति मैं पूर्णतः आभारावनत हूँ जिन्होंने मुझे आवश्यक सामग्री के संचयन में सहायता दी । वे समस्त लेखक व विद्वान् भी हार्दिक धन्यवाद के अधिकारी हैं जिनकी पुस्तकों ने मेरे कार्य की सम्पन्नता में योग दिया । अन्त में ज्ञात-अज्ञात उन सभी सहायकों की हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने इस प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे तनिक भी सहयोग दिया ।

लक्ष्मी बेनीवाल
9.7.85

Content

" वि षया नु क्र म "

§ब§ §1§ हरियाणा की प्रादेशिक ऐतिहासिकता

§2§ हरियाणा नामकरण और क्षेत्र विस्तार

§3§ हरियाणा की बोलियाँ

§4§ बांगरू बोली का नामकरण और क्षेत्र विस्तार

-- निष्कर्ष

तृतीय अध्याय :

संस्कार गीत -

जन्म के गीत-दोहद §ओजणा§, प्रसव पीड़ा के गीत, बुलावे के गीत, नेग के गीत, बधावा, छठी के गीत, कूआं पूजने के गीत, कामना गीत, बन्ध्या की निराशा के गीत, हास्य गीत ।

विवाह के गीत --

सगाई के गीत, ब्याह भेजने के गीत, टेवे के गीत, भात न्योतने के गीत, बान के गीत, उबटने के गीत, स्नान के गीत, सीटणे, आरता, रतजगे के गीत, दीवा, मेंहदी, जकड़ी, बन्ना, बन्नी, दातुन, भात भराई के गीत, घुड़चढ़ी के गीत, खोड़िया के गीत, फेरों के गीत, विदाई के गीत, वर-वधू के स्वागत गीत, गालियां ।

मृत्यु-गीत-भजन ।

-- निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय :

धार्मिक गीत --

लोकधर्म, पंचदेवोपासना के गीत, राम-सीता विषयक गीत, हनुमान, कृष्ण, शिव, कार्तिकेय, भैरव के स्तुति परक गीत,
विभिन्न देवियों के गीत - भीमेश्वरी देवी, चौरस्ता माता, शीतला माता, ज्वाला जी, दुर्गा, पार्वती के गीत, सती के गीत

लोक प्रतिष्ठित देवी-देवताओं के गीत :- भूमिया, क्षेत्रपाल, खेरापति, गूगा, पंचपीर आदि के गीत

प्रकृति पूजा :- सूर्य, चन्द्र की उपासना के गीत, तुलसी-पीपल महात्म्य के गीत, पृथ्वी की स्तुति के गीत

विभिन्न व्रतोपवास व स्नान-ग्यारस के गीत सूर्य व चन्द्र ग्रहण के गीत, तीर्थ यात्राओं के गीत, चारों धामों की यात्रा के गीत, गंगा-स्नान के गीत, पुनर्जन्म व मोक्ष प्राप्ति के गीत, दान-पुण्य के गीत, ईश्वर की सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमत्ता के गीत, धार्मिक लोक कथा ।

- निष्कर्ष

पंचम अध्याय : ऋतुगीत --

सावन के गीत -- झूला गीत, ससुराल में होने वाले कष्ट के मार्मिक गीत, मेंहदी के गीत, सावन तीज, भाई-बहन के सम्बन्धों के गीत, संयोग व वियोग श्रृंगार के गीत, चन्दरावल व निहालदे के वीरता परक गीत, बारहमासा

भाद्रपद -- कृष्ण जन्माष्टमी के गीत, गूगा-नवमी के गीत

क्वार -- सांझी, नवरात्रि के गीत

कार्तिक-- कार्तिक स्नान के गीत, हरजस, प्रभाती, भजन, दीपावली देवउठनी ग्यारस के गीत ।

फाल्गुन -- संयोग व वियोग श्रृंगार के गीत, हर्षोल्लास के गीत, गीतों में सौतन, सास-बहू के सम्बन्ध, हास-परिहास के गीत, नृत्य, होलिका-दहन और फाग के गीत ।

-- निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय : विविध गीत-कृषि गीत, राजनैतिक प्रभाव के गीत, लोकगीतों में सैनिक की पत्नी, पनघट के गीत, फैशन के गीत, हिचकी गीत, चरखा गीत, बालकों के गीत, अकाल विषयक गीत आदि

-- निष्कर्ष

सप्तम अध्याय : लोकगीतों में काव्यात्मकता --

भाव-पक्ष - गीति काव्य के तत्व

- रस विवेचना :- श्रृंगार रस, करूण रस, वीर रस, हास्य रस, शान्त रस, अद्भुत रस, वात्सल्य रस आदि

कला-पक्ष - भाषा

- शब्द शक्तियां - अभिधा, लक्षणा, व्यंजना
- अलंकार

(1) शब्दालंकार - अनुप्रास, वीप्सा, श्लेष

(2) अर्थालंकार - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, स्मरण, विनोक्ति, विभावना, उल्लेख, दृष्टान्त, उक्ति वैचित्र्य, उलटबांसियां, व्याजोक्ति, अतिशयोक्ति ।

- बिम्ब विधान - दृश्य बिंब, गति बिंब, नाद बिंब, समय के अन्तराल को प्रस्तुत करने वाले बिंब, स्वाद बिंब, सान्द्र बिंब, ज्यामितीय बिंब, प्राकृतिक बिंब, लोक सांस्कृतिक बिंब ।
- प्रतीक - प्राकृतिक प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, जीवन व्यापार संबन्धी प्रतीक ।
- शैली - वर्णनात्मक शैली और भावात्मक शैली ।
- छन्द-विधान - सोहर, बिरहा, झूमर आदि ।
- लय
- निष्कर्ष

परिशिष्ट - पुस्तक-सूची

Chapter- 1

प्रथम अध्याय

(क) 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति एवं प्रयुक्ति :-

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति सिद्धान्त-कौमुदी के अनुसार संस्कृत के लोक – (दर्शन) धातु से घञ् प्रत्यय् करने पर निष्पन्न हुई मानी गई है ।[1] इस धातु का अर्थ देखना होता है, जिसका लट् लकार में अन्यपुरुष एकवचन का रूप लोक्यते है । इस प्रकार लोक शब्द का अर्थ देखने वाला हुआ । इसी की पुष्टि हलायुधकोश: द्वारा होती है ।[2] अत: वह जन समुदाय जो इस कार्य को करता है, लोक कहलाया ।[3]

हिन्दी में लोक अंग्रेजी के 'Folk' शब्द का समवर्ती है । यह जर्मनी में 'Volk' रूप में प्रचलित है, जो मूलत: एंग्लो सैक्सन 'Folc' का विकसित रूप है । पहले इसके लिए popular antiquities (लोकप्रिय अथवा लोक-व्याप्त पुरातत्व) शब्द का प्रचलन था । सन् 1846 में जॉन आब्रे (अंग्रेज़

---

1. सिद्धान्तकौमुदी – पृ० 417, व्यंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
2. लोक:पुं० (लोक्यते इति, लोक + घञ्) भुवनं; विष्टपं; जगत्, 'भूर्भुव: स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च । सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्तिता:'- इत्यग्निपुराणम् । (284) जन:, प्रजा; मनुष्य: ।' (133)
   – हलायुधकोश:-(अभिधानरत्नमाला) सं० जयशंकर जोशी, पृ० 581
3. हिन्दी साहित्य का बृहद् ~~साहित्य~~ इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना –पृ० 9

पुरातत्वविद्‌) ने 'folk lore' शब्द बनाया । वहाँ इसको एक ओर असंस्कृत और सूद (शूद्र) जाति व समाज के लिये प्रयुक्त किया गया है और दूसरी ओर सर्वसाधारण के लिये इसका प्रचलन है । जिन विद्वानों ने 'फोक' शब्द को असंस्कृत लोगों के लिये व्यवहृत किया है, उनके नाम हैं -- प्रो० चाइल्ड, किटैरेज, सिज़्विक, गुमेर व लूसी पौंड आदि ।[4]

'Folk' शब्द का स्पष्टीकरण देते हुए Encyclopedia of Britanica में उल्लिखित है कि "आदिम मानस में तो उसके समस्त सदस्य ही 'folk' (लोक) होते हैं और विस्तृत अर्थ में इस शब्द से सभ्य से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है । किन्तु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐसे संयुक्त शब्दों में जैसे लोक वार्त्ता, लोक संगीत आदि में इसका अर्थ केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक संस्कृति और सविधि शिक्षा की धाराओं से मुख्यत: परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें मामूली - सा अक्षर ज्ञान है - ग्रामीण और गंवार ।

कैलिफोर्निया के प्रो० एलेन डंडेस ने उक्त आधुनिक संदर्भ में कहा है कि - The term folk can refer to any group of people whatsoever who share at last one common factor, It does not matter what the linking factor is - it could be a common occupation, language or religion - but what is important is that a group formed for whatever reason will have some traditions which it calls its own." अर्थात्‌ लोक शब्द मनुष्य के किसी भी ऐसे समूह का द्योतक हो सकता है जिसमें समानता का कम से कम कोई एक आधार हो । वह समान आधार उसका कोई एक व्यवसाय हो सकता है, उसकी कोई एक भाषा हो सकती है,

---

4. अवधी का लोक साहित्य - डॉ० सरोजिनी रोहतगी, पृ० 2

उसका कोई एक धर्म हो सकता है । अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस समूह की अपनी कुछ निजी परम्पराएं हों ।[1]

लोक शब्द से प्राय: दो अर्थों का बोध होता है । प्रथम जिससे इहलोक, परलोक, त्रिलोक और सप्तलोक का ज्ञान होता है । द्वितीय - जनसाधारण । यही हिन्दी में 'लोग' के रूप में प्रयुक्त होता है । इसी अर्थ का वाचक लोक शब्द साहित्य का विशेषण है, किन्तु इतने से लोक का वह अभिप्राय प्रकट नहीं होता जो साहित्य के विशेषण के रूप में वह प्रदान करता है ।[2] 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है । ऋग्वेद में यह अनेक स्थलों पर साधारण जनता के रूप में प्रयुक्त हुआ है । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । यथा --

"नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णोद्यौ: समवर्तत् ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयत् ।।"[3]

उसके मस्तक से स्वर्ग उत्पन्न हुआ । उनके चरणों से भूमि की सृष्टि हुई । उनके कान से दिशाएं उत्पन्न हुई तथा सारे लोकों का निर्माण हुआ ।

यजुर्वेद में लोक (समाज) की एक विराट् कल्पना की गई है । वह पुरुष रूप ईश्वर है । उसके सहस्त्रों मुख, सहस्त्रों नेत्र और पैर हैं --

"सहस्त्र शीर्षा: पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात् ।"

उपनिषद् में लोक शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलता है । जैमिनीय

---

1. The Study of folk lore - Prof. Alan Dundes, 1965, P-2.

2. हिन्दी साहित्य कोश - सं0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 686

3. ऋग्वेद, 10/90/14

4.

उपनिषद् ब्राह्मण में वर्णित है कि "यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। यह प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। इसे प्रयत्न करने पर भी कौन पूरी तरह से जान सकता है?"[1]

" बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः ।
क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात् ।।"

पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी 'लोक' तथा 'सर्व-लोक' शब्द व्यवहृत हुए हैं तथा इनसे ठञ् प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा 'सार्वलौकिक' शब्दों की निष्पत्ति होती है।

" लोक सर्वलोकाठ्ठञ । {5/1/44}
तत्र विदित इत्यर्थे । लौकिकः । अनुशतिका दित्वा
दुभय पदवृद्धिः । सार्वलौकिकः । सर्वत्र विभाषा गोः'

6/1/23 सूत्र की वृत्ति को देखने से पता चलता है कि लोक और वेद में एङन्त गो शब्द को पद के अन्त में विकल्प से प्रकृति भाव होता है।

"लोके वेदे चैङन्तस्य गोरिति वा प्रकृतिभावः स्यात्पदान्ते ।
गो अग्रम् । गोऽग्रम" 6/1/122 --

सूत्र की वृत्ति देखने से ज्ञात होता है कि पाणिनी की दृष्टि में लोक से पृथक् वेद की सत्ता भी थी। कई शब्दों की निष्पत्ति का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार का है परन्तु लोक में इसे भिन्न प्रकार का समझना चाहिए।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख हुआ है। महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्त्री

---

1. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण 3/28

संहिता की विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि यह (महाभारत) अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे होकर व्यथित लोक को (जनसाधारण को) आंखों को ज्ञानरूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है ।[1] इसी प्रकार महाभारत में लोकयात्रा का भी वर्णन आया है ।[2] इसी पर्व में एक अन्य स्थल पर पुण्य कर्म करने वाले लोक का उल्लेख मिलता है ।[3]

महर्षि व्यास ने लिखा है कि जो व्यक्ति लोक को स्वयं अपनी आंखों से देखता है, वही उसे अच्छी तरह जान सकता है --

"प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ।"

भगवद्गीता में भी लोक तथा लोकसंग्रह शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुए हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने लोकसंग्रह पर बड़ा बल दिया था । अर्जुन को उपदेश देते समय उन्होंने कहा था --

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

लोकसंग्रह मेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।।"[4]

अर्थात् जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही परमसिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिए तथा लोकसंग्रह को देखता हुआ भी, तू कर्म करने को ही योग्यहै । यहां लोकसंग्रह साधारण जनता के आचरण, व्यवहार व आदर्श के लिये प्रयुक्त हुआ है । महाभाष्य में लोकवेद विधि के विरोध को बताने वाले कई स्थल

---

1. अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।
   ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम् ।।
   महाभारत, आ०प० 1/84
2. पुराणां चैव दिव्यानां कल्पनां युद्धकौशलम्
   वाक्य जाति विशेषाश्च लोकयात्रा क्रमश्च यः । आ०प० 1/69
3. आ०प० 1/101/-2
4. गीता - 3/20

मिलते हैं -- "वेदान्नो वैदिका: शब्दा: सिद्धा लोकाच्च लौकिका:, प्रिय तद्धिताय दक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिके वैदिके षिति प्रयुंजते ।' प्राकृत व अपभ्रंश भाषा के 'लोकजत्ता' §लोकयात्रा§, 'लो अप्पवाय' §लोक प्रवाद§ आदि शब्द लोक की महत्ता प्रदर्शित करते हैं ।

श्री रामचरितमानस में लोक शब्द का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है, जिसका तात्पर्य संसार एवं समाज ही है ।[1]

"सो जानव सत्संग प्रभाऊ,
लोकहु वेद न आन उपाऊ ।।
परशुराम पितु आग्या राखी,
मारी मातु लोक सब साखी ।।

हिन्दी के विभिन्न विद्वानों ने लोक §Folk § शब्द की व्यापक व्याख्या की है । उन्होंने इसका पर्याय ग्राम, जन तथा लोक को माना है । पं॰राम नरेश त्रिपाठी का ग्राम शब्द के प्रयोग पर अधिक आग्रह है । इसी आधार पर उन्होंने 'फोक सांग' का पर्याय ग्राम गीत किया है । किन्तु इसमें अव्याप्ति दोष है । इस शब्द की सीमा संकुचित है, जबकि लोक की संज्ञा विशालता की सूचक है । "ग्राम का समाहार तो लोक में हो सकता है, किन्तु लोक अपने में स्वतन्त्र सत्ता है । उसकी विशालता को आत्मसात् करने की शक्ति ग्राम शब्द में नहीं है । ग्राम सीमाओं में बद्ध है । फिर लोक की स्थिति ग्राम के साथ नगर में भी है, अत: फोक का पर्याय ग्राम स्वीकार्य नहीं है ।

'Folk' के स्थान पर प्रयुक्त होने वाला एक अन्य शब्द 'जन' है । डॉ० मोतीचन्द्र जी ने 'फोक' के लिए 'जन' शब्द का आग्रह किया है । यह

---

1. बालकाण्ड - दोहा - 3

`जन` धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ उत्पन्न होना है ।[1] इस प्रकार उत्पन्न होने वाले (जन्मनेवाले) सभी लोगों का बोध इस शब्द से हो जायेगा । यह शब्द अति प्राचीन काल से इसी अर्थ का द्योतक रहा है । पृथ्वी सूक्त, ब्राह्मण ग्रन्थों, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में भी जन शब्द प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । `जन` का एक दूसरा अर्थ भी है जो आगे चलकर भक्त के अर्थ में रूढ़ हो गया । महाभारत काल में गीता में कृष्ण के लिये जो जनार्दन विशेषण आता है, वह इसी अर्थ का पोषक है । इस शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है --

"जनं भक्तं अर्दयति रक्षति इति जनार्दनः ।"[2]

हिन्दी के भक्ति साहित्य में तो `जन` शब्द `भक्त` का पर्यायवाची ही बन गया है । यथा -

"हरि के जन की अति ठकुराई"[3]

अथवा

"हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हार ।
जब आवै जन जौहरी तबहि रौकी सार ।।"[4]

1• जनः पुं० (जायते इति, जन + अच) लोकः ; अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्तेजने तथा । तदुपादीपयद् भीमः शेते यत्र पुरोचनः`-- इति महाभारते (1/149/9)
हलायुधकोशः, सं० - जयशंकर जोशी, पृ० 310

2• श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान् कृष्ण को जनार्दन कह कर सम्बोधन देते हुए कहा गया है -- "निहत्यधार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाश्रयेदस्मान्दत्वैतानाततायिनः ।" गीता अध्याय- 1/36

3• सूर संचयन - सं• डॉ० मुंशीराम शर्मा, विनय खण्ड, पद संख्या - 7, श्लोक - 36, पृ० 112-13

4• बीजक कबीर साहब, सं० 1961 में श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय बम्बई द्वारा प्रकाशित संस्करण, साखी खण्ड, पृ० 590

जन शब्द मानव समाज के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है ; किन्तु फोक का पर्यायवाची नहीं माना जा सकता ।

'Folk' शब्द का तीसरा समानार्थी शब्द है -- 'लोक', जिसमें इसकी सभी विशेषताओं का समावेश हो जाता है । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' को 'Folk' के उपयुक्त बताते हुए अपने कथन की पुष्टि की है कि - "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं हैं बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली समस्त जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं । नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं ।"[1]

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है । "लोक हमारे जीवन का समुद्र है । उसमें भूत, वर्तमान, भविष्यत् सभी कुछ संचित रहता है । वह राष्ट्र का अमर स्वरूप है । कृत्स्व ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है । अर्वाचीन में मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति है । लोक और लोक की धात्री सर्वभूत्तरता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है । इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है । लोक, पृथ्वी और मानव इस त्रिलोकी में जीवन का कल्याणात्मक रूप है ।[2]

1• जनपद त्रैमासिक, अंक-1, पृ0 66, लोकसाहित्य का अध्ययन

2• सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक, पृ0 65

डॉ0 सरोजिनी रोहतगी ने लोक के प्राचीन रूप को स्वीकार करते हुए कहा है कि इसमें संस्कृत और परिष्कृत प्रभावों से मुक्त पुरातन जीवन के दर्शन होते हैं एवं उसका अपना निश्चित स्वरूप उपलब्ध होता है ।[1]

डॉ0 श्याम परमार ने लोक को परिभाषित किया है कि आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, वार्त्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से मुक्त होकर साधारण जनसमाज जिसमें पूर्व संचित परम्पराएं, भावनाएं, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं । तथा जिसमें भाषा और साहित्य गत सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है ।[2]

डॉ0 सत्येन्द्र की दृष्टि में लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है । ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, लोक तत्व कहलाते हैं ।[3] इसके अतिरिक्त जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें लोक की संज्ञा प्राप्त है ।[4]

डॉ0 कृष्ण चौहान की दृष्टि में लोक का अभिव्यक्त रूप वह सामान्य जनसमूह है जो अपनी नैसर्गिक प्रकृति के सौंदर्य की दिव्य ज्योति से

1• अवधी का लोक साहित्य - डॉ0 सरोजनी रोहतगी, पृ0 3

2• श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, पृ0 11

3• डॉ0 सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान

4• हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-षोडश भाग, प्रस्तावना में उद्धृत (विश्वभारती शान्ति निकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डॉ0 कुंज बिहारी दास)

कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है ।[1]

बंगाल के शंकर सेन गुप्ता ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए इसके नृतात्त्विक आधार की चर्चा करना उपयोगी नहीं समझा । उनके अनुसार किसी न किसी रूप में हम सभी लोग 'लोक' शब्द से सम्बोधित किये जा सकते हैं । क्योंकि हम में से कोई भी परम्परा विहीन तथा पूर्वजों के द्वारा छोड़े गये मौखिक ज्ञान से वंचित नहीं है ।[2]

किसी लोक समाज में जो लोग सृजनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न होते हैं, उन्हीं को हम लोक कहते हैं । भारतीयों की यही लोक मनोवृत्ति औषधियों के प्रयोग में तथा जादू-टोने और लोकोपचारों पर उनके विश्वास के रूप में झलकती है । वे लोग देवी-देवताओं पर अटूट विश्वास रखते हैं ।[3]

सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में लोक की स्थिति देखने पर स्पष्ट होगा कि यह शब्द उस मानव-समूह का बोध कराता है जो आदिम समाजों, ग्रामीण समाजों तथा नागरिक समाजों में एक समान रूप से निवास करने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है । इस प्रकार के मानव समूहों पर परिष्कृत रूचि वाले व्यक्तियों का अथवा समाज के आभिजात्य वर्ग की विशेषताओं का कम ही प्रभाव पड़ता है ।[4]

---

1. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० विद्या चौहान, पृ० 41
2. लोक साहित्य का अध्ययन - त्रिलोचन पाण्डेय, पृ० 106
3. Folk lore Monthly Sept. 1974, Vol. 16 (P.299).
4. लोकसाहित्य का अध्ययन, त्रिलोचन पाण्डेय,
   पृ० 109

मनोविज्ञान की दृष्टि से 'लोक' लोकमानस का प्रतिनिधि है । "लोक मानस वह मानसिक स्थिति है, जो आज आदिम मानस की परम्परा में है, उसी का अवशेष है । आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है । लोक मानस का स्तर प्रत्येक मनुष्य के भीतर विद्यमान रहता है, इस तथ्य का अब प्राय: सभी विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है । केवल उसकी अभिव्यक्ति कहीं अधिक होती है, तो कहीं कम होती है । आदिम जातियों में उसकी अभिव्यक्ति सर्वाधिक मानी जा सकती है । ग्रामीण समाजों में उसकी अभिव्यक्ति कम होती है तथा नागर समाजों में वह अभिव्यक्ति गौण हो जाती है ।

चूँकि नागर समाजों में मनुष्य का चैतन्य सर्वाधिक प्रभावशाली रहता है, उसके सामने मनुष्य का लोक मानसिक धरातल दब जाता है, फिर भी उसकी प्रतीति कला, संगीत, साहित्य आदि के माध्यम से होती रहती है । मानव मन के क्रमश: चेतन स्तर एवं अचेतन स्तर का बोध कराने के लिए लोकवार्त्ता शास्त्र में मुनि मानस तथा लोक-मानस शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिन प्रयोगों को गढ़ने का श्रेय डॉ० सत्येन्द्र को प्राप्त है ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह द्योतित होता है कि लोक शब्द हमारे यहाँ बहुत पहले से अपने विस्तृत रूप में विद्यमान रहा है । भारत ग्राम प्रधान देश है । किन्तु ग्राम और नगर को दो भिन्न इकाइयाँ मानकर पृथक् नहीं किया जा सकता । दोनों एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं । प्राचीनता का बोधक भी लोक शब्द नहीं है । लोक में अपनी अलग परम्परा निहित है, जिससे वह जीवित रहता है । लोक ग्राम्य और नगरीय दोनों परिवेशों में समान रूप से क्रियाशील रहता

---

1. लोक साहित्य का अध्ययन " त्रिलोचन सिंह पाण्डेय, पृ० 111

है । विभिन्न उत्सव, त्योहार, ऋतु आदि के आगमन पर प्रस्फुटित नैसर्गिक भावों के रूप में इसके दर्शन होते हैं । समस्त विश्व के सभी मानव समूहों, मानवीय क्रिया कलापों तथा विचार परम्पराओं के रूप में लोक सर्वत्र विद्यमान है । देश-काल की सीमाओं से परे यह एक प्रगतिशील चेतना है । वास्तव में, इस शब्द से जनसाधारण का बोध होता है । इसमें जातिगत भेदों से ऊपर विस्तृत और प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि के साथ आधुनिक सभ्यता-संस्कृति का कल्याणमय विकास निहित है ।

इस प्रकार 'लोक' शब्द ही 'फोक' का पर्यायवाची माना जा सकता है । 'जन' अथवा ग्राम भी इसके निकट प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में 'फोक' की सत्ता इनसे पृथक् है । Folk के अत्यधिक निकट लोक ही लगता है । यद्यपि 'लोक' का कलेवर Folk की तुलना में विस्तृत और व्यापक है, प्राचीनता की दृष्टि से भी लोक अधिक प्राचीन है । अतः 'लोक' ही फोक को अपने में समेट कर इसके अर्थ को पूर्ण रूप से प्रकट करता है ।

(ख) लोक साहित्य की परिभाषा एवं व्याख्या :-

लोक-साहित्य शब्द अंग्रेजी के 'फोक लिटरेचर' का समानार्थी शब्द है जिसे भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से व्याख्यायित किया है ।[1] पाश्चात्य मनीषियों का मत है कि यह साहित्य असभ्य और अनपढ़ लोगों के लिये लिखा गया है । इसका सम्बन्ध जंगली जातियों से है और यह ग्रामीणों का साहित्य है । लोक साहित्य किसी काल विशेष का साहित्य न होकर युग-युग से चला आता हुआ वह साहित्य है जो हमें जन-जीवन के बीच प्रायः मौखिक

1- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 686 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा

रूप में ही प्राप्त होता रहा है । इसमें हमारे अपढ़ समाज के लिए मनोरंजन की व्यापक सामग्री है और उसके जीवन की सांगोपांग अभिव्यक्ति है । मनुष्य कठिन परिश्रम के उपरान्त थोड़ा-सा समय अपने मनोरंजन के लिए भी चाहता है, वही मनोरंजन मानव गीत गाकर व कथा सुनकर प्राप्त करता है ।

किन्तु पाश्चात्य मनीषियों का विवेचन संकुचितता से ग्रस्त है, जो साहित्य के ऊर्ध्वगामी होने में अवरोध पैदा करता है । भारतीय दृष्टि से परखने पर लोक साहित्य के अन्तर्गत मानव के सम्पूर्ण रीति-रिवाज, आचार-विचार और उसके व्यवहार के उन्मुक्त रूप के दर्शन होते हैं । इससे एक व्यापक भाव की व्यंजना होती है । सोफिया बर्न के अनुसार लोक साहित्य 'लोक की विधा' के रूप में परिभाषित है ।[1]

सन् 1846 में W.J.Thomas ने इसे पहले प्रयोग में आने वाले 'सार्वजनिक पुरातत्व' (Popular Antiquities शब्द के लिए गढ़ा था । यह एक जातिबोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, ~~कहानियां~~, गीत तथा कहानियां आती है --- भूत-प्रेतों की दुनिया, जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं ---- विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध-आखेट, मत्स्य-व्यापार, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं, तथा धर्मगाथाएं, अवदान (लीजैण्ड) लोक कहानियां, साके (बैलेड) गीत, किंवदन्तियां, पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं ।[2]

1- हैंडबुक ऑफ फोकलोर : शार्लेट सोफिया बर्न, पृ० 1-2

2. Encyclopedia of Social Sciences - Page - 288.

श्री मरेट ने इसे एक गतिशील विज्ञान बताया है ।[1] श्री गोमे इसे ऐतिहासिक विज्ञान मानते हैं[2] और बेटकिन इसे कोई बहुत दिनों को या दूर की वस्तु न मानकर एक जीती-जागती भावना मानते हैं जो हमारे बीच आज भी जीवित है ।[3]

हिन्दी के विद्वानों ने 'Folk lore' को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करते हुए इसे पृथक्-पृथक् नामों से अभिहित किया है । डॉ० सत्येन्द्र का आग्रह 'लोक वार्त्ता' शब्द को 'फोक लोर' का समानार्थी मानने में है । उनका मत है- "लोकवार्ता शब्द विशद् अर्थ रखता है । समस्त आचार - विचार जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष होता है और जिसके स्त्रोत लोकमानस में पाये जाते हैं तथा जिनमें परिमार्जन और संस्कार की चेतना काम नहीं करती । लौकिक-धार्मिक विश्वास, धर्मगाथाएं, कथाएं, लौकिक-गाथाएँ, कहावतें, पहेलियां सभी लोकवार्त्ता के अंग हैं ।"[4] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दी में वैष्णवों के वार्त्ता विषयक ग्रन्थों के अनुरूप [निजीवार्त्ता, 84 वैष्णवों की वार्त्ता, घरू वार्त्ता आदि] फोकलोर का पर्याय लोकवार्त्ता को मानते हुए स्पष्ट करते हैं कि - "जन-जन की भूमि, उसकी संस्कृति व उसका भौतिक जीवन सब इस लोकवार्त्ता के अन्तर्गत आता है ।[5] श्री कृष्णानन्द गुप्त भी इससे सहमत हैं - "लोकवार्ता को अंग्रेजी में Folk lore कहते हैं अथवा यह कहिये कि Folk lore के लिए हमने लोकवार्त्ता शब्द का

---

1. Psychology and Folklore - S.R. मरेट, सन् 1920
2. Folklore is a historical science - G.L.Gome.
3. American Folklore Pocket Book की भूमिका से
4. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, प्रथम अध्याय, विषय प्रवेश डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 2
5. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-षोडश भाग, प्रस्तावना पृ० 10

प्रयोग किया है । Folklore का प्रचलित अर्थ है -- जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि । परन्तु हम उसका अर्थ करते हैं - जनता की वार्ता । जनता जो कुछ कहती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है, वह सब लोकवार्ता है । जिस प्रकार प्रत्येक देश व जनपद की एक भाषा होती है, उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्त्ता भी होती है ।"[1]

किन्तु इस शब्द को मनीषियों ने सर्वसम्मति से स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि जो भी वस्तु लोकमानस के अन्तर्गत आ सकती है, वह लोकवार्त्ता है । इसका अध्ययन लोकसाहित्य से परे नृशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा-शास्त्र, इतिहास व पुरातत्त्व आदि में भी है । इस प्रकार यह लोकसाहित्य के कुछ भाग को ही आत्मसात् करता है और इसे अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त माना जा सकता है । किन्तु डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इसमें अव्याप्ति दोष मानते हुए इसे लोक साहित्य की अभिधा वहन करने में सर्वथा अक्षम बताया है ।[2]

क्योंकि लोकवार्त्ता में अधिक से अधिक लोककथा का भार वहन करने की क्षमता है ।[3] डिंगल में भी `बारता` अथवा `वारता` का प्रयोग कथा के लिए होता है । संस्कृत साहित्य में इससे `अफवाह` अथवा `किंवदन्ती` का अर्थ लिया जाता है ।[4] विख्यात संस्कृत कोशकार आप्टे महोदय ने लोकवार्त्ता को "Popular Report" या "Public रयूमर" से जोड़ा है । अतः लोकवार्त्ता शब्द चाहे अव्याप्ति दोष के कारण अथवा अतिव्याप्ति दोष के कारण लोक साहित्य के उपयुक्त नहीं है ।

---

1. बुन्देलखण्ड के लोकवार्त्ता पत्र के निवेदन में उल्लिखित
2. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षोडश भाग, पृ० 10-11
3. डॉ० शंकरलाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 30
4. श्री द्वारका प्रसाद शर्मा, "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ"

भाषा तत्वविद् डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी ने `फोकलोर` के स्थान पर बौद्ध धर्म के हीनयान्, महायान एवं वज्रयान के आधार पर निर्मित शब्द `लोकयान` को अधिक उपयुक्त बताते हुए इसकी निम्न प्रकार से व्याख्या की है -- "पितृ परम्परागत जीवनयात्रा की पद्धत्ति जिन सामाजिक अनुष्ठानों, विश्वास, विचारों तथा वाङ्मय से अपने अलौकिक प्रकाश को प्राप्त करती है, वह अंग्रेजी में फोकलोर है ।[1] वे पुन: कहते हैं -- " यान का प्रचलित अर्थ वाहन या सवारी है, पर उसका एक अर्थ जाना या चलना भी है । सचमुच लोकजीवन फोकलोर के साथ उसके सहारे और उस पर चलता है । इन दृष्टियों से `लोकयान` में बिना किसी प्रकार की खींचातानी के फोकलोर के अन्तर्गत आने वाली सभी बातें आ जाती है ।"[2] किन्तु डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय के शब्दों में उससे जनसाधारण के धर्म का तो बोध हो सकता है, परन्तु उसके रहन-सहन, रीति-रिवाज, अन्ध-विश्वास, परम्परा तथा प्रथाओं का बोध नहीं होता ।[3] अत: वह भी ग्राह्य नहीं है ।

डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने `लोकायन` शब्द लोक-साहित्य के लिये अधिक उपयुक्त माना है । डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने इसकी उपयुक्तता पर प्रश्न-चिन्ह लगाते हुए कहा है -- "इसमें प्रयुक्त अयन शब्द का अर्थ गति, चाल या गमन करना है । इस प्रकार लोकायन का शब्दार्थ होगा लोक की गति । यह शब्द लोकसाहित्य की व्यापकता का बोध नहीं कराता और अपरिचित लगता है ।" डॉ0 शंकरलाल यादव ने इससे भिन्न मत का प्रतिपादन किया है । उनके मतानुसार इसमें अयन शब्द रामायण की भांति `घर` अथवा `सर्वस्व` के रूप में प्रयुक्त माना

---

1. भारतीय लोक साहित्य - श्याम परमार, पृ0 14
2. राजस्थानी कहावतां भाग पहिलो, सं. 2006 भूमिका,
   पृ0 11
3. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षोडश भाग, पृ0 11

जायेगा और इसका अर्थ होगा -`लोक का घर` अथवा `लोक का सर्वस्व` । अत: इस शब्द की परिधि में वह सब कुछ आ जायेगा जो जनता कहती है, सुनती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा व सुना जाता है । शब्दान्तरों में यह लोक की रामायण है । जैसे रामायण राम के सब कुछ को लेकर चली है, वैसे ही लोकायन शब्द भी लोक के सर्वस्व को समेटे है ।" अत: यह folklore की भांति व्यापक व ग्राह्य तो है, किन्तु चूँकि यह शब्द हिन्दी में प्रयोग बल से अपना स्थान निर्धारित कर चुका है, इसलिए यही उपयुक्त शब्द है ।[1]

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अन्य शब्दों की अपेक्षा `लोक संस्कृति` को फ़ोकलोर के अधिक निकट पाया है । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी इसी को अधिक उपयुक्त व समीचीन मानते हैं । सोफिया बर्न के शब्दों को लें तो "लोक संस्कृति आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है । इसके अन्तर्गत दर्शन, धर्म, विज्ञान, सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठान, काव्य व साहित्य सब कुछ आ जाता है ।" जिसके अनुसार लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का मात्र एक अंग है । `लोक` शब्द के विवेचन के संदर्भ में पूर्व में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों को उद्धृत किया गया था, जिसके अनुसार संस्कृति का सम्पूर्ण भाव लोक में आ जाता है । फिर उसके साथ संस्कृति शब्द के प्रयोग का क्या आशय है ? दूसरे `लोक संस्कृति` शब्द Folk culture का समवर्ती है । अत: लोक साहित्य शब्द अधिक सार्थक है ।

रामनरेश त्रिपाठी द्वारा Folklore के लिए प्रयुक्त शब्द `ग्रामगीत` के आधार पर किया गया Folk Literature का समानार्थी `ग्राम साहित्य` शब्द अव्याप्ति दोष से दूषित प्रतीत होता है क्योंकि `ग्राम` शब्द संकुचित सीमा का द्योतक है, जबकि लोक विशालता का ।

---

1. हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ०32

इसी प्रकार डॉ0 मोती चन्द्र द्वारा प्रयुक्त शब्द 'जनसाहित्य' भी लोकसाहित्य की व्यापकता को वहन करने में असमर्थ है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति एवं प्रयुक्ति नामक खण्ड में इसकी समुचित व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि FOLK ~~LITERATURE~~ LORE का समवर्ती शब्द लोकसाहित्य है, जो लोक भावना को समुचित रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। "लोक साहित्य से अभिप्रेत होगा लोकमानस की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति जिसमें संस्कृति लोक-जीवन का एक महत्वपूर्ण अवयव है तथा जिसका प्रकटीकरण वार्ता, गीत, गाथा, कथा, नृत्य, टोने-टोटके आदि में हुआ है।"[1]

लोकसाहित्य में जनमानस के भावों के नैसर्गिक उद्‌गार हैं जो विभिन्न उत्सव, त्यौहार एवं ऋतुओं के आगमन पर प्रस्फुटित होते हैं। लोकसाहित्य के विद्वानों व मनीषियों द्वारा दी गई लोकसाहित्य की कतिपय परिभाषाएँ निम्न हैं --

1• डॉ0 सत्येन्द्र -- लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें

(अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।

(ब) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोकमानस की प्रवृत्ति में समाई हो।

(स) कृतित्व हो, किन्तु वह लोकमानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।[2]

1• अवधी लोकसाहित्य - डॉ0 सरोजिनी रोहतगी, पृ0 6

2• लोक साहित्य विज्ञान, पृ0 4-5

2• डॉ० सत्यव्रत सिन्हा – लोक साहित्य वह लोक रंजनी साहित्य है, जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है।"[1]

3• डॉ० शंकर लाल यादव के मतानुसार लोक – साहित्य एक परम्परानिधि है, जिसे लेखनी ने न कभी संवारा है, न सजाया है और न कदाचित् कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा, परन्तु लोक साहित्य का स्त्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप से प्रवहमान है।"[2]

4• डॉ० सत्या गुप्त -- लोक साहित्य में विशेषतः जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएं भावों से ही निर्मित होती हैं।"

5• डॉ० तेजनारायण पाल – साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, हंसती है, रोती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।[3]

6• डॉ० बैरिस्टर सिंह यादव -- "किसी विशेष अवसर, स्थान या परिस्थिति में जनसाधारण के द्वारा अपने हृदय और मस्तिष्क में संचित भाव और अनुभव सामग्री के गद्य अथवा पद्य में मौखिक प्रकाशन को लोक साहित्य कहते हैं।[4]

1• भोजपुरी लोकगाथा, भूमिका, पृ० ङ•-1

2• हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 4

3• मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, उपोद्धात् – पृ० 14

4• हिन्दी लोकसाहित्य में हास्य और व्यंग्य
डॉ० बैरिस्टर सिंह यादव, पृ० 6

(ग) लोक साहित्य की परम्परा

प्राचीन से अर्वाचीन तक

लोक साहित्य का आविर्भाव आदिम मानस के जन्म के साथ ही हुआ होगा, यह मत विद्वानों में प्रचलित है । लिखित साहित्य में लोक का रूप ऋग्वेद से प्राप्त होता है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'देहिलोकम्' शब्द आता है, जिसका प्रयोग स्थान के अर्थ में हुआ है--

"सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व द्यौर्देहि
लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धू निंद्रस्य
यन्तु प्रसवे विसृष्टा: ।।"[1]

अर्थात् शौनकाचार्य ने अपने वृहत् देवता नामक ग्रंथ के छठवें अध्याय के 121 से 124 श्लोकों में अर्थ किया है । उनका कहना है वृत्रासुर अपने तेज से तीनों लोकों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश) को कष्ट देकर खड़ा था, उसको इन्द्र मार न सका इसलिए विष्णु के पास आकर इन्द्र ने कहा कि मैं वृत्र को मारता हूँ, तुम मेरे पास पैर फैलाकर खड़े हो जाओ और मैं जब वज्र उठाऊँगा तब आकाश में मुझे जगह दो । ठीक है -- कहकर विष्णु ने वैसा किया और आकाश में उसको स्थान दिया । ऋग्वेद[2] में लोक दो प्रकार के हैं -- पार्थिव और दिव्य लोक । ऋग्वेद में लोकगाथा और लोकगीतों के साथ-साथ अनेक ऐसे सूक्त भी हैं जो भौतिक विषयों से सम्बन्धित हैं, जैसे श्राद्ध तथा विवाह सम्बन्धी, पत्नी को पति के साथ रहने एवं प्रजा की समृद्धि के लिए उपदेश दिया गया है ।[3]

---

1. ऋग्वेद, मण्डल-8, सूक्त 100 ऋचा 18
2. ऋग्वेद, 10:14:9
3. ऋग्वेद, 10:85:27

ससुराल आगमन पर पत्नी को मांगलिक सौख्यदामी तथा पुत्रवती होने की प्रार्थना की गई ।[1] मृत्योपरान्त शव संस्कार विषयक मन्त्र भी ऋग्वेद की ऋचाओं में उल्लिखित हैं । इसी के सूक्त 10:34 में जुए की बुरी प्रथा की ओर इंगित किया गया है । बीस के लगभग संवाद सूक्त हैं । डाॅ0 ओल्डेनबर्ग के अनुसार ये प्राचीन आख्यानों के अवशिष्ट हैं । बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ वैदिक साहित्य और संस्कृति में लिखा है - "डाॅ0 सिल्वालेवी, डाॅ0 श्रोदर, डाॅ0 हर्टल इन्हें नाटक के अवशिष्ट अंश मानते हैं, जिनका संगीत और पात्र के सन्निवेश द्वारा अभिनय होता था । डाॅ0 विन्टरनित्स इन्हें प्राचीन लोकगीत काव्य का नमूना मानते हैं ।"[2] संस्मापाणि संवाद में ऋग्वेद कालीन एक सामाजिक चित्र प्रस्तुत है ।[3] लौकिक सूक्त में यक्ष्मा नाश के लिए अनेक सूक्त हैं जिनमें एक सूक्त में सपत्नी के कष्ट को दूर कर पति के पाने का विवरण दिया है --

"हमां खनाम्योषधिं बीरूधं बलवृत्तमम् ।

यदा सपत्नी बामते यथा संविदन्ते पतिम् ।।"[4]

वैदिक साहित्य में भी लोकसाहित्य के तत्व विद्यमान मिलते हैं । यह उस काल की जनभाषा में रचित साहित्य है । इसमें प्राकृतिक शक्तियों का विस्तृत विवेचन है और आर्यों का तत्कालीन सामाजिक जीवन इसमें प्रतिबिम्बित है । उनका ग्राम्य सभ्यता की ओर अग्रसर होना व पशुपालन के साथ कृषि कार्य के

---

1. ऋग्वेद, 10:85:43

2. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ0 172-173, बलदेव उपाध्याय

3. ऋग्वेद - 10: 130

4. ऋग्वेद, सूक्त 145

शुभारम्भ का उल्लेख भी इनमें है । वैदिक साहित्य लोकगीतों-सा स्वाभाविक है ।[1] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में इस लोक को अनेक प्रकार से फैला और प्रत्येक वस्तु में व्याप्त माना है --

"बहुव्याहितो वा अयं बहुशो लोक : क एतद्
अस्य पुनरीहतो अयात् ।"[2]

वेद व्यास की शतसाहस्त्री संहिता लोक-जीवन की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत करती है । एक स्थल पर उद्धृत है -

"प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर :"

अर्थात् जो लोक को स्वयं अपनी आँखों से देखता है, वही उसे पूरी तरह देख पाता है ।[3] पालि जातक के अन्तर्गत वावेस जातक में तत्कालीन व्यापारिक दशा का चित्रण लोक - संस्कृति का ही रूप है । नंच जातक में वैवाहिक प्रथा का उल्लेख और वर के आवश्यक गुणों का वर्णन किया गया है ।[4] जातकों में जनसाधारण के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाजों, अंध-विश्वासों आदि का पता चलता है ।

भारतीय चित्रकला में भी लोक का प्रतिबिम्ब झलकता है । जातक कथाओं और पाली साहित्य से लेकर प्राकृत और हिन्दी साहित्य तक सर्वत्र इनका वर्णन मिलता है ।[5] बौद्धकालीन जातकों में लोक सर्वत्र व्याप्त है । ग्राम उस समय सामाजिक व्यवस्था के केन्द्र थे । निर्भयता से मनुष्य पुत्रों को गोद में नचाते और घर में बिना

1• हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 196
2• जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, 3:28
3• सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का लेख-लोक का प्रत्यक्ष-दर्शन से उद्धृत, पृ० 66
4• पाली जातकावली - प्रो० बटुकनाथ शर्मा
5• अवधी का लोक साहित्य, डॉ० सरोजिनी रोहतगी, पृ० 14

ताला लगाये विचरते थे।[1] सुत्त पिटक के संयुक्त निकाय में ग्रामीण जीवन मुखरित हो उठा है। लोक समाज में व्याप्त जुए के खेलों का उसमें वर्णन है।[2] पाली साहित्य में नृत्य, गीत और नाटक आदि का वर्णन है। बालपन में सारिपुत्र और भोग्गलान गिरग्गसमज्जा (मूक अभिनय) देखने गये वह नाटक का ही रूप था।[3] ब्रह्मजाल सुत्त में वर्णित लौकिक विश्वास उस समय जनता में प्रचलित मिथ्या विश्वासों की ओर संकेत करते हैं। आरानाटिय सुत्त में मंत्र-विद्या, जादू-टोने आदि का प्रयोग मिलता है। उसमें लोकउत्सवों का भी उल्लेख हुआ है। आषाढ़ में कपिलवस्तु में खेत बोने का उत्सव मनाया जाता था। चतुर्दशी, पूर्णमाशी, अष्टमी आदि का व्रत रखने की रस्म थी और चन्द्र; अग्नि, सूर्य आदि की पूजा और नदी स्नानादि की प्रथा का प्रचलन था।[4] जातक कथा में साधारण जन-समाज में प्रचलित कथाओं का उल्लेख है। कोई भी लोककथा जातक का रूप धारण कर लेती थी।[5] पाली साहित्य के इतिहास में उद्धृत है कि जातक कथा में तीन हजार कथाओं का संग्रह है और ये भारतीय कथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं।[6] विक्रम पूर्व तीसरी से चौथी शताब्दी तक के भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अवस्था का चित्रण जातक कथाओं में उपलब्ध होता है।[7] जैन पुराणों के

---

1. कुटदन्त सुत्त, दीघ, 1:5
2. जातक, जिल्द पहली, पृ0 280
3. सम्मेलन पत्रिका, लोक साहित्य अंक,
   बुद्ध कालीन लोक जीवन, भरत सिंह, उपाध्याय, पृ0 137
4. मेरी गाथा, पृ0 30
5. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, विन्टरनित्स, पृ0 113-14.
6. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 275; 154-55
7. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, प्रथम अध्याय, पृ0 284

विमलदेव सूरी कृत 'पउमचरित' में पद्मप्रभ (राम की कथा) वर्णित है । राम-कृष्ण पाण्डवों की कथाओं को जैन मान्यताओं के अनुरूप ढाला गया है । इसके अतिरिक्त णयकुमार चरित (नागकुमार चरित) की कथा में लोककथाओं की सौतों वाली कथा का रूप मिलता है ।[1] हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में लोक कथाओं के समान लोक रूढ़ियों की अवस्थिति मानी गई है । इसमें एक विद्याधर तोते की कथा है जो उज्जैन के निकट पर्वत पर वास करता था ।[2] इसी ग्रंथ में अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि लोकगीत की शैली में 'नेमिनाथ चउपइ' में बारहमासा मिलता है ।[3] जायसी के नागमती विरह-वर्णन में बारहमासा है । भविसयत कहा (भविष्यदत्त की कथा) भी लोक कथानकों की रूढ़ि के लिए महत्वपूर्ण है ।
महाभारत तथा रामायण दोनों का मूल रूप लगभग छठी शताब्दी विक्रम पूर्व का माना जाता है । हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास के अनुसार --
"पूना से प्रकाशित महाभारत के संपादन में कई-कई बातों का पता चलता है । महाभारत के संस्कृत रूप के नीचे प्राकृत रूप का आधार विद्यमान है । इस बात की भी पुष्टि हो रही है । यदि ऐसा ही है तो महाभारत जन-जीवन का यश काव्य सिद्ध होता है जिसे बाद में संस्कृत रूप दे दिया गया । महाभारत की भांति संभवतः रामायण भी लोक-स्थानों के रूप में चलती रही होगी ।[4]
महाभारत में तत्कालीन लोक समाज में प्रचलित कथाओं, आख्यानों और

---

1. जैन साहित्य का इतिहास, नाथूराम प्रेमी, पृ.68
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 342
3. वही, पृ० 343
4. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, खण्ड-2, अध्याय 1, पृ० 201

उपाख्यानों का संकलन है । महाभारत और रामायण लौकिक जन के लिए रचित साहित्य है जिसमें सम्पूर्ण समाज का चित्रण मिलता है । आदि कवि बाल्मीकि के श्लोक द्वारा मानव की मूल प्रवृत्ति का लौकिक भाव प्रस्फुटित हुआ है । उस समय शिष्ट और लोक की भाषा का अन्तर तब ज्ञात होता है जब अशोक वाटिका में हनुमान को सीता से वार्तालाप के लिए भाषायी विचार करना पड़ा । रामायण के राम मानव हैं । उनमें मानवीय गुणों व भावनाओं का समावेश है जो लोक मानव का रूप है ।

महाभारत में सभापर्व के अन्तर्गत धूत पर्व में जुआ खेलने का लोक प्रसंग है ।[1] मांस विक्रेता धर्म व्याध्र के साथ युधिष्ठर का संवाद, व्यास जन्म की कथा, राजा शान्तनु का धीवर कन्या से विवाह, द्रौपदी का बहुपतित्व आदि अनेकों प्रथाएं और भगवान् का वेद से पृथक् लोक की सत्ता स्वीकार करना लोक जीवन का बिम्ब प्रस्तुत करता है । गीता में उन्होंने कहा है कि मैं लोक और वेद दोनों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ । दुष्यन्त, शकुन्तला, सत्यवान्, सावित्री और नल दमयन्ती की कथाएं महाभारत में सामाजिक व्यवस्थाओं का आभास दिलाती हैं । पुराणों में भी लोक तत्व बिखरा मिलता है । श्रीमद्भागवत में कृष्णावतार धर्म की संस्थापना व अधर्म के विनाश के लिए हुआ है । उनका अवतार रूप लौकिक जीवधारी के रूप में हुआ था, वे लोक मानस थे ।[2]

---

1. महाभारत, सभापर्व (धूतपर्व) गीता प्रेस का संस्करण, पृ० 845-914

2. भागवत पुराण, 10 : 21 : 40

पौराणिक काल की मूर्तिपूजा लोक जीवन का ही अंग रही है । उस समय के विभिन्न लोक विश्वासों में लोक-भावना निहित है । विभिन्न व्रत-उपवास आदि भी इसी के अन्तर्गत आते हैं । व्रतोपवास लोक जीवन के मुख्य अंग हैं । इस प्रकार लोक साहित्य की परम्परा चलती रही । सिद्धों के दोहों व चर्यापदों में लोक का भाव मिलता है । सिद्ध साधकों की समस्त साधना का लक्ष्य यही था कि वे किसी प्रकार माया जाल से मुक्त होकर लौकिक जीवन के दिव्य और आध्यात्मिक अर्थों को ग्रहण कर पायें ।[1] इनके दोहों से उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय धर्म का पृथकीकरण झलकता है । जनसाधारण कुल देवियों और ग्रामीण देवी-देवताओं का पूजन अर्चन करते थे, जिसमें टोना-टोटका भी होता था । तन्त्र और सिद्ध परम्परा का सम्बन्ध लोक में पूजित कुल-देवियों से अवश्य था, उसके कई महत्वपूर्ण प्रमाण मिलते हैं ।[2]

सिद्धों के कान्ह {कृष्णपाद} और सरहपा {शरहस्तपाद} के दोहे व चर्यापदों में लोक-साहित्य की झलक है । लोक साहित्य की यह प्राचीन परम्परा हिन्दी में विकसती चली गई है । इस काल में रासो, मुकरियां, जैन चरित काव्यों, नाथपंथी रचनाओं, संतों की अटपटी वाणियों एवं मुक्त पदों में लोक-जीवन का सजीव चित्र अंकित किया गया है ।

गोरखनाथ की उलटबांसियों और रचनाओं में साधारण जनता की बोली में तत्कालीन समाज के बाह्याडम्बरों पर व्यंग्य है । ये सब साहित्य से परे

---

1. सिद्ध साहित्य -धर्मवीर भारती, पृ0 237

2. महायान का क्रमिक विकास - चतुर्वेदी, हिन्दुस्तानी पत्रिका, पृ0 76

लोकसाहित्य की रचनाएं हैं ।[1] हिन्दी के प्रारम्भिक युग में मैथिली और राजस्थानी भाषाओं में रचित बृहत्कथा, कादम्बरी, पंचतन्त्र आदि में लोक कथाएँ मिलती हैं । विद्यापति के गीत लोककंठ पर विराजमान होने लगे थे । इनके ग्रंथ कीर्तिलता में भृंग-भृंगी संवाद लोक जीवन के प्रसंग से लिये गये हैं । वीर काव्य रासो में भी वीरता और ओज के साथ समाज को चित्रित किया गया है । राजस्थानी साहित्य में लोक तत्त्व का सर्वाधिक निरूपण हुआ है । "ढोला मारू रा दूहा" राजस्थान की एक प्रसिद्ध श्रृंगारी रचना है । यह लोक समाज का दर्पण है ।[2]

14वीं शताब्दी (उत्तरार्द्ध) में अमीर खुसरो की कुछ रचनाएँ दोहों, तुकबन्दियों, मुकरियों, पहेलियों और ढकोसलों के रूप में प्राप्त होती हैं; जो लोक साहित्य की पूर्व परम्पराओं को निर्धारित करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । अमीर खुसरो के नाम से प्रचलित ढोकसले आज भी गांवों में व्यवहृत हैं किन्तु यह कह सकना कठिन है कि उन ढकोसलों की रचनाएँ अमीर खुसरो के द्वारा ही हुई थी ।[3] तत्पश्चात् 15वीं शताब्दी में संत कबीर की रचनाएँ भी इसी परम्परा की एक कड़ी हैं । उनकी प्रेरणा से संत मत का आविर्भाव हुआ जिनकी रचनाओं में लोक-साहित्य की अभिव्यक्ति हुई ।[4] ब्रज क्षेत्र में सूरदास के सूरसागर का अक्षुण्ण महत्व है । इनके ग्रंथ में लोकजीवन भरा पड़ा है । इनकी रचना के मूल

---

1. गोरखवाणी - सं० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, सं०-राजबली पाण्डेय, पृ० 412
3. ग्राम साहित्य, भाग-2, रामनरेश त्रिपाठी, पृ० -73
4. हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 43

स्रोत वे लोक गीत तथा लोक गाथाएं रही होंगी जो राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला के सम्बन्ध में ब्रजमण्डल में गाई जाती रही होंगी। जायसी, तुलसी आदि कवि लोक कवि की श्रेणी में ही आते हैं । इनकी रचनाओं में तत्कालीन लोक समाज का सजीव अंकन है । इनमें लोक संस्कृति की विशेषताओं का उद्घाटन होता है । बिहारी, पद्माकर, रत्नाकर, देव इत्यादि कवियों ने लोक तत्वों से अपनी कृतियों को विभूषित किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लोक की बोली में अपने ग्रंथों को रचा । इनकी रचनाओं में जन-समाज मुखरित हुआ है । इसी प्रकार प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी से होती हुई लोक की यह परम्परा आज भी सतत् गतिमान है । लोक से ही आधुनिक समाज का आविर्भाव हुआ है, अतः यह सर्वत्र किसी न किसी रूप में विद्यमान है ।

हरियाणा प्रदेश में लोक-साहित्य के तत्त्व पौराणिक काल से पाये जाते हैं । महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र में लड़ा गया था । उसमें प्रसंगवश कहीं-कहीं लोकजीवन की झलक मिल जाती है । इस प्रदेश में वेदान्ती और निर्गुणपंथी अनेक साधु हुए हैं । 'बोहर अस्तल' नामक स्थान पर गोरखपंथ की कीर्ति पताका आज भी फहरा रही है । इनकी रचनाओं में हरियाणी संस्कृति की झलक मिलती है । 'छुड़ानी' में गरीबदास की अमर वाणियां आज भी गूँज रही हैं । 'दूबलधन' माजरा के महाराज नित्यानन्द स्वामी की लोक पावन वाणियों से कौन अभिभूत नहीं होगा । 'महम' में 'महमी' मुसलमानों के गीत गुंजायमान होते हैं । नाना संप्रदायों एवं अनेक मतमतान्तरों वाले इस प्रदेश में एक लोकधर्म के दर्शन होते हैं । मुगलकालीन समाज यहां के गीतों में मुखरित हुआ है । अंग्रेजों के शासनकाल के सजीव चित्र लोकगीतों में मिलते हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के संघर्ष से लेकर स्वतन्त्र भारत के सैंतीस वर्षों का लेखा जोखा जीवन के सभी पक्षों का

निरूपण लोक साहित्य में है । गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से लेकर भारत-पाक विभाजन तक का आंखों देखा हाल मौखिक परम्परा से लोक-साहित्य में चला आ रहा है ।

समाज का सांगोपांग वर्णन इनमें अंकित है । लोक की परम्परा प्राचीन काल से अब तक निरन्तर चली आ रही है जो हमारे प्राचीन समाज और आज के समाज को जोड़ने वाली एक कड़ी है ।

(ख) लोकसाहित्य की विशेषताएँ एवं महत्त्व

लोकसाहित्य का कार्य सामान्य जीवन के सर्वांगीण सत्य का उद्घाटन करना है । इसमें जनमानस की सरल, सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निरूपण हुआ है । इसमें स्वाभाविकता का पुट है, नित्यप्रति के जीवन की झलक है और वास्तविकता का धरातल भी है । किसी साहित्य मनीषी को अन्वेषण के उपरान्त इसमें बड़े अलंकार भी मिल जायेंगे, किन्तु उनकी उपस्थिति सायास न होकर अनायास है । अनुपम सादगी और स्वाभाविक सरलता लोक साहित्य के आत्मीय गुण हैं ।

लोक साहित्य मौखिक रूप में परम्परा से चला आ रहा है । इसको लोकश्रुति (वेद) नाम से भी पुकारा जाता है । वेद का नाम श्रुति शिष्य परम्परा श्रुतिक्रम से चलते आने के कारण पड़ा है । लोकसाहित्य भी चूँकि इसी क्रम से बढ़ता है अतः इसका नाम भी लोकश्रुति पड़ा । मौखिकता के कारण ही इसमें स्वाभाविक उन्मुक्त प्रवृत्ति पाई जाती है । लिपिबद्ध करने से इसके उत्तरोत्तर विकास में अवरोध पैदा होता है । इसकी स्वच्छन्दता समाप्त प्राय: हो जाती है । भले ही इससे इनकी सुरक्षा होती हो । फ्रैंक सिज़विक ने लोक साहित्य की लिपिबद्धता को उसकी मृत्यु कहा है । वास्तव में लोक साहित्य की व्यापकता व अनेकरूपता का कारण उसकी मौखिकता है । प्रो० किटरेज ने 'इंगलिश एण्ड स्काटिश बैलड्स' की भूमिका में इसी का समर्थन इन शब्दों में किया है -- "लोक साहित्य का शिक्षा से कोई उपकार नहीं होता ----- । जब कोई जाति पढ़ना सीख लेती है, तो सबसे पहले वह अपनी परम्परागत गाथाओं का तिरस्कार करना सीखती है । परिणाम यह होता है कि जो एक समय सामूहिक

जनता की सम्पत्ति थी, अब वह केवल अशिक्षितों की पैतृक सम्पति मात्र रह गयी है । इसके लिपिबद्ध न करने का कारण स्वाभाविक था कि वह निरन्तर रूपान्तरित होता रहे । अपभ्रंश हो और उसका रूप परिवर्तित होता रहे । इसके उपरान्त भी लोकसाहित्य में स्थायित्व रहा है ।

यह लोकमानस की अभिव्यक्ति है और लोकमानस अपनी मूल प्रेरणाओं के साथ आदिकाल से लेकर आज तक निरन्तर प्रवाहमान है, साथ ही अपनी अपनी वृत्तियों को अपने में समेटे हुए है । लोक साहित्य आज की वस्तु न होकर युग-युगों की वस्तु है जिसका आज भी उतना ही मूल्य है, जितना उसके रचनाकाल के समय था ।

लोकसाहित्य की शैली अनलंकृत होती है । लोकसाहित्य में बनावट, सजावट, कृत्रिमता व अलंकारप्रियता पर अधिक ज़ोर नहीं दिया जाता । डॉ० शंकरलाल यादव इसे उस वन्य कुसुम के सदृश मानते हैं जो बिना संवारे हुए भी अपनी प्राकृतिक आभा से दीप्तिवान है । इसमें नैसर्गिक रूक्षता {खुरदरापन} है, किन्तु है एक लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुक्त । यह तो लोकमानस की वे सहज तरंगें हैं जो सहृदयों के कलहंस को आल्हादित करती हैं । यह तो जाह्नवी की उस अजस्त्र जलधारा के सदृश है जो मानव के साथ अनादि काल से बहती चली आ रही है ।[1]

शिष्ट और लोक काव्य के अन्तर को पं० रामनरेश त्रिपाठी ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है -- ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्रामगीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार । ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का । ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं । इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है ।[2]

---

1. डॉ० शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य पृ० 40

लोकसाहित्य अज्ञात रचनाकार द्वारा रचित अज्ञातकाल का साहित्य है । यह परम्परा से एक से दूसरी पीढ़ी द्वारा आगे चलता रहा है । किस कृति का कौन लेखक है और उसका रचनाकाल कब है, किसी को नहीं पता । वास्तव में इनके रचयिता वे साधारण जन हैं जिन्होंने अपने नाम की परवाह किये बिना यह धरोहर समाज को भेंट कर दी । इसको समाज का योग मिला और इसने लोक साहित्य का रूप धारण कर लिया ।

लोक साहित्य किसी प्रकार की उपदेशात्मक प्रवृत्ति को लेकर नहीं लिखा गया और इसमें प्रचार, प्रोपैगेण्डा व उपदेश का लगभग अभाव रहता है । इसमें जनसाधारण के प्रिय ऐसे सात्त्विक भाव भरे रहते हैं । यहाँ उपदेशात्मक लोकोक्ति पर प्रश्नाचिन्ह लग जाता है । डॉ० यादव ने इसके उत्तर में कहा है कि लोकोक्ति साहित्य का प्राण वह कोरा उपदेश ही नहीं है । लोकोक्ति तो वह विट् एवं चमत्कार है जो शत-शत अनुभवों के द्वारा प्राप्त हुआ है और किसी के मुख से चमत्कृत रूप में प्रसूत हुआ है । इसलिए लोकोक्ति केवल 'अभिव्यक्ति' पर जीवित है, उपदेश पर नहीं । उपदेश तो वहाँ एक गौण तत्व है ।" लोकसाहित्य सम्प्रदाय रहित है, स्वच्छन्द है, उसे किसी देवी-देवता से कुछ लेना-देना नहीं है और न ही किसी सम्प्रदाय से । इसी अपनी उदात्त भावना के कारण इसका स्थान सर्वोपरि है, महत्व अक्षुण्ण है । लोकसाहित्य चाहे किसी भी देश का हो, किसी भी भाषा का हो, उसमें समानता पाई जाती है । संसार भर का लोकसाहित्य किसी न किसी रूप में एक दूसरे से मिलता है ।

लोकसाहित्य के बिना किसी देश की संस्कृति की कल्पना करना कठिन है । इसका बहुत महत्त्व है । लोकसाहित्य के पूर्ण ज्ञान के बिना अन्य ज्ञानों यथा धर्म गाथा, नृविज्ञान, जाति विज्ञान और भाषा विज्ञान का ज्ञान असंभव है । डॉ० यादव की दृष्टि में "विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने

के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गये हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोकसाहित्य ही दिशा निर्देश करता है ।"[1] आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रमाणिक एवं रोचक साधन लोक साहित्य है ।

मनुष्य ने अपने भय, आश्चर्य व जिज्ञासा को प्रकट करने के लिए गद्य अथवा पद्य में जो कुछ भी कहा है उसका अध्ययन बड़ा मनोरम एवं उपयोगी है । इसकी स्पष्टता नीचे के विवरण से हो जायेगी ।

1. ऐतिहासिक महत्त्व -- किसी देश के प्राचीनतम रूप की जानकारी प्राप्त करने का अनुपम साधन लोकसाहित्य है । इसमें युग, समाज व व्यक्ति के इतिहास को सजीवता प्रदान करने वाली सामग्री का संचय होता है । इसमें समय के व्यवधान से विनिष्ट हो चुकी घटनाएँ तरो-ताज़ा रूप में विद्यमान मिलती हैं। संसार के इतिहासज्ञों को लोकसाहित्य के माध्यम से भूतकाल की अमूल्य सामग्री प्राप्त होती है । जो उनके ज्ञान को अधिकाधिक पुष्ट करती है । इतिहास के प्रसिद्ध और गौरवान्वित व्यक्तियों का परिचय भी लोकसाहित्य ही देता है, यथा-हरिश्चन्द्र, चन्दरावल आदि । वर्णनात्मक दोहों में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश मिलता है ।
2. सामाजिक महत्त्व -- लोक साहित्य समाज का दर्पण है । इसमें समाज के सभी पहलुओं का सर्वांग चित्रण मिलता है । समाज में व्याप्त सुख-दुःख, राग-विराग, आशा-निराशा, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोभावों का समावेश लोकसाहित्य में किया गया है । सामाजिक विश्वास और परम्पराएँ भी रीति-रिवाज,

---

1. हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 43

आचार-विचार, रहन-सहन आदि के रूप में इसमें उपलब्ध हैं । समाज शास्त्र के विस्तृत और सर्वांगीण अध्ययन के लिए लोकसाहित्य अपेक्षित है । यह समाज का दिशा निर्देशन करता है । आन्दोलित करता है । इससे हमें प्रेरणा मिलती है । वह अतीत बताता है, वर्तमान में जिलाता है और भविष्य का दिशा निर्देश करता है । भारतीय समाज का सामाजिक ढांचा लोकसाहित्य के माध्यम से प्रकाश में आ जाता है । परिवार व समाज में व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों का यथातथ्यपूर्ण विवरण लोकसाहित्य में मिलता है । इस प्रकार लोकसाहित्य का सामाजिक महत्व अक्षुण्ण है ।

3. <u>भौगोलिक महत्व</u> -- लोकसाहित्य में विभिन्न भौगोलिक स्थानों यथा नदियों, पर्वतों, समुद्रों आदि का वर्णन होता है । अनेकानेक ऋतुओं, जलवायु, वातावरण आदि का भी समावेश इसमें होता है । विभिन्न प्रकार के व्यापार, उसके साधनों, आवागमन के साधनों की जानकारी लोक-साहित्य द्वारा प्राप्त होती है । देश की युगीन परिस्थितियों और भौगोलिक स्थितियों का वर्णन मिलता है ।

4. <u>धार्मिक महत्त्व</u> -- धर्म समाज का अविच्छेद्य अंग है । लोकसाहित्य में अनेकानेक ऐसे गीत उपलब्ध होते हैं जिनमें इनका अटूट सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है । लोक समाज में विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना होती है, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि प्राकृतिक उपादानों का पूजन अर्चन होता है, अनेकानेक तप-जप, व्रत-अनुष्ठानादि का आयोजन होता है, इन सभी का समग्रतया निरूपण लोक साहित्य में उपलब्ध होता है । किसी विशिष्ट समाज के अनेकानेक नैतिक एवं धार्मिक पक्षों का वास्तविक परिचय लोकसाहित्य द्वारा ही सम्भव है ।

5• शैक्षणिक महत्त्व :-

शिक्षा की दृष्टि से लोकसाहित्य पर्याप्त समृद्ध है । ग्रामीण अंचल में शिक्षा का कोई समुचित साधन नहीं है । तथापि वहां के लोगों के ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि होती रहती है । ~~यह ज्ञान जनता श्रवणोन्द्रिय द्वारा सकती है~~ । यह ज्ञान जनता श्रवणोन्द्रिय द्वारा अर्जित करती है । ग्रामों में परस ज्ञानार्जन के उपयुक्त विद्यालय हैं । इसमें उपदेश विषयक कहानियों की भरमार होती है, जिनको लोक कथाएँ कहा जाता है । बच्चे की शिक्षा उसकी मां की गोद से ही आरम्भ होती है । व्यवहारिक ज्ञान की शिक्षा उसे अपने परिवार के अन्य सदस्यों से समय-समय पर मिलती रहती है । कन्याओं को भी जीवन और जगत् की शिक्षा यहीं से मिलती है । लोक गीत तो जीवन के किसी भी अंश को नहीं छोड़ते । डॉ0 एलविन ने Folk Songs मैकलहिल्स' में स्पष्ट किया है कि "इनका महत्व इसलिए नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय में जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इसमें मानव शास्त्र (Sociology) के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है ।"

9

6• आर्थिक महत्त्व --

लोक साहित्य प्रत्येक युग के जनसाधारण की आर्थिक स्थिति से हमें अवगत कराता है । लोक साहित्य में सभी वर्गों का यथेष्ट निरूपण हमें मिलता है । जहां उच्च वर्ग की सोने की थाली में छप्पन प्रकार के खाद्यान्नों का उल्लेख मिलता है, वहीं समाज के दरिद्रों का भी वर्णन है । यही अन्तर हमें लोकगीतों द्वारा वेश-भूषा, रहन-सहन आदि में मिलता है । प्रत्येक संस्कार में इनकी आर्थिक असमानता का द्योतन होता है । शादी-ब्याह

के अवसर पर सम्पन्न वर्ग और दरिद्र वर्ग के अन्तर की झलक मिलती है । लोक साहित्य इन सबका सांगोपांग निरूपण करता है ।

7. नैतिक महत्व --

लोक साहित्य में लोक की नैतिकता का सजीव चित्रण मिलता है । नैतिकता और सद्-चरित्रता से लबालब भरे पात्र जनजीवन को नई राह दिखाते हैं । डॉ० विद्या चौहान के शब्दों में "लोक का नैतिक स्तर लोक साहित्य में अत्यन्त सजीवता से निरूपित होता है । सदाचार और पवित्र निष्ठाओं में पगे हुए पावन चरित्र लोक साहित्य के अध्येता को भाव विह्वल बनाये बिना नहीं रहते । आदर्श सती नारी का दिव्य रूप, पिता का त्याग, पुत्र का अनुराग, भाई बहन का मिलन बिछोह आदि भावोत्कर्ष के अनुपम उदाहरण प्राप्त होते हैं ।"[1] इसके विपरीत नैतिकता के ह्रास के अनेकों उदाहरण हमें लोकसाहित्य में प्राप्त होते हैं ।

8. सांस्कृतिक महत्व --

लोक साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष अति व्यापक है । संसार की विभिन्न संस्कृतियों का उद्भव व विकास कैसे हुआ, इसकी जानकारी हमें लोक साहित्य के पूर्ण अध्ययन से मिलती है । देश और समाज में व्याप्त सांस्कृतिक अनुष्ठानों का वर्णन भी इसका एक अंग है । लोक मानस के सांस्कृतिक उत्कर्ष व अपकर्ष हमें लोकसाहित्य में देखने को मिलते हैं । लोक साहित्य ही संस्कृति की अमूल्य निधि है । यह जन संस्कृति का दर्पण है ।[2]

---

1. डॉ० विद्या चौहान :- लोकसाहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० 67
2. डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 43, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य

महात्मा गाँधी ने लोक साहित्य की सांस्कृतिक महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "मैं लोकगीतों की प्रशंसा अवश्य करूँगा, क्योंकि मैं मानता हूँ कि लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार होते हैं ।" गुजरात के मनीषी काका कालेलकर के शब्दों में "लोकसाहित्य के अध्ययन से उसके उद्धार से हम कृत्रिमता के कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में फिरने डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे । स्वाभाविकता से ही आत्म शुद्धि संभव है ।"[1]

डॉ० शंकर लाल यादव ने इसका सांस्कृतिक महत्त्व बताते हुए निम्न उद्गार प्रकट किये हैं -- "संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है । इसके मूल तत्वों के सम्बन्ध में जो तत्व सबसे महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है, वह है विगत का प्रभाव । आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है । झूला झूलते, चाक्की पीसते, यात्रा करते हमारा आदर्श राम-लक्ष्मण के पुण्य चरित्र ही हैं । यही लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष है ।"[2]

9. <u>भाषा शास्त्रीय महत्त्व --</u>

लोकभाषा में रचित लोकसाहित्य का भाषा वैज्ञानिक महत्त्व भी अपना एक अलग और विशेष स्थान रखता है । भाषा के विकास के क्रम में बोली का अत्यन्त महत्त्व है । शब्दों के प्रामाणिक निरूक्त ज्ञान के लिए भी हम बोलियों का अध्ययन करते हैं, जिनका शुद्ध रूप लोकसाहित्य में ही मिलता है । ये परम्परा से बिना किसी परिवर्तन के चले आते हैं । इनका मूल रूप भाषा वैज्ञानिकों के लिए सहायक होता है । प्राचीन शब्द जो आज बोलचाल की भाषा में रूप

---

1. राजस्थानी लोकसाहित्य - सूर्यकरण पारीक, पृ० 19 से उद्धृत

2. डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 48 *हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य*

परिवर्तित कर चुका है, लोक-साहित्य में अपने मूल रूप में मिल सकता है और इस प्रकार किसी भाषा वैज्ञानिक को शब्द के क्रमशः परिवर्तित रूप को जानने में आसानी होती है ।

10. साहित्यिक महत्त्व --

लोक साहित्य में साहित्य की भाँति मानव हृदय के भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है । यद्यपि दोनों में अन्तर भी विचारणीय है । डॉ० विद्या चौहान के शब्दों में - " रसात्मक वाक्य" की अन्तश्छवि लोकसाहित्य में साहित्य से किसी प्रकार हीन नहीं है ।"[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोक साहित्य का सबसे अधिक महत्त्व सामान्य जीवन के सर्वांगीण सत्य का उद्घाटन करना है ।

---

1. डॉ० विद्या चौहान - लोक साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० 67

'लोकसाहित्य का वर्गीकरण'

लोकसाहित्य के अन्तर्गत अनेक विधाएं आती हैं, जिन्हें विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग तरह से वर्गीकृत और परिभाषित किया है । स्थूल रूप से लोकसाहित्य को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है --

(1) लोकगीत

(2) लोकगाथा

(3) लोककथा

(4) लोक नाट्य

(5) लोक उक्तियां

(6) लोक विश्वास

(7) मुहावरे

(8) पहेलियां

(1) लोकगीत --

ये समाज में जनमानस द्वारा किसी विशिष्ट उत्सव, त्यौहार, अनुष्ठान, संस्कारादि के समय होने वाली अनुभूति की सरल; स्वाभाविक एवं संगीतमय अभिव्यक्ति है । लोकसाहित्य में गीतों का विशेष महत्त्व है । उसमें हमारा इतिहास सुरक्षित है । जन मानस के दर्शन, संस्कृति, शारीरिक व मानसिक व्यापारों का यथार्थ चित्रण लोकगीतों में मिलता है । यह शिशु जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त आने वाले प्रत्येक छोटे-मोटे अवसरों पर गाये जाते हैं । इसमें जनजीवन की वास्तविक भावनाएं सुरक्षित रहती हैं । स्त्री व पुरुष के गीतों में भिन्नता होती है । इसी प्रकार इनमें जातिगत वैभिन्य भी दृष्टिगोचर होता है ।

§2§ लोकगाथा :-

लम्बे कथानक से युक्त गेय लोककथा 'लोकगाथा' कहलाती है। इसमें ऐतिहासिकता होती है जिसमें वीर पुरुष, सती नारी, आदर्श प्रेमी युगल आदि की प्रधानता होती है। इन्हीं मुख्य पात्रों के आधार पर इनका नामकरण होता है। जैसे - गोपी भरथरी, मीरा, पूरनभक्त, निहालदे राजा रसालू आदि। इन चरित्रों में दैवी प्रवृत्ति का बाहुल्य होता है। इनमें जातीय संस्कृति के अनूठे चित्र विद्यमान रहते हैं। घटनाओं का सहज एवं यथार्थ किन्तु भावमय निरूपण होता है। विभिन्न देश-विशेष में प्रचलित गाथा में वहाँ के समाज, वातावरण आदि का वर्णन आ ही जाता है। स्थानीय ऐतिहासिकता भी इसमें मिलती है। इनको अवदान, साका, राग अथवा किस्से के नाम से जाना जाता है। राजस्थानी में यह 'ख्यात' नाम से प्रचलित है। महाराष्ट्र में इसे पँवाड़ा कहते हैं -- जैसे जगदेव का पँवाड़ा। गुजरात में यह 'कथागीत' नाम से जाना जाता है।[1] ग्रियर्सन ने इन्हें 'popular song' की संज्ञा से अभिहित किया है। लैटिन भाषा में प्रचलित शब्द 'बैलेड' का इसे अनुवाद माना गया है।[2] इनका उद्देश्य धर्म, प्रेम, दया, दान, सहिष्णुता आदि की शिक्षा देना है। ये मौखिक रूप में परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चले जाते हैं। सिज़विक ने

---

1. श्री झवेरचन्द मेघाणी, लोक साहित्य - पृ० 50
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, §लोक संस्कृति अंक§ पृ० 77

इसकी लिपिबद्धता के विरूद्ध कहा है कि "हम किसी बैलेड को लिखकर उसका प्राणान्त कर डालते हैं ।"[1] डॉ० शंकरलाल यादव के अनुसार इसका मूलपाठ सुगमता से उपलब्ध नहीं होता -- "जो वस्तु मुख परम्परा से चलती रही है और जिसमें नये-नये गायकों का योगदान मिलता रहा है, उसका मौलिक एवं प्रामाणिक पाठ नहीं मिलता । जनता जब इन किस्सों को अपना लेती है तो वह उसकी सम्पति हो जाती है और उसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन होने लगता है ।[2] लोकगाथा में कथा के साथ गेयता की प्रधानता होती है । गाथा कथात्मक गीत है । गीत और कथा, ये दोनों तत्व लोकगाथा में अनिवार्यतः मिलते हैं ।[3] लोकगाथा वह सरल वर्णनात्मक गीत है जो लोक मात्र की सम्पति होती है और उसका प्रसार मौलिक रूप से होता है ।[4] लोक गाथा छोटे पदों में रचित एक ऐसी प्राणमयी सरल कविता है जिसमें कोई लोकप्रिय कथा बहुत ही विशद्‌ रीति से कही गयी हो ।[5] किसी भी वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नहीं होता । उसके अनेक पाठ हो सकते हैं ।

---

1. फ्रैंक सिज़विक, 'ओल्ड बैलेड' भूमिका

2. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 276-77

3. A Ballad is a song that tells a story - G.L.Kiterege- English and Scottish Popular Ballads by F.G.Child. Page 11

4. Simple narrative songs that belong to the people and are handed on by word to mouth. Old Ballads by Frank Sidgwick, P.3.

5. A simple spirited poem in short stanzas in which some popular story is graphically told. Dr. Murry, The English Ballad, P.3

3. लोक कथा --

मनुष्य अपनी मानसिक क्लान्ति के निवारण हेतु जब बाल सुलभ भावों में गोते लगाने लगता है तब उसके अन्तस् से कोई कहानी प्रस्फुटित होती है । इसी को लोक-कथा कहते हैं जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ी होती है । 'कथ' धातु से व्युत्पन्न होकर 'कथा' शब्द बनता है । इसका अर्थ है "वह जो कहा जाये ।"[1]

कथा मानव के सभी भावों को अपने में आत्मसात् किये रहती है । इनमें ऐतिहासिकता व काल्पनिकता दोनों मिलती हैं । कहानी के पात्र जड़-चेतन के भेद-भाव से रहित होते हैं । वेदों में इनका उल्लेख हुआ है । उपनिषदों में भी नचिकेता की कथा, अग्नि व यक्ष की कथा प्राप्त होती है । संस्कृत में प्राचीनतम संग्रह वृहत्कथा मिलता है । पंचतन्त्र में कथाएं भरी पड़ी हैं जिनका यूरोप की अनेकानेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। यह संस्कृत का प्राचीनतम ग्रंथ है । इसके अतिरिक्त संस्कृत में हितोपदेश, वैतालपंचविंशतिका, शुक सप्तति, माधवानल कथा, जातकमाला आदि ग्रंथ भी मिलते हैं । हिन्दी में भी इन कथाओं का बाहुल्य है । लोक कथाओं में कहानियों के दोनों तत्त्व -मनोरंजन एवं शिक्षा पाये जाते हैं ।[2] कथाओं में लोक मानस का तत्व विद्यमान होता है और साथ ही एक परम्परा जुड़ी रहती है ।[3] पाश्चात्य विचारक ने कथा को गाथा से भिन्न बताकर उसका आकार छोटा बताया है । उनका यह भी कहना है कि उसके पात्र, कथानक

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 183
2. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 38
3. अवधी का लोक साहित्य, डॉ0 सरोजिनी रोहतगी, पृ0 33

और स्थान सब अनिश्चित और अस्पष्ट होते हैं ।[1] पंडित शिवसहाय चतुर्वेदी इन्हें हवाई मानते हैं ।[2] लोक कथाएं अनन्त काल से चली आ रही हैं । न जाने कब लोक कथा गंगा के प्रवाह की भांति काल के पर्वतों से निकलकर मैदान में आ गई तथा किस शिव ने इसको सबसे पूर्व अपनी जटाओं में धारण किया है कि आज तक वह हर देश व समाज में उसी प्रकार से प्रवाहित है ।[3] इन कहानियों के विविध विषय होते हैं । जैसे मनोरंजनात्मक कथाएं,शिक्षाप्रद कथाएं, साहसी कथाएं, धार्मिक कथाएं, व्रत व त्यौहार सम्बन्धी कथाएं और विश्वास संबंधी कथाएं । इन कथाओं से ग्रामीण अपना मनोरंजन करते हैं और मानव की मूल प्रवृत्तियां इनमें अभिव्यक्त होती हैं । आधुनिक कहानियां जहां विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, श्रृंगारिक संघर्ष व जटिलताओं से परिपूर्ण दुःखान्तक होते हैं, वहीं लोक कथा सुख-समृद्धि के लोक में पर्यवसित होती हैं ।

(4) लोक नाट्य --

लोक समाज प्रसन्नता के समय में अपने मनोरंजन हेतु जिन संगीत प्रधान नाटकों का अभिनय बिना रंगमंचीय प्रसाधनों के देखता है, उन्हें लोक नाट्य कहते हैं ।[4] सामान्य जीवन में अवकाश के क्षणों में लोक नाट्य सार्वजनिक

---

1. मैककुलक
2. बुन्देलखण्ड की कहानियां, पं० शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ० 18
3. खड़ी बोली का लोक साहित्य, डॉ० सत्या गुप्ता, पृ० 173
4. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (लोक संस्कृति अंक) पृ० 77

मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन होता है । प्राचीन काल में नाटकों का विकास हो चुका था, यद्यपि आज जितना न हुआ हो । वहीं से हमें लोकनाट्य के बीज मिल जाते हैं । नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय 'नाटकोत्पत्ति' में नाटक के उद्भव के विषय में जानकारी दी गई है जिसमें वर्णित है कि इन्द्र व उनके साथी देवताओं ने ब्रह्मा से मनोविनोद के साधन देने का आग्रह किया, जिसमें मनोरंजन दृश्य और श्रव्य दोनों रूपों में हो सके अर्थात् ऐसा क्रीड़ानायक चाहिए जो देखे और सुने जाने के योग्य हो । साथ ही यह भी इच्छा प्रकट की कि यह साधन जाति के बंधन से रहित हो । परिणामस्वरूप ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद की रचना की ।[1] ऋग्वेद की संवादात्मक ऋचाएं नाटकीय संवादों का प्राचीनतम रूप है । पाणिनी के अष्टाध्यायी में 'अलिबंध' नाटकों का वर्णन है ।[2] पालि ग्रंथों में भिक्षुओं के लिए नाटक देखना वर्जित है ।[3] संस्कृत में भास, अश्वघोष और कालिदास के नाटक प्रख्यात हैं । इसके पश्चात् यह विकासक्रम चलता रहा और भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत कृष्ण लीला व राम लीला का जन्म हुआ । इस प्रकार उत्तर भारत में लोक धर्मी नाट्य परम्परा का सूत्रपात हुआ और लोक नाटकों का विकास होने लगा । इनके अनेक प्रकार मिलते हैं जैसे-रास, स्वांग, मंडली या नकल, नौटंकी, सांगीत, खोइया आदि। भारत में कई प्रकार के लोक-नाट्कों का प्रचलन है जैसे मांच (मध्य भारत में),

---

1. भरतमुनि नाट्यशास्त्र, 1/17-18

2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, भाग-16, पृ0 126

3. वही

ख्याल (राजस्थानी), भवाई (गुजरात में), जावा और गंभीरा (बंगाल में) तमाशा, ललित गोधल, बहुरूपिया, दशावतार (महाराष्ट्र) में ।[1]

लोक नाट्य व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है । रंगमंच सज्जा विहीन होता है और इसका निर्माण किसी लोकप्रिय वीर, दानी,प्रेमी,भक्त,परोपकारी, सत्यवादी अथवा सच्चरित्रगन मानव के जीवन पर किया जाता है । अधिकतर अभिनय केवल पुरुष करते हैं । इसमें पौराणिक कथाओं के मुख्य पात्रों का चरित्र चित्रण किया जाता है । देशानुकूल अलंकरण का पात्रों में अभाव होता है और संवाद संक्षिप्त, सरल एवं प्रभावशाली होते हैं । इसमें संगीत तत्व की भी प्रधानता होती है । संवाद गद्यात्मक व पद्यात्मक दोनों होते हैं ।

(5) लोक उक्तियां --

लोकोक्तियों में हमारे पूर्वजों के अनुभव के ज्ञान का अथाह भण्डार छिपा है । जन मानस में इनका बहुत प्रचलन है । मनुष्य अपने जीवन काल में जिन तथ्यों की अनुभूति करता है,उसका सम्पूर्ण निचोड़ लोकोक्तियों में होता है । लोकोक्तियां आकार में लघु होने पर भी अपने में शिक्षा, आध्यात्म,नीति, धर्म आदि को समेटे रखती हैं । समाज के नियम कानून भी इसमें समाविष्ट रहते हैं । व्यक्ति की एक सहज उक्ति ही लोक से स्वीकृत हो जाने पर लोकोक्ति बन जाती है । वैयक्तिक अनुभव समस्त मानव प्राणियों के मन एवं मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर सार्वजनीन एवं सर्वग्राह्य बन जाता है तब लोकोक्ति कहलाता है । इसकी परम्परा वेदों से मिलती है ।[2] जनता की समवेत अभिज्ञता (अनुभव) तथा विचार कहावतों

---

1. भारतीय लोक साहित्य, श्याम परमार, पृ0 180-82
2. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ0 57. डॉ0 विद्या चौहान ।

में उपलब्ध होते हैं ।[1] लार्ड रसेल ने इसे बहुतों की बुद्धिमानी और एक का चमत्कार कहा है ।

उपनिषदों में भइ इसकी अधिकता है । त्रिपिटक व जातक कथाओं में इसकी प्रचुरता है । संस्कृत में ये सुभाषित या सूक्ति के नाम से जाने जाते हैं । "सुष्ठु भाषित सुभाषितम् ।" हिन्दी में लोकोक्तियां विपुल प्रमाण में मिलती हैं । कई लोकोक्तियां हमारे प्राचीन साहित्य से ज्यों की त्यों चली आ रही हैं । जैसे संस्कृत का `वरमद्य कपोलों श्रीम्यूरात` अर्थात् कल के मोर से आज का कबूतर अच्छा । हिन्दी में इसका प्रचलित रूप है -- नौ नकद भले तेरह उधार नहीं । राजशेखर की कर्पूर मंजरी में उद्धृत `हत्थककंण किं दधणेण पेक्खी` का अनुवाद है हाथ कंगन को आरसी क्या ? प्राचीनता के अतिरिक्त लोकोक्तियों में व्यावहारिक ज्ञान का पक्ष भी उज्जवल है जिसमें काल्पनिकता से परे यथार्थता के दर्शन होते हैं । जार्जिया के एक विद्वान का कथन है कि •• लोकोक्तियां वे संक्षिप्त सुभाषित हैं जिनमें नैतिक विचारों तथा लौकिक ज्ञान का ही, जो जनता के चिरकालीन निरीक्षण तथा अनुभव से प्राप्त होता है -- वर्णन नहीं है बल्कि इसके अतिरिक्त वे संस्कृति के तत्त्व, पौराणिक कथाओं के स्वरूप तथा ऐतिहासिक घटनाओं पर भी प्रकाश डालती हैं । लोकोक्तियों को पांच भागों में बांटा गया है[2] --

---

1• डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, राजस्थानी कहावतां, भाग -1 भूमिका ।

2• हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग - 10, प्रस्तावना पृ0 132 से उद्धृत ।

§1§ स्थान विषयक लोकोक्तियाँ

§2§ जाति विषयक लोकोक्तियाँ

§3§ प्रकृति अथवा कृषि विषयक लोकोक्तियाँ

§4§ पशु-पक्षी विषयक लोकोक्तियाँ

§5§ प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ

लोकोक्तियों में व्यंग्य के द्वारा तथ्य प्रकाशन की परम्परा की प्रचुरता है । इसके छोटे से आकार में मानव का संचित ज्ञान होता है जिसकी प्रकृति सरलता है, जिसके कारण यह जनसाधारण के मानस-पटल पर स्पष्टत: अंकित हो जाती है । इसमें ग्राह्यतत्त्व और प्रभावात्मकता की अधिकता होती है । लोकोक्तियों के साथ उनके रचनाकारों के नाम भी उपलब्ध हैं, जिनमें घाघ, भड्डरी और डाक की कृषि और वर्षा विषयक लोकोक्तियाँ अति प्रसिद्ध हैं । घाघ और भड्डरी जनकवि थे जिन्होंने जनसाधारण की बोली में मौसम विषयक जानकारी को लोकोक्तियों में ढाला । उनकी नीति से सम्बन्धित अनेक लोकोक्तियाँ लोककंठ पर विराजमान हैं । सहदेव और भड्डरी की लोकोक्तियाँ वर्षा के बारे में जानकारी देती हैं -- "

"चिंउटी ले अंडे चली, चिड़िया न्हावे धूल ।
सहदेव कहे भाडली, बरखा हो भरपूर ।।"

अर्थात् यदि चींटियाँ अंडे लेकर चलें, चिड़ियाँ धूल में लेटें तो समझ लीजिये वर्षा अच्छी होगी ।

"पड़वा चले सबादली, पछवा चले नरोल §रिक्त§ ।
सहदेव कहे भाडली, बरखा गई कित ओड़ ।।"

अर्थात् यदि पूर्वी पवन चले और बादल हों, पश्चिमी वायु के चलने पर बादल न रहे तो निश्चय समझो वर्षा नहीं होगी ।

"सुक्कर आली बादली, रहै सनीचर छाय ।

कह सहदेव सुन भाडली, बिन बरसे ना जाय ।।"

अर्थात् यदि शुक्रवार को बादल हों और वे शनिवार तक छाये रहें तो निश्चय वर्षा होगी ।

इनके अतिरिक्त लाल बुझक्कड़, माधोदास, हृदयराम आदि का नाम भी इस क्षेत्र में अग्रणी है । इस प्रकार स्पष्ट है कि लोकोक्ति में सांसारिक व्यवहार पटुता होती है और इनमें जनमानस का अनुभूत ज्ञान संचित रहता है ।

6. <u>लोक विश्वास --</u>

निर्भय मनुष्य के मन में जब आशंकाएं जन्म लेती हैं तो उनसे भयभीत होकर मानव के अन्तस्तल में वैज्ञानिक धारणाएं जन्म लेती हैं और वे ही धारणाएं समयानुकूल तथा प्राकृतिक विवशताओं से सम्बन्धित लोक मानस के मन मस्तिष्क में शुभ एवं अशुभ संकेतों के रूप में उत्पन्न होती हैं । ये लोक विश्वास किसी न किसी रूप में आज भी समस्त विश्व में अपने शुभाशुभ लक्षणों सहित व्याप्त हैं । अनायास ही लोक विश्वास पर आधारित उक्तियाँ मनुष्य की जिह्वा से उच्चरित हो जाती हैं । इनके मूल में मनुष्य के अन्त:करण में निहित वे सूक्ष्म धारणाएं हैं जो आकस्मिक परिस्थितियों में जन्म लेती हैं, अत: इनकी जो परम्परा आज दिखाई पड़ती है, वह शाश्वत है ।

7. <u>मुहावरे :-</u>

मुहावरा शब्द मूलत: अरबी है जिसका अर्थ परस्पर वार्तालाप या सवाल जवाब करना है । आंग्ल भाषा में इसे 'ईडियम' कहते हैं । संस्कृत में इसका पर्यायवाची शब्द उपलब्ध नहीं है । वैसे 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति'

और `रमणीय`प्रयोग` इसी शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु ये मुहावरे शब्द का सटीक अर्थ नहीं देते ।[1] हिन्दी व उर्दू में लक्षणा-व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य ही मुहावरा कहलाता है, जिसका अर्थ उसके अभिधेयार्थ से भिन्न होता है ।

भाषा के जन्म के साथ ही मुहावरे की उत्पत्ति का इतिहास आरम्भ हो जाता है ।[2] पंचतन्त्र में "अर्द्धचन्द्रम दत्वा निस्सारित:" एक वाक्य है जिसमें अर्द्ध चन्द्र देना मुहावरा है जिसका अर्थ गला पकड़कर बाहर निकाल देना है । वेणी संहार के तृतीय अंक में अश्वत्थामा द्वारा कथित एक गद्यांश में `जीभ गिर जाना` मुहावरे का प्रयोग निम्न प्रकार से हुआ है -- "कथमेव प्रलपतां व: सहस्त्रधा न दीर्ण मन्या जिह्वा " अर्थात् इस प्रकार वार्तालाप करते हुए तुम्हारी जीभ के सहस्त्र टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?

पालि भाषा में शोर गुल के सम्बन्ध में `मछली मारना` मुहावरे का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है -- "केवटा मच्छे मच्छं विलोपेन्ति" अर्थात् मछुए मानो मछली मार रहे हों । प्राकृत भाषा में `मुंह पर मुहर लगाना` मुहावरा "महेसु मद्दा" (मुखेषु मुद्रा) के रूप में मिलता है । हिन्दी में पुराने मुहावरे तो चले ही आ रहे हैं, नये मुहावरों का भी सूत्रपात् हो रहा है । मुहावरा उस सुगठित पद समूह को कहते हैं जो

---

1. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ0 विद्या चौहान, पृ0 60

2. पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, `बोलचाल` पृ0 136-37

अपना साधारण अर्थ (वाच्यार्थ) नहीं अपितु एक विशेष अर्थ (रूढ़ार्थ अथवा लक्ष्यार्थ) प्रकट करता है।[1] लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य मुहावरा होता है। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विलक्षणता होती है।[2] भाषा के सजाने, संवारने और शक्ति वर्धन करने का कार्य मुहावरों का है। श्री हरिऔध ने मुहावरों का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है कि -- "घटना और कार्यकारण परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग्य द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में निवृत करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे-चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न भिन्न करना उसे अभीष्ट होता है।" मुहावरों के प्रयोग से भाषा में जीवनी शक्ति का संचार होता है। मुहावरों में संक्षिप्त पदावली, गोपनीयता व जीवन की व्यापकता का भाव रहता है।[3] इनके प्रयोग से भाषा का सौष्ठव बढ़ता है, उसमें सजीवता आती है और माधुर्य की सृष्टि होती है। मुहावरा आम भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह लघु वाक्य खण्ड है जिससे भाषा में जीवन्तता और रोचकता का संचार होता है। लोक मानस अपने चारों ओर के

---

1. हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 43।
2. भोजपुरी लोक साहित्य, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 553
3. अवधी का लोक साहित्य, डॉ० सरोजिनी रोहतगी, पृ० 111।
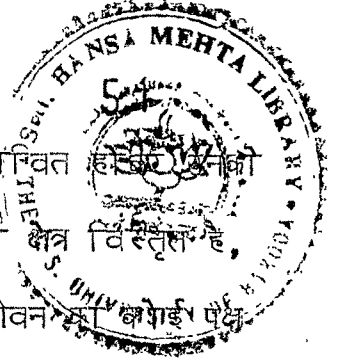
परिवेश में से अधिक आश्चर्यजनक व कौतूहलमय वस्तुओं से प्रभावित होकर उनको शब्दों में बांध देता है । ये ही मुहावरे बन जाते हैं । इनका क्षेत्र विस्तृत है, जिसमें सम्पूर्ण स्थावर व जंगम का समावेश हो जाता है । जीवन का कोई पक्ष इनसे अछूता नहीं है । लोक संस्कृति के अनमोल तत्त्व इनमें निहित हैं । इनकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, अपितु वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही यह सार्थक होता है ।

पहेलियाँ :-

पहेली में बुद्धि विलास व मनोरंजकता होती है । जिस बात को मनुष्य सबके समक्ष स्पष्टतः नहीं कह सकता, उसे वह गोपनीय भाषा में व्यक्त करता है । डॉ० फ्रेजर के अनुसार "पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी ।"[1] पहेलियों की परम्परा प्राचीन है । वैदिक ग्रन्थों से इनका मूल मिलता है, जिसमें ये 'ब्रह्मोदय' के नाम से जानी जाती हैं । अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ब्रह्मोदय आनुष्ठानिक क्रिया के रूप में इनका प्रयोग होता था । वेदों के साथ-साथ लोक में इस परम्परा का प्रचलन रहा होगा । उपनिषदों में नचिकेता और यम के मध्य जिस रहस्यमय तत्त्व के विषय में वार्तालाप हुआ, वह पहेली ही है । संस्कृत साहित्य में पहेली की अन्तर्लापिका और बहिर्लापिका दो श्रेणियां मिलती हैं । वेदों की ऋचाओं

---

1. The Golden Bough, Dr. ~~Max~~ Frazet, Vol.9
   Page 121.

में भी प्रहेलिका साहित्य मिलता है ।

"चत्वारि श्रृंगा भयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सो अस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, महादेवी भर्त्या आविवेश ।"[1]

गीता में भगवान् कृष्ण ने संसार की उपमा पहेली द्वारा दी है --

"ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसियस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।[2]

अर्थात् आदि-पुरुष परमेश्वर रूप मूल वाले और ब्रह्म रूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपल वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा जिसके वेद पत्ते कहे गये हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष (मूलसहित) तत्व से जान जाता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है ।

महाभारत में पांचों पाण्डवों से यक्ष द्वारा पूछे गये सभी प्रश्न प्रहेलिका के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, जिनका उत्तर केवल युधिष्ठर ही दे सके थे - " का वार्ता ? किमाश्चर्य ? का पन्था ? कश्य मोदते ?" अर्थात् संसार में नई बात क्या है? आश्चर्य की कौन सी वस्तु है ? कौन सा मार्ग प्रशस्त है ? और कौन इस विश्व में सुख-पूर्वक निवास करता है ?"

अपभ्रंश काल में सिद्धों और नाथपंथियों द्वारा पहेली का प्रयोग संधियुग (सिद्ध-सामन्त युग) में मिलता है । सिद्धों, तान्त्रिकों और नाथ-योगियों की वाणियां, जिन्हें संध्या भाषा की रचनाएं कहा जाता है, एक तरह से पहेली ही हैं, जिनके माध्यम से दर्शन और धर्म के सिद्धान्तों को व्याख्यायित किया गया है --

---

1. लोक साहित्य की भूमिका - कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 160-68
2. गीता अध्याय 15, संख्या 1

(1) भणत गोरखनाथ मच्छिद्ना पूता, मारयो मूधम्या अवधूता ।"

कबीर की उलटबांसियां पहेली का ही एक रूप है --

"छोरे चांरि भैंस चरावन जाई, बाहरि बैल गोनि घर आई
कहत कबीर जु इह पद बूझै, राम रमन तिसु सब किछु सूझै ।[1]

जायसी आदि सूफी कवियों की रचनाओं में पहेली के कई प्रयोग उपलब्ध होते हैं । 14 वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने साधारण बोलचाल की भाषा में मुकरियों और पहेलियों की रचना की जो अपनी विनोदशीलता के कारण जनमानस में अति प्रसिद्ध हुई --

" एक नार ने अचरज किया,
सांप मारि पिंजरे में दिया ।
ज्यौं ज्यौं सांप ताल को खाए,
सूखे ताल सांप मरि जाय ।।"

(दिया-बाती)

खुसरो की मुकरियों और पहेलियों पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि जिस ढंग के दोहे, तुकबंदियां और पहेलियां आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित मिली, उसी ढंग की पद्य पहेलियां आदि कहने की उत्कण्ठा इन्हें भी हुई ।[2] पहेली में बुद्धि चमत्कार के साथ मनोरंजकता का समावेश रहता है । जिस विषय या वस्तु से सम्बन्धित पहेली बूझी जाती है उसके साथ उसके कुछ संकेत, विशेष गुण, स्थान, आकार-प्रकार, रूप-रंग भी प्राप्त होते हैं और यही तत्व किसी विशेष पहेली को बूझने-बुझाने या सुलझाने में सहायता करते हैं । इनमें शब्दों की करामात अधिक और भाव कम होते हैं ।

---

1. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 30-37

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल पृ0 61

पहेलियों का प्रयोग विभिन्न सामाजिक उत्सवों के रूप में भी किया जाता है । जैसे हरियाणा में विवाह के अवसर पर जमाता की बुद्धि परीक्षा 'सींटणों' द्वारा की जाती है जो पहेली का ही एक प्रकार है । पं० रामनरेश त्रिपाठी पहेली को 'बुद्धि पर शान चढ़ाने का यन्त्र' या स्मरणशक्ति और वस्तुज्ञान बढ़ाने की कलें' कहते हैं । भोजपुरी में पहेली को बुझौवल कहा गया है । पहेली द्वारा हमारी बुद्धि तीव्रतर होती है । यह आबालवृद्ध सभी को समान रूप से प्रिय है । एक ओर जहां यह बालकों का मनोरंजन करती है और उनकी कौतूहलवृत्ति को शान्त करती है, वहीं दूसरी ओर युवकों व वृद्धों की जिज्ञासा का प्रशमन करती है । इसका क्षेत्र व्यापक है । यह जीवन के सभी आयामों को स्पर्श करती है । "पहेली वाणी का वह दुरूह व्यापार है, जिसमें मनुष्य की गोपनीयता की प्रवृत्ति अन्तर्भूत है ।"[1] पहेली गोपनीयता के आधार पर जन्मी होगी; किन्तु कालान्तर में यह बुद्धि विलास की वस्तु बन गई । पहेली की गोपनीयता में निहित आनन्द के कारण दण्डी आदि अलंकारवादियों ने इसे अलंकारों के अन्तर्गत रखा । परन्तु रस सम्प्रदाय के आचार्य इसे रसबोध में विरोधी कहकर इसे अलंकार की कोटि से बहिष्कृत कर देते हैं और मात्र वैचित्र्य की संज्ञा देकर आगे बढ़ते हैं[2] --

"रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका ।
उक्ति वैचित्र्यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका ।।"

---

1. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० विद्या चौहान, पृ० 63
2. साहित्यदर्पण - विश्वनाथ, दशम् परिच्छेद, पृ० 499

पहेलियों में मनोरंजकता के अतिरिक्त जीवन के गम्भीर पक्षों का भी सम्यक् निरूपण होता है और पौराणिक संदर्भों का भी निदर्शन होता है । पहेलियों के कई प्रकार के होते हैं, जैसे खेती विषयक, भोजन विषयक, घरेलू वस्तु विषयक, प्राणी विषयक, प्रकृति विषयक, अंग प्रत्यंग विषयक, तथा अन्य । पहेलियां जीवन के सभी आयामों को अपने में समेटती चलती है । इतिहास पुराण का लेखा-जोखा भी इसमें मिल जाता है । जनमानस में प्रचलित दृष्टिकूट भी इसमें दिखाई पड़ते हैं --

"स्याम बरण मुख उज्जर कित्ता
रावणसीस मन्दोदरी जित्ता ।
हनूमान पिता कर लेऊं, तब मैं राम पिता भर देऊं ।"

इसका भावार्थ इस प्रकार है --

प्र॰- उड़द क्या भाव हैं ?

उ॰ - ग्यारह सेर (रावण के दस सिर + मन्दोदरी का एक सिर)

प्र॰ - हवा से फटककर (हनूमान के पिता-पवन) लूंगा ।

उ॰ - तब दस सेर (राम पिता-दशरथ) के भाव दूंगा ।

पौराणिक एवं शास्त्रार्थ पद्धति पर भी गंभीर पहेलियों का प्रचलन हरियाणवी जनसमाज में मिलता है --

"आप कुंवारा बाप कंवारा और कंवारी महतारी ।
पुत्र पिता नै गोद खिला रह्या देखो नै बेदाचारी ।।"

उक्त प्रसंग हनूमान के पुत्र मकरध्वज के जन्म की कथा से सम्बन्धित है ।

ये पहेलियां लोकमानस की मेधा की भूख को बढ़ावा देकर प्रति-स्पर्धा का वातावरण निर्मित करती है । मनोवैज्ञानिक जिस प्रकार प्रश्नोत्तर से मानसिक रोगी की बुद्धि की थाह लेता है, उसी प्रकार पहेली बूझने वाला बुझाने वाले की बुद्धि परीक्षा पहेली द्वारा लेता है ।

(ङ) "लोक साहित्य और साहित्य में अन्तर"

लोक साहित्य और साहित्य दोनों में मानव मन की गहराई से निकले भावों की अभिव्यक्ति होती है । दोनों विविध और व्यापक हैं । दोनों अपने-अपने देश काल और वातावरण का प्रतिनिधित्व करते हैं । मानव मन संवेदनशील है, जिसमें सुख-दु:ख, आशा-निराशा, मिलन-बिछोह आदि भाव अवस्थित रहते हैं । यही भाव जब वाणी का आधार ग्रहण करके प्रस्फुटित होते हैं तो साहित्य का सृजन होता है । साहित्य में जिस संस्कृति का निदर्शन होता है, उसे लोक से ही बल मिलता है । श्री कोमलसिंह सोलंकी ने साहित्य को लोक से ही उद्भूत माना है -- "हमारा साहित्य जिस रूप में उसे हम आज देखते हैं उसके बीज इसी लोकजीवन, संस्कृति और लोकसाहित्य में पता नहीं कितने वर्षों से बिखरे हुए हैं । ठीक उसी प्रकार जैसे पानी और बूँदे ।"[1] साहित्य के विविध रूप यथा कहानी, नाटक, कविता आदि लोक साहित्य में भी अपने मूल रूप में विद्यमान हैं।

लोकसाहित्य और साहित्य में पर्याप्त वैषम्य है । लोक साहित्य मौखिक होता है और इसकी परम्परा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रही है । यह परिवर्तनशील है, लेकिन इसकी आत्मा वही है, मूल भाव में परिवर्तन नहीं आता, बल्कि बाह्यावरण परिवर्तित होता रहता है । साहित्य लिखित रूप में उपलब्ध होता है । यह मूल तत्व तो साहित्य से ही ग्रहण करता है, किन्तु भाषादि के सौष्ठव से इसका बाहरी रूप बदल जाता है । और यह लोकसाहित्य से कहीं ऊपर उठ जाता है । लोकसाहित्य में जनमानस के नित्य जीवन का प्रतिबिम्बन होता है । साहित्य व्यक्ति को लेकरचलता है । लोकसाहित्य में प्रधानता समाज की

---

1. सम्मेलन पत्रिका, लोक सं0 अंक, पृ0 115, लोक संस्कृति की आत्मा निबन्ध ।

होती है । साहित्य में रचयिता का उल्लेख मिलता है जबकि लोकसाहित्य अनाम या अज्ञात रचयिता की धरोहर है । साहित्य की भाषा परिमार्जित और सुष्ठु होती है, लोकसाहित्य जनपदीय बोली में अभिव्यक्ति पाता है । साहित्य नियमबद्धता का अनुगामी है, चाहे कोई भी विधा क्यों न हो, निर्धारित नियमों के अनुरूप ही साहित्य सृजन होगा । लोक साहित्य इस बंधन से मुक्त है । साहित्य में भाषा, शैली, रस, अलंकारादि का आग्रह रहता है, लोक साहित्य में यद्यपि अलंकार इत्यादि मिल जाते हैं, किन्तु वे आयास होते हैं, सायास नहीं । शिक्षित व्यक्ति ही साहित्य को लिख-पढ़ सकता है जबकि लोकसाहित्य का आस्वाद तो सभी ले सकते हैं । इन दोनों विधाओं के पाठक-श्रोताओं में भी वैभिन्य दृष्टिगोचर होता है, उनकी योग्यताएं भिन्न होती हैं । साहित्य के पाठक में हार्दिकता के साथ-साथ बौद्धिकता भी होनी चाहिए । लोक साहित्य में मन की कोमल-रागवृत्तियों की जागृति मात्र अपेक्षित है । पं० रामनरेश त्रिपाठी का इस विषय में मत उद्धृत है -- "सिद्ध कवियों की कविता का आनन्द वही उठा सकता है जिसने छन्द, व्याकरण और अलंकार शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन किया है । ऐसी कविता को हम स्वाभाविक कविता नहीं कह सकते । यह तो माली निर्मित उस क्यारी की तरह है जिसके पौधे कैंची से कतर कर ठीक किये रहते हैं और जो खास तरह की रूचि से विवश होकर सजाई जाती है । ग्राम-गीत तो प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों में, पहाड़ों पर, नदी तटों पर स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है । वह अकृत्रिम है । सिद्ध कवियों की कविता किसी बंगले का वह फूल है जिसका सर्वस्व माली है । पर ग्रामगीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते हैं, मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आंखें खोलता है, मन्द-मन्द समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुंह चूमता है और ओस जिस पर गुलाब-जल छिड़कती है । उसकी समता बंगले का कैदी फूल नहीं

कर सकता ।"[1] लोकसाहित्य में संस्कारों की प्रधानता होती है, इसमें हमारी संस्कृति व्याप्त होती है। साहित्य कल्याण में स्थिर दृष्टि रखता है । साहित्य की अपेक्षा लोकसाहित्य का आनन्द सहज और नैसर्गिक होता है । श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा का मत है कि -- " साहित्य की दुनियां में लोकजीवन छन-छन कर आता है । इसलिए साहित्यिक गीत मंजे सुधरे होते हैं और उनकी चमक-दमक गिने-चुने लोगों को ही आसानी से अपनी ओर खींच सकती है । पर इस मांजने, सुधारने और छानने में जीवन की बहुत-सी हरियाली भी कट-छंट कर बाहर हो छूट जाती है । जिससे साहित्य के गीतों में उबले छने पानी का आस्वाद्य होता है, जबकि लोकगीतों में ताजे पानी का आनन्द आता है ।"[2]

---

1. रामनरेश त्रिपाठी, ग्राम साहित्य, पहला भाग, पृ० 55 (प्रथम संस्करण)

2. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक में 'लोकसाहित्य में लोकजीवन की व्यापक अनुभूति' शीर्षक निबन्ध ।

: निष्कर्ष :-

प्रस्तुत अध्याय में लोक साहित्य के स्वरूप की चर्चा की गई है । 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है । इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है । उपनिषद् में भी इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है । भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, महर्षि व्यास के महाभारत आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है । मानस में प्रयुक्त लोक शब्द का तात्पर्य संसार व समाज है । मूलत: लोक शब्द अंग्रेजी के "FOLK" का समानवर्ती है, जिससे जनमानस का बोध होता है । समस्त विश्व के सभी मानव समूहों, मानवीय क्रिया कलापों तथा विचार परम्पराओं के रूप में यह सर्वत्र विद्यमान है ।

लोक साहित्य जनमानस के भावों का नैसर्गिक उद्‌गार है, जिसका प्रस्फुटन विभिन्न उत्सव, त्यौहार एवं ऋतुओं के आगमन पर होता है । इसमें जनमानस की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नृत्य, टोने-टोटके आदि के रूप में होती है ।

लोक साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । इसका आविर्भाव संभवत: मानव जन्म के साथ ही हुआ होगा । लिखित साहित्य में इसका उल्लेख ऋग्वेद से मिलता है । वैदिक साहित्य में भी इसके तत्व विद्यमान मिलते हैं । तब से आज तक यह परम्परा निर्बाध गति से प्रवहमान है । यह हमारे प्राचीन और आज के समाज को जोड़ने वाली कड़ी है ।

लोक साहित्य में जनमानस की सरल, सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निरूपण हुआ है । यह साहित्य परम्परा से मौखिक रूप में चला आ रहा है।

इसकी शैली अनलंकृत होती है, रचनाकार अज्ञात होता है । इसका ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, भाषा-शास्त्रीय और साहित्यिक दृष्टियों से अत्यन्त महत्व है ।

लोक साहित्य को लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य लोक उक्तियां, लोक विश्वास, मुहावरे और पहेलियों में वर्गीकृत किया गया है ।

लोकगीत जनमानस द्वारा अनुभूत भावों की सरल, स्वाभाविक एवं संगीतमय अभिव्यक्ति है । लम्बे कथानक से युक्त गेय लोककथा लोकगाथा कहलाती है । मनुष्य अपनी मानसिक क्लान्ति के निवारण हेतु जब बाल सुलभ भावों में गोते लगाने लगता है, तब उसके अन्तस् से कोई कहानी प्रस्फुटित होती है, यही लोककथा है । लोक समाज प्रसन्नता के समय में अपने मनोरंजन हेतु जिन संगीतप्रधान नाटकों का अभिनय बिना रंगमंचीय प्रसाधनों के देखता है, उन्हें लोक नाट्य कहते हैं । मनुष्य अपने जीवनकाल में जिन तथ्यों की अनुभूति करता है, उसका सम्पूर्ण निचोड़ लोकोक्तियों में मिलता है । लक्षणा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य मुहावरा है, जिसका अर्थ उसके अभिधेयार्थ से भिन्न होता है । पहेली में बुद्धि विलास व मनोरंजकता होती है ।

लोक साहित्य और साहित्य दोनों मानव मन की गहराई से निकले भावों को अभिव्यक्ति देते हैं । साहित्य जहां लिखित होता है, वहां लोक साहित्य मौखिक । लोक साहित्य सामूहिक होता है और परम्परा से चलता रहता है, इसका बाहरी आवरण परिवर्तित होता रहता है, जबकि साहित्य का रचयिता ज्ञात होता है, वह उसकी व्यक्तिगत वस्तु होता है । इस प्रकार जहां इन दोनों में साम्य मिलता है, वहीं वैषम्य भी है ।

द्वितीय अध्याय

§1§ "लोकगीतों का स्वरूप एवं परिभाषा"

मनुष्य इस जगत् में आने के पश्चात् स्वयं को आनन्दित करने के लिए नानाविध उत्सवों का आयोजन करता रहा है । उस समय हर्षातिरेक से भावाभिभूत होकर उसने जो लयबद्ध स्वानुभूति गाकर अभिव्यक्त की, वह लोकगीत कहलायी । लोकगीतों के बिना सभी संस्कार अधूरे हैं । किसी देश की समृद्धि एवं खुशहाली का अनुमान उस देश के विभिन्न उत्सव-त्यौहारों द्वारा सहज ही हो सकता है । उत्सव त्यौहारों की अधिकता उस देश की समृद्धि को इंगित करती है । हमारा देश इस विषय में गौरवशाली रहा है । उत्सव एवं त्यौहार लोकगीतों के बिना फीके लगते हैं । इनकी पूर्वसूचना लोकगीत दे देते हैं । भारत के प्रत्येक क्षेत्र के लोकगीत अपने काल की सामाजिक,धार्मिक तथा पारिवारिक गतिविधि का सुन्दर चित्रण करते हैं । इनमें हमारा इतिहास सुरक्षित है । इनकी यात्रा का कोई ओर-छोर नहीं है । इनकी अजस्त्र धारा युग-युगों से प्रवहमान है । हमारे अतीत की कड़ियां, भविष्य की आशाएँ और आज की अनुभूतियां इस अमिय धारा की अक्षय थाती हैं । तभी तो त्रिकालदर्शी इन लोकगीतों को हमारी संस्कृति के मुंहबोले चित्र कहा गया है ।[1]

लोकगीत ग्राम्य संस्कृति के जागरूक प्रहरी हैं । ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं । §श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने 'Folk' के लिए लोक की अपेक्षा 'ग्राम' शब्द को अधिक मान्यता प्रदान की है । अतः इनके द्वारा प्रयुक्त शब्द 'ग्रामगीत' 'लोकगीत' का द्योतक है ।§ उनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है । ये मानव हृदय की प्रकृत अभिव्यक्ति हैं ।[2] भावाभिव्यक्ति के लिए

---

1. हरियाणा संवाद पत्रिका, वर्ष-12 ,अंक 23, डा० भीम सिंह मलिक का लेख
2. कविता कौमुदी, भाग-5, ग्रामगीतों का परिचय प्रकरण, प्रस्तावना,पृ० ।

इनमें वाणी के लयात्मक स्वरूप की प्रमुखता होती है । सामूहिक गान के परिचायक लोकगीतों में लोकरंजन की भावना का प्राधान्य होता है ।

लोकगीतों के उद्गम के विषय में सभी विद्वानों को जिज्ञासा है और उन्होंने इसके सम्बन्ध में अपने मत दिये हैं । वैसे इनकी सृष्टि के आदि स्त्रोत के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है । मानवीय ज्ञान के अनन्त भण्डार इतिहास के अनेक पृष्ठों की उल्ट-फेर के पश्चात भी लोकगीतों के सृजन की खोज निकालना किसी भी अन्वेषक के लिए संभव नहीं है । अतीत के शत-सहस्त्र युगों के अनावरण के पश्चात् भी ~~लोकगीतों के सृजन की खोज निकालना किसी भी अन्वेषक के लिए संभव नहीं है । अतीत के शत-सहस्त्र के पश्चात् भी~~ लोकगीतों की उत्पत्ति के क्षणों को किसी काल-विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता ।[1]

मानव ने सहानुभूति से प्रेरित होकर अपने भावों को वाणी द्वारा मुखरित किया और यही मुखर वाणी लोकगीत बन गई । इसी आधार पर पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों को मानव हृदय का उद्वेलित एवं स्वत: स्फूर्जित संगीत कहा है --"The primitive spontaneous music has been called folk song." मानव मात्र में अपने भावों को प्रकट करने की इच्छा और क्षमता होती है जो शब्दों का सम्बल पाकर फूटती है तो गीत बन जाती है । सुख -दु:ख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है ।[2] मानव हृदय में स्पन्दित होने वाले विविध भाव ही लोकगीतों में व्यक्त होते हैं । जब हृदय प्रसन्नता के अतिरेक में उल्लासित होता है तो वह उल्लास आंगिक चेष्टाओं द्वारा प्रकट होकर नृत्य

1• लोकायन, डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ०-6

2• विवेचनात्मक गद्य, महादेवी वर्मा, पृ० 141

बनता है और मुखर होकर लोकगीत । लेकिन केवल सुख ही लोकगीतों की प्रेरणा नहीं है । कष्ट एवं पीड़ाओं की अनुभूति भी लोकगीतों की सृष्टि में सहायक होती है । देवेन्द्र सत्यार्थी का मत इस सम्बन्ध में उद्धृत है --

"कहाँ से आते हैं इतने गीत ? स्मरण - विस्मरण की आँख मिचौनी से, कुछ हट्टहास से और कुछ उदास हृदय से । जीवन के खेत में ये गीत उगते हैं । कल्पना भी अपना काम करती है । रागवृत्ति भी, भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी ।[1]

लोकगीतों के निर्माण के विषय में विद्वानों में मतभेद है । नृतत्व--शास्त्र एवं समाजविज्ञान के सिद्धान्तों से यह मत प्रकट होता है कि लोकगीतों का निर्माण जनसमूह द्वारा होता है । किन्तु यह मत भ्रामक है । वैसे आदिम मानव समाज का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने भी यह माना है कि मानव ने अपने मूल भावों की अभिव्यक्ति सदैव सामूहिक गीतों में की है । जर्मन भाषा शास्त्र वेत्ता विलियम ग्रिम ने अपने 'समुदायवाद' में कहा है कि "लोककाव्य का निर्माण अपने आप विशाल जनसमूह के द्वारा होता है, किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा नहीं ।"[2] प्रो० किटरीज़ ने अपनी पुस्तक English and Scattish Ballads में लिखा है कि लोक का निर्माण जनसमूह द्वारा होता है ।' पाश्चात्य विद्वानों का यह मत उचित प्रतीत नहीं होता । लोकगीतों का निर्माण तो प्रायः कुछ ही व्यक्तियों द्वारा होता है, किन्तु उनकी अनुभूति की व्यापकता जनसामान्य

1- धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० 178

2. He(Grime) Maintained that the poetry of the people 'Sings himself,' it has no individual poet behind it and is the product of the whole folk."

F.B. Gummere : Old English Ballds, P-49-50.

के हृदय से मेल खाकर सार्वजनिक वस्तु बन जाती है ।[1] यह प्रमाणित किया जा चुका है कि लोकगीतों का रचयिता कोई एक व्यक्ति था । वह कला, शिक्षा, अनुशीलन, कुशाग्रता तथा स्मरण शक्ति में बहुत आगे था । उनके रचयिताओं में अलग-अलग स्वभाव और योग्यता मिलती है । लेकिन हमारी परम्परा रही है कि रचनाकार अपनी कृति में नाम का उल्लेख नहीं करता । वेद अनादिकाल से रचनाकार के नाम के बिना चले आ रहे हैं । विद्वानों ने बहुत खोज की लेकिन असफलता उनके हाथ लगी । अन्ततः इनको अपौरूषेय मान लिया गया । यही परम्परा लोकगीतकार ने अपनाई है । उनकी रचनाएँ अलिखित थी, उनको जन समाज ने कण्ठस्थ कर लिया । लोकगीतों के आचार्य फ्रांसिस चाइल्ड का मत है कि लोकगीतों का रचयिता इन लोकगीतों की सृष्टि कर जनता के हाथों इन्हे समर्पित कर अन्तध्यान हो जाता है ।[2] अतः लेखकों का नाम विस्मृति के गर्भ में चला गया । लोक साहित्य का कोई रचयिता नहीं होता (कहना) एक अनुचित साधारणीकरणता को परिभाषित कर देना है ।[3] अनेक लोकगीतों में रचनाकारों के नाम उपलब्ध हो भी जाते हैं । लोकगीत एक व्यक्ति द्वारा रचा गया और उस गीत को समूह ने अपनी वाणी दी, जिससे वह सामूहिक माना जाने लगा । समूह गीत को लम्बा कर सकता है, गीतों की आयु बढ़ा सकता है, परन्तु समूह का कोई एक मस्तिष्क नहीं होता, जो गीतों की रचना करे । जिस प्रकार सरकार के कोई मस्तिष्क नहीं होता, उसके पीछे कभी किसी की डिक्टेटरशिप काम करती है तो कभी किसी की नीतियां ।[4] उसी प्रकार

---

1. लोकायन, डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० - 1
2. The Theory of Knowledge by मौरिक कमफोरट, पृ० 57
3. लोक साहित्य एक निरूपण, श्री रामचन्द्र बोड़ा, पृ० 23
4. श्री चन्द जैन, लोक कथा विज्ञान, पृ० 12

लोकगीतों की पृष्ठभूमि में रचनाकार का मस्तिष्क होता है । वास्तव में गीत व्यक्ति विशेष द्वारा लिखा जाता है । समूह इसे अपनी रुचि व स्थिति के अनुरूप सुधरता-बिगाड़ता रहता है । श्री कृष्णदास के कथन से इस मत की पुष्टि हो जाती है । वे लिखते हैं कि "निश्चित रूप से इन कलाकृतियों और लोकगीतों आदि के पीछे व्यक्तियों का हाथ रहा है । निश्चित रूप से वे अपने समय में अपने समाज में समादृत थे । परन्तु उन्होंने अपनी कलाकृतियों के नीचे अपना नाम नहीं जोड़ा और उन्होंने अपनी कला कृति में सुधार, परिवर्धन अथवा परिष्कार करने से किसी को रोका नहीं । फलत: मूल रूप से व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी वह जनसमाज की, पूरे लोक की रचना हो गयी ।"[1] लोकगीतों के रचयिता अज्ञात इस कारण हैं कि हम उन्हें खोज निकालने में असमर्थ हैं क्योंकि अधिकांश संदर्भों में उन्होंने अपने नाम रचनाओं के साथ नहीं जोड़े और कहीं-कहीं यद्यपि जोड़ भी दिये हों, तो वे लिपिबद्ध न होने के कारण काल के प्रवाह में लुप्त हुए हैं ।

इस प्रकार लोकगीतों का उद्‌गम स्त्रोत ज्ञात होते हुए भी अज्ञात है । लोकगीतों के विद्वान स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी ने लोकगीतों की उत्पत्ति के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि "धरतीना कोई अंधारा पडोमांथी वह्या आवतां झरणानु मूल जेम कोई कदापि शोधी शक्युं नथी, तेम आ लोकगीतो नां उत्पत्ति स्थऌ पण अणशोध्यां ज रह्या छे ।"[2]

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया

1. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, श्री कृष्ण दास, पृ० 19
2. रढियाली रात, भाग-1, भूमिका, पृ० 61

किया है, जो एक प्रकार से इसका अनुवाद ही है --

" जैसे कोई नदी किसी घोर अंधकारमयी गुफा से बहकर आती हो और किसी को उसके उद्गम का पता न हो, ठीक यही दशा गीतों की है ।"

इन लोकगीतों को इनके अध्येताओं व विवेचनकर्ताओं ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है । श्री रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार लोकगीत ग्राम्य संस्कृति के जागरूक प्रहरी हैं । ये प्रकृति के उद्गार हैं । इनमें अलंकार नहीं केवल रस है,छन्द नहीं केवल लय है ।[2]

"आदिम मनुष्य-हृदय के गानों का नाम लोकगीत है । मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करूणा की, उसके रूदन की, उसके समस्त सुख-दु:ख की ------ कहानी इसमें चित्रित है --
------ न जाने कितने काल को चीरकर ये गीत चले आ रहे हैं ।
------ काल का विनाशकारी प्रभाव इनपर नहीं पड़ता ।
------ किसी की कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया पर ये अमर हैं ।"[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के परिचय की भूमिका में इन गीतों को आर्येतर सभ्यता के वेद माना है ।[4]

लोकगीतों का रचयिता अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर गीतों की रचना करता है । कालान्तर में व्यक्ति की रचना को समूह का स्वर मिल जाता

---

1. कविता कौमुदी, भाग-5, ग्रामगीत प्रकरण, पृ0 1।
2. कविता कौमुदी, भाग-5, ग्रामगीतों का परिचय प्रकरण, प्रस्तावना,पृ0 1-2
3. स्वर्गीय सूर्यकरण पारिख एवं नरोत्तम स्वामी, राजस्थान के लोकगीत {पूर्वार्द्ध} प्रस्तावना, पृ0 1-2
4. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, भूमिका, पृ0 5

है और रचना सामूहिक लोकगीत बन जाती है । डॉ0 सरोजिनी रोहतगी के विचार में गीत वे हैं जो अपनी प्राचीन परम्परा के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी रचनाकार के व्यक्तिगत व्यक्तित्व से निर्लिप्त पर समस्त लोक के व्यक्तित्व को समेटते हुए लोकमानस से तादात्म्य स्थापित करते हुए आगे बढ़ रहे हैं ।[1] लोकगीत जन-साधारण की सुख-दुःखमयी भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति होती है जो सबकी भावनाओं से तादात्म्य स्थापित कर लेती है । डॉ0 शंकरलाल यादव के मत में लोकगीत लोकमानस के वे अजस्त्र एवं निश्छल प्रवाह हैं जिनका लोक प्रतिभा के द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्माण होता है एवं गान होता है । लोकगीत लोक द्वारा लोक के लिए गाया गया गीत होता है ।[2] लोकगीत चूंकि मौखिक होते हैं अतः यह युगों तक लोक की जिह्वा पर जीवित रहते हैं । ये जनश्रुति से सम्बन्धित होते हैं । इनमें भाव, लय और मुग्धता अपेक्षित होती है । कोई व्यक्ति विशेष यदि कुछ ऐसे गीत लिख दे जो जन-मानस में स्पन्दन करते रहें, जो समाज में समय-समय पर गाये जाते रहें जो मेले उत्सवों आदि में समवेत स्वर में बहुधा ~~बहुधा~~ गाये जाते रहें और जो स्वतः ही लोगों के मन में प्रविष्ट हो कण्ठों से प्रस्फुटित होते रहें तो वे कालान्तर में लोकगीत बन जाते हैं । 'ईसुरी की फागें' और 'सुखैया की होली' अब लोकगीतों की श्रेणी में इसलिए आने लगी हैं क्योंकि उनमें जनमानस में प्रविष्ट होने की क्षमता है, उनका समय समय पर गाया जाना, उनका घर घर में गूंजना आदि स्वाभाविक रूप से हो रहा है ।[3]

1- अवधी का लोक साहित्य, पृ0 148

2• हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 39

3• लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, ~~पृ0 11~~ डा० कुलदीप, पृ० 11

लोकगीतों में किसी प्रदेश का, देश का इतिहास सुरक्षित मिलता है । लोकगीत जीवन की सामूहिक चेतना का फल होते हैं । लोकगीत जनता के सामाजिक प्रयोजन से निसृत होते हैं । लोकगीत को समझने से जनता की संस्कृति व परम्परा को समझा जा सकता है । लाला लाजपत राय के शब्दों में देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों से समझा जा सकता है । मानव हृदय का भाव विलास अपनी उत्कट स्थिति में लयात्मक आरोहावरोहों में जब भाषा बद्ध होकर प्रवाहित होने लगा तो शब्द शास्त्रीयों ने उसे गीत कहा और इसी गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों (घरेलू वाणी) में लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत के नाम से ज्ञापित किया गया ।[1] लोकगीतों का रचयिता पिंगल-शास्त्र का ज्ञाता नहीं होता । उसकी रचनाएँ शास्त्रीयता से असंपृक्त होती हैं । शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपनी आनन्द तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी उद्भूत करता है, वही लोकगीत है ।[2] डॉ० सत्येन्द्र के मत में वह गीत जो लोकमानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोकमानसाभास भी हो, लोकगीत के अन्तर्गत आएगा ।[3] लोकगीत अनेक स्तरों पर साहित्यिक गीतों से भिन्न होते हैं । लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त

1- लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० विद्या चौहान, पृ० 73

2- सदाशिव फड़के, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृ० 250-51

3- लोक साहित्य विज्ञान, डॉ० सत्येन्द्र, पृ०

भी रहता है .... वे लोक भावना में अपने भाव मिला देते हैं । लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है, किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है ।[1] किसी भी देश की संस्कृति की आत्मा उस देश के लोक साहित्य में निवास करती है । लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह-बोलते चित्र हैं ।[2] रस लोकगीतों की आत्मा है । यही तत्त्व है जो लोकगीतों की व्यापकता में योग देता है । डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के मत में -- गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं ।[3] लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत अभिव्यक्ति है । इसमें मानव जहां अपने सुख-दु:खों की अभिव्यक्ति करता है वहां वे उसके मनोरंजन के साधन भी हैं । ग्रामगीत संभवत: वह जातीय आशुकवित्व है जो कर्म या क्रीड़ा के ताल पर रचा गया है । गीत का उपयोग जीवन के महत्त्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है । लोकगीतों में लय की प्रधानता होती है । लय बनाने के लिए इसमें टेक की प्रवृत्ति पाई जाती है । लय लोकगीतों को शीघ्र कण्ठस्थ करने में सहायक होती है । इनके जीवित रहने का मुख्य कारण लय है । लोक-जीवन में लोक गीतों की एक चिरन्तन धारा अनादिकाल से चली आ रही है । मेरे अपने विचार से ये लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन{ध्वनि} प्रधान होते हैं ।[4]

1- काव्य के रूप - गुलाबराय, पृ० 123
2- "आजकल" {दिल्ली}, देवेन्द्र सत्यार्थी, संख्या-7, नवम्बर, 1951
3- 'गंगा धीरे बहो', देवेन्द्र सत्यार्थी, भूमिका, पृ० 9
4- हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, संवत् 2010, पृ० 373 शान्ति अवस्थी ।

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों कोभिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है । उनकी दृष्टि में लोकगीत उस जन-समूह की संगीतमयी काव्य रचनाएं हैं, जिसका साहित्य लेखनी अथवा छपाई से नहीं, वरन् मौखिक परम्परा से अवतरित रहता है ।[1] Encyclopaedia Britanica में आदिकालीन स्वत: स्फूर्त संगीत को लोकगीत कहा गया है ।[2] Columbia Encyclopedia में अज्ञात कलाकार द्वारा रचित एवं मौखिक परम्परा से सम्प्रेषित संगीत कोही लोकगीत कहा गया है ।[3]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि लोकगीत किसी व्यवस्थित साहित्यिक या सांगीतिक प्रक्रिया का परिणाम न होकर जीवन की स्वाभाविक क्रियाओं व व्यापारों में लगे जनमानस के सरल व सहज भावों की प्रकृत अभिव्यक्ति है । ये लोक मानस के वे अजस्त्र एवं निश्छल प्रवाह हैं, जिनका लोक प्रतिभा के द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्माण एवं गान होता है । हमारे लोकगीतों में वर्णित विषय भौतिकता से आध्यात्मिकता तक सभी पक्षों का समग्र विवेचन प्रस्तुत करते हैं। लोकगीतों में लोकनायक के अन्तर्भावों का वास्तविक चित्रण होता है । इनमें जटिलता, गोपनीयता और दुरूहता नहीं होती । हृदय में उत्पन्न होने वाले सुख-दु:ख के सीधे-सच्चे भावों का स्पष्ट

---

1. Folksong Comprise the poetry and music of the groups whose Literature is perpatuated not by writing and print, but through oral tradition - standard Dictionary of folklore, Mythology and legend, Vol-II, P.1032.

2. Primitive Spontanious music has been called folksong- Vol IX, P.447

3. Folksong : Music of Anonymons composition, transmitted orally" Columbia Encyclopedia, P-737

और निश्छल प्रकटीकरण लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता मानी गई है। लोकगीतों की निश्छल स्वाभाविकता के समक्ष संसार की समस्त कृत्रिमता नगण्य है । इस विषय में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत पूर्णत: तर्कसंगत प्रतीत होता है - "लोकगीत की एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खण्डितायें और धाराएँ न्यौछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं । ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्रविशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं और अपने आप में परिपूर्ण हैं ।"[1] लोकगीत लोकसाहित्य का कलात्मकता की दृष्टि से सम्मुन्नत पक्ष है । अपने परिष्कृत भावों, मौलिक कल्पना व उत्कृष्ट शैली के कारण ये साहित्यिक कविता ~~साहित्यिक कविता~~ से होड़ लेते हैं । लोकगीतों का बाहरी रूप यद्यपि परिवर्तित होता रहता है, किन्तु इनकी आत्मा अपरिवर्तनशील है । यह विशिष्ट नियमों, रूढ़ियों अथवा मान्यताओं के बन्धन से मुक्त होते हैं । समाज की आवश्यकताओं, सांस्कृतिक व बौद्धिक आकांक्षाओं, आदर्शों, पसन्दों के अनुरूप लोकगीत परिवर्तित होते रहते हैं । अपने जन्म के कुछ समय तक ये गीत अपने मूल रूप में विद्यमान रहते हैं । तत्पश्चात् इनका रूप परिवर्तित होना आरम्भ होता है, जिससे इनकी उपियोगिता बढ़ती है । राल्फ विलियम्स का मत इस विषय में उद्धृत है --

A folk song is neither new nor old. It is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves and new fruit.

1- पं॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ0 138

पुराने गीतों का तिरोभाव नये गीत के जन्म की भूमिका है । पुराने गीतों के खण्डहरों में नये गीतों की अट्टालिका के निर्माण से लोकगीतों की परम्परा लगातार वेग में बहती रहती है । ये लोकगीत जनरंजन के साधन बने, प्रेरणा के स्रोत बने और कर्त्तव्य परायणता के माध्यम बने । भिन्न-भिन्न देशों, प्रदेशों व जातियों में गाये जाने वाले गीतों के भावों में समानता होती है । जिस प्रकार पंचतन्त्र की कहानियां अरब देशों और यूरोपीय देशों की भाषाओं में अनूदित होती हुई इंग्लैण्ड पहुँची, जिस प्रकार अजन्ता की चित्रकला लगभग उन्हीं शताब्दियों में गोबी के रेगिस्तानों और उतरी पश्चिमी चीन की गुफाओं तथा मन्दिरों में पहुँची, जिस प्रकार भारत की मूर्तिकला, नृत्यकला, अभिनय कला ब्रह्म प्रदेश, मलय प्रदेश, इण्डोनेशिया, सायम आदि सुदूर देशों में पहुँची, जिस प्रकार महाभारत कालीन नायकों की चर्चा अमेरिका तक पहुँची उसी प्रकार हर युग में हमारे लोकगीतों का संदेश देश के भीतर के सारे प्रान्तों में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी पहुँचा ।[1] लोकगीतों की आत्मा सभी जगह के लोकगीतों में समान है । इनमें ऊपरी भेदभाव के होते हुए भी एकता की अन्तर्धारा प्रवाहित होती रहती है । इनमें मानव के संस्कार सुरक्षित हैं । इनमें सरसता, सरलता, मधुरता, लय आदि स्वाभाविक गुण हैं । करूणा, हास्य, श्रृंगार और वीरता का इसमें समावेश रहता है । इस प्रकार हमारे लोकगीतों में मानव और समाज के सभी पक्षों की अभिव्यक्ति होती है ।

1- लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, श्रीकृष्णदास, पृ0 19

§2§ "लोकगीतों की सार्वभौम प्रवृत्तियाँ"

सामूहिक लोक भावना पर आधारित होने के कारण लोकगीतों का अपना विशेष महत्त्व होता है, किन्तु चूंकि ये गीत लिपिबद्ध न होकर मौखिक होते हैं, अतः इन पुरातन शाश्वत भावनाओं के आधार पर लोकमानस नवीन रचनाओं के निर्माण में प्रवृत्त रहता है । आनुष्ठानिक गीतों के परिवर्तन की सम्भावना अत्यल्प होती है, लेकिन अन्य गीत जैसे बन्नी-बन्ना, गालियां, जकड़ी आदि अपना स्वरूप निरन्तर बदलते रहते हैं । इन गीतों पर सिनेमा की धुनों का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है । जहां यह प्रवृत्ति लोकधुनों का लोप करती है वहीं जनमानस के प्रकृत रूप को विकृति की ओर ले जाने का माध्यम बनती है ।[1] वैसे लोकगीतों की जीवन्तता का कारण उनकी मौखिकता है । इससे परिवर्तन भी होता रहता है । वास्तव में लोकगीतों का परम्परा के साथ एक ऐसा अविच्छिन्न सम्बन्ध है जो सभ्यता के चरम विकास की स्थिति में भी बना रहता है ।[2] लोकगीतों में मानव के मनोभावों की सच्ची अभिव्यक्ति होती है। आज के उलझनमय व व्यस्त जीवन में लोकगीत उस पुराने मित्र के समान है, जिस के कारण अच्छे समय की मधुर स्मृतियां एवं आनन्द के क्षण सजग हो उठते हैं ।[3] भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों की सार्वभौम प्रवृत्तियों के विषय में अपने-अपने मत दिये हैं ।

---

1. लोकायन-चिन्तामणि उपाध्याय, पृ0 2।

2. Ozark Folk - Songs, Chap-I, Page 33

3. Humour in American Songs, Preface, Page 14.

लोकगीतों की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं --

§1§ समूह की प्रधानता §वैयक्तिकता का अभाव§ - लोकगीत समूह-प्रधान होते हैं । व्यक्ति द्वारा रचे जाने के उपरान्त ये लोक-कंठ में अपना स्थान बना लेते हैं । विभिन्न परिस्थितियों, वातावरण, भावादि के कारण इनका रूप परिवर्तित होता रहता है । समूह इसे जीवित रखता है । लोकगीत के रचयिता प्रसिद्धि की कामना से लोकगीत की रचना नहीं करते । उनका व्यक्तिगत जीवन लोकगीतों में कहीं नहीं झलकता, रचना-लेखन का समय अज्ञात होता है । लोकगीत रचे जाने के उपरान्त लोक इसमें अपनीइच्छानुसार कुछ न कुछ जोड़ते रहते हैं । अत: यह अनेक व्यक्तियों के सहयोग द्वारा निर्मित जातीय सृष्टि है । राबर्ट ग्रेवस का मत इस विषय में उद्धृत है -- "वर्तमान सामाजिक संगठन में किसी लेखक का अपनी कृति में नाम न देने का अभिप्राय अपनी रचना के प्रति लज्जाभाव अथवा नामाभिव्यक्ति में किसी का भय-आशंका हो सकती है, किन्तु आदिम समाज में यह बात लेखक के नाम की असावधानी के कारण होती थी । सामूहिक तथा जातीय रचनाओं में समूह का महत्त्व होता है, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं । जिस प्रकार छोटे -छोटे बच्चे छोटे-छोटे गीत बनाते, गुनगुनाते और गाते जाते हैं परन्तु इनमें से कोई भी एक बालक गीत का रचयिता होने का दावा नहीं करता और न यह याद रखता है कि इस गीत में कौन से बालक ने कौन सी कड़ी जोड़ी है,उसी प्रकार जातीय रचना में व्यक्ति विशेष की महत्ता नहीं होती, रचयिता का श्रेय समूह को प्राप्त होता है ।[1] इसमें समूह के सुख-दु:ख, करूणा-त्याग,

---

1- राबर्ट ग्रेवस - द इंग्लिश बैलेड, भूमिका, पृ0 12-13

छल-कपट, पश्चात्ताप, विश्वास, मन्यताओं आदि को अभिव्यक्ति मिलती है। वेदों की तरह गीत अपौरुषेय हैं।

§2§ विषय में समानता :

लोक गीतों के बाहरी आवरण जैसे भाषा, शैली, शिल्प आदि में विभिन्नता होते हुए भी इनमें आन्तरिक भावों की समानता मिलती है। विभिन्न प्रान्तों के लोकगीतों का अनुशीलन करने के पश्चात् श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का मत है कि "प्रान्त-प्रान्त के लोकगीतों की आपसदारी हिन्दुस्तानी संस्कृति की एकता का जबरदस्त प्रमाण है। अनेक क्षुद्रताओं के बीच लोकजीवन का रचनात्मक सौंदर्य हजारों वर्षों से इन गीतों में रंग भरता चला आ रहा है। इसीलिए संसार के विभिन्न देशों में ऊपरी ढाँचे की भिन्नता के होते हुए भी लोकगीतों के भावों में समानता है।

§3§ मौखिकता --

लोकगीतों का स्थान जनमानस के कंठों में है। हमारी परम्परा मौखिक रही है। पुरातन काल में गुरू शिष्यों को वेदाध्ययन मौखिक रूप में कराया करते थे, इसलिए इनका नाम ही "श्रुति" पड़ गया। पं॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लोकगीतों को इसी आधार पर श्रुति का नाम दिया है। इसी श्रुति को कालान्तर में लिपिबद्ध कर दिया गया था। गीत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी

को मौखिक रूप में प्राप्त होते हैं । प्रो० गुमर ने मौखिक परम्परा को लोकगीतों व लोकगाथाओं की वास्तविक कसौटी बताते हुए कहा है कि --

These are the cordinally virtues of the Balladd with respect to its conditions, critics unite in regarding oral transmission as its Chief available test.[1]

आजकल अनेक विद्वान् इसे लिपिबद्ध करने के कार्य में संलग्न हैं । सुप्रसिद्ध विद्वान् फैंक सिज़्विक ने कहा है कि लोक साहित्य को लिपिबद्ध करना उसकी हत्या में सहायता देना है, जब तक वह मौखिक रूप में है, तभी तक उसमें जीवनी शक्ति है ।[2] इससे लोकगीतों का परिवर्तनजन्य स्वाभाविक विकास अवरूद्ध होता है । डॉ० वैरियर एलविन के विचार में लोकगीतों को लिपि की श्रृंखला में बद्ध करना उनके स्वाभाविक विकास को नष्ट करना है, अत: लोकसाहित्य प्रेमी इनका संग्रह करके एक प्रकार का अपकार कर रहे हैं ।[3]

मौखिकता लोकगीतों का प्राण तत्त्व है ।

§4§ भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति :- लोकगीत लय के बिना अधूरा है । संगीतात्मकता इसका प्रधान गुण है । अपनी सरलता व स्वाभाविकता के कारण ये समूहगान शीघ्र ही कण्ठस्थ हो जाते हैं । जनता के हृदय से निःसृत

---

1. F.B.Gummare, Old English Ballad, P.29.

2. It lives only while it remains what the French with a charming confusion of ideas call oral literature - Frank Sidgwick, The Ballad - P-39.

3. Folk Songs of Mecal Hills (भूमिका)

सीधे-सादे शब्दों का संस्पर्श जब इस लय तत्त्व से होता है तो वे अद्वितीय सौंदर्य से संयुक्त होकर असीम आनन्द की सृष्टि करते हैं। शुष्क और निरर्थक शब्द भी मधुर-कण्ठ-स्वर की लहरों पर तैरता हुआ विलक्षण सरसता को प्राप्त करता है।[1]

लोकगीतों में शास्त्रीय तार स्वर व विलम्बित स्वरों का प्रयोग होता है। लम्बे गीत तार स्वर में और छोटे गीत विलम्बित स्वर में गाये जाते हैं। वाद्यों के प्रयोग लोकगीतों की संगीतात्मकता में अतिरिक्त वृद्धि कर देते हैं। जार्ज सैम्पसन ने लोकगीतों में लय व संगीत को प्रमुखता देते हुए लोकनृत्य के साथ उसकी संगति मानी है।[2] लोकगीत की स्वर साधना अपने प्रकृत संजीवित स्वरों से सिद्ध होती है। संगीत की स्वर साधना शास्त्रीय मानसिकता से जैसे आक्रान्त रहती है वैसे लोकगीत की नहीं। लोकगीत में संगीत की भांति स्वर को कृत्रिम आरोह-अवरोह, सरगम और स्वर-ग्राम तथा लय-ताल में नहीं बांधा जाता, लोक की ताल और लय आरोह-अवरोह, संवृति-विवृत्ति समस्त बंधन स्वाभाविक मानवों के अनुकूल ढलता है। इनमें कहीं-कहीं शास्त्रीय संगीत की झलक मिलती है। झूले के गीत तथा बारहमासे मल्हार-रागिनी में गाये जाते हैं। होली त्रिताल, दीपचन्दी तथा कहरवा आदि तालों में गाई जाती है। धमार तो स्वयं ही एक ताल

1- लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ0 विद्या चौहान, पृ0 42

2- Cambridge History of English Literature - George Sampson, Page- 16.

है । भजन भी एक प्रकार का गायन है, जो अधिकतर कहरवा, दादरा, झपताल, रूपक, तीन-ताल आदि तालों में गाया जाता है ।

लोकगीतों में प्राय: लय से शब्द किंचित गौण इसलिए मिलते हैं कि मौखिक परम्परा में रहने के कारण एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक गुजरने से गीत के शब्दों को कई प्रकार के विकारों से गुजरना पड़ता है । अत: इसी प्रक्रिया में शब्द घिसते-घिसते विकृत हो जाते हैं । संगीत क्योंकि आवेगपूर्ण होने के कारण गीत का एक विशेष अंग होता है, इसलिए लोकगायक इस पर अधिक बल देता है । फलस्वरूप गीत के शब्दों से अधिक इसका संगीत तत्व अधिक निखरता है ।[1]

(5) <u>पुनरावृत्ति की अधिकता :</u>

लोकगीतों को गाते समय उसकी मूल पंक्ति को बार-बार दोहराये जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है । इसे टेक भी कहते हैं । पुनरावृत्ति से गीत शीघ्र ही कण्ठस्थ हो जाता है । इन पुनरा-वृत्तियों में भाव सौंदर्य का चाहे अभाव रहे, किन्तु गीत को मौखिक परम्परा में जीवित रखने के लिए ये पुनरावृत्तियां बड़ी सहायक होती हैं ।[2] इससे श्रोताओं के अन्त:करण में विशेष

---

1. "In all folksongs it is a common thing to find that words are inferior to the tunes and because of this it is often stated that it was a tune which mattered most. This belief is very for from accurate. The truth is that in their passage from mouth to mouth the words have suffered a succession of minor abrasion and modification. The music is remembered more faithfully, because to the folksinger the whole meaning of the song is emotional rather than logical." Kenneth Richmond - Poetry and the people London, Page. 184
2. लोकायन - डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 18

~~इससे श्रोताओं के अन्तःकरण में विशेष~~ प्रभावोत्पत्ति में भी मदद मिलती है । टेक की पुनरावृत्ति से गीत की संगीतात्मकता में अतिरिक्त वृद्धि होती है । इससे गीत का कलेवर विस्तृत होता है और भाव व्यंजना को गति मिलती है । वस्तुतः टेक गीत की भावनाजन्य आधारभूत पंक्ति होती है, जिससे पूरे गीत का विस्तार किया जाता है ।

§6§ पौराणिक व ऐतिहासिक पात्रों में लोक का प्रतिबिम्बन --

लोक में वर्णित राम-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि देवी-देवता लोक के से सामान्य लगते हैं । कई गीतों में प्रत्येक माता कौशल्या, वधू सीता, पुत्र राम व पिता दशरथ हैं । इन्हीं का आदर्श लोकगीतों में स्थापित मिलता है ।

§7§ प्रश्नोत्तर की प्रणाली, संख्याओं का योग अतिशयोक्तियां आदि -

प्रश्नोत्तर प्रणाली का आयोजन अर्थ को स्पष्ट करने और जिज्ञासा व रूचि जागृत करने के लिए होता है । संवाद शैली में अनेक लोकगीत मिलते हैं । इस शैली में भाव बड़ी सरलता के साथ व्यक्त हो जाते हैं, इसलिए इस शैली का प्रयोग लोकगीतों की एक रूढ़ि-सा बन गया है ।[1] कथोपकथन से मनोभावों की सांगोपांग अभिव्यक्ति होती है । लोकगीत की प्रथम पंक्ति में प्रश्न होता है और द्वितीय में उत्तर । यह प्रणाली श्रोता के लिए आनन्दमयी होती है ।

1- लोकायन-डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय, पृ0 19

संख्याओं के योग की प्रवृत्ति लोकगीतों में मिलती है। जहाँ संख्याओं का प्रयोग किया जाता है वहाँ वास्तविकता में अंकों की कोई अर्थ सत्ता नहीं रहती और गणित की दृष्टि से उन संख्याओं का यथातथ्य महत्त्व भी नहीं होता ।[1] वैसे भारतीय लोकगीतों में पाँच,सात व नौ की संख्या का विशेष उल्लेख हुआ है । ये संख्याएँ शुभ मानी जाती हैं ।

पाँच, दस व बीस की संख्या मनुष्य के आदिम परिगणन-ज्ञान की सूचक है । आदिम जातियों में हाथ-पैर की अंगुली-अंगूठे को लेकर संख्या का निर्धारण किया जाता है ।[2] साधारण जनता में पंचोल §5§, छकड़ी §6§ व कौड़ी §20§ आदि संख्याओं का प्रयोग होता है । लोकगीतों में तीन, पाँच,सात,नौ, बत्तीस, छत्तीस, छप्पन-सौ आदि संख्याओं का रूढ़ प्रयोग मिलता है ।

इससे लोकहृदय की अतिशयोक्ति की प्रवृत्ति का पता चलता है । भावावेश में आकर लोकहृदय अतिशयोक्ति का सहारा लेता है, जैसे --

"इतणा आट्टा मैं पिस्या री
जितणा नदियाँ रेत
इतणे चावल मैं कुट्टे री
जितणे समन्दर मोतियाँ ।

1- लोकायन- डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 22

2- E.B. Taylor Anthoropology, Vol.I, PP.13
Vol.II, PP.62.

यह लोकगीतों की रूढ़िगत विशेषता है । प्रभुता-सम्पन्नता आदि को प्रदर्शित करने के लिए मांगलिक अवसरों पर लोकगीतों में आंगन केसर से लिपा जाता है, उसमें मोती के अक्षत विकीर्ण होते हैं । चौक गज मोतियों से पूरा जाता है । प्रियतम के पत्र को पढ़ने के लिए दीप संजोने में नौ मन तेल जल जाता है । दीपक भी सोने व चांदी के होते हैं ।[1] लोकगीतों में सोने-चाँदी व रतन मोहरों की खान है ।

§8§ मानवेतर जड़ एवं चेतन सत्ता में मनोभावों का आरोप :

लोकगीतों में मानवेतर जड़ व चेतन सत्ता में लोक ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति की है । इनमें उनकी आत्मीयता के दर्शन होते हैं । यही कारण है कि कहीं कौवा संदेश-वाहक बनता है, कहीं भंवरा मां को कुशल-क्षेम दे आता है, कहीं तोता पिता को कन्या के वर की प्राप्ति में सहायक होता है तो कहीं हरी-हरी दूब मानव के दुःख से द्रवित हो मोती के रूप में परिवर्तित होती हुई चित्रित हुई है । इस प्रकार के अनगिनत प्रसंगों का समावेश लोकगीतों में हुआ है ।

§9§ भाव-प्रवणता के आधिक्य में अलंकरण की प्रवृत्ति का अभाव :

चूंकि लोकगीत सरल-स्वाभाविक होते हैं, अतः अलंकरण, कृत्रिमता, आडम्बर आदि का इनमें सर्वथा अभाव रहता है । अलंकरण की योजना के विषय में लोक-गायक का ज्ञान नगण्य है । उनके गीत हृदय से निःसृत होते हैं इसलिए उनमें रस का पूर्ण उद्रेक होता है । डॉ० गणेशदत्त सारस्वत

1- लोकायन - डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 24

के मत में "वस्तुत: ये गीत किन्हीं सूक्ष्मादर्शों एवं सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा के लिए नहीं रचे गये हैं, वे हृदय के गान हैं जो परिस्थितिवश उद्‌गीथ हुए हैं । अत: इनमें फोड़कर निकलने तथा मुक्त रूप से विस्तृत होने की प्रवृत्ति तो है, पर प्रयत्न प्रसूत होकर अनुशासित आकार धारण करने की कला नहीं है ।[1] अलंकरण की प्रवृत्ति के अभाव के कारण लोकगीत स्वाभाविक व भाव प्रधान होते हैं।

1- डा० गणेशदत्त सारस्वत, हिन्दी लोक साहित्य, पृ० 139

§3§ "लोकगीत और कलागीत"

लोकगीत और कलागीत दोनों गीत की श्रेणी में आते हैं । गीत का सहज, शुद्ध एवं मौलिक रूप लोकगीत है । जिस प्रकार लोकभाषा शनैः शनैः परिमार्जित और परिवर्द्धित होकर साहित्यिक भाषा बन गई, उसी प्रकार लोकगीत भी सभ्य नागरिक जीवन के संस्पर्श से कलागीत में परिवर्तित हो गये । इन दोनों में अन्तर होते हुए भी इनकी आत्मा समान होती है । कहीं-कहीं तो यह एक-दूसरे के अत्यधिक निकट आकर एक-दूसरे को स्पर्श करते से लगते हैं कि इनके सूक्ष्म-से अन्तर को जानना मुश्किल हो जाता है । लोकगीतों में ग्रामीण परिवेश का चित्रण होता है, परन्तु कला गीतों में नगरीय सभ्यता एवं संस्कृति के चित्रों की अधिकता होती है । कलागीतों को संस्कृति के अन्तर्गत रखा जाता है जबकि लोकगीतों को जनश्रुति के । लोकगीतकार का व्यक्तित्व लोकगीतों में नहीं झलकता परन्तु कला-गीतों में गीतकार का व्यक्तित्व झलकता है । समस्त संत साहित्य यद्यपि अनुभूति पर आधारित है, फिर भी उन्हें कला-गीतों के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है । मनमोहन गौतम के शब्दों में - "इन कलागीतों में उद्गार तो सहज होते हैं परन्तु उनका व्यक्तिकरण वाग्वैदग्ध्य से परिवेष्टित होता है ।" अधिकांश लोकगीत अपनी उच्च भावना, मौलिक कल्पना और सरल शैली के कारण कला गीतों की श्रेणी में रखे जाने चाहिए । लोकगीतों में समूह प्रधान होता है और व्यक्ति गौण । इसमें जाति, वर्ग, समाज आदि की विशेषताओं का उद्घाटन होता है । कलागीत में मात्राओं, अन्त्यानुप्रासों और छन्दों आदि पर विशेष बल दिया जाता है जबकि लोकगीतों में भावपक्ष

के अन्तर्गत आनेवाले भाव, लय और मुग्धता पर अधिक बल दिया जाता है । लोकगीतों में ग्रामीण जीवन की स्वाभाविकता की झलक मिलती है । लोकगीतों की मौखिक परम्परा मिलती है और कलागीतों की लिखित ।

निष्कर्षत: लोकगीत ग्रामों की उर्वरा भूमि की उपज है और कलागीतों का जन्म नगरीय परिवेश में हुआ है । वैसे दोनों एकदूसरे से प्रभावित हैं, एक दूसरे की सीमाओं को एक निश्चित सीमा तक अपने में समेटे हैं ।

§4§ "लोकगीतों की भारतीय परम्परा"

लोकगीतों की भारतीय परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । किन्तु इनके मूल को निश्चित रूप से ढूंढना कठिन है । हमारी प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद मानी जाती है । आर्ष ऋषियों द्वारा प्रकट भावों का रूप भ्म्ब प्रारम्भिक लोकगीतों जैसा ही था क्योंकि उनमें उनकी भावनाओं की सरल, सहज एवं स्वच्छन्द अभिव्यक्ति है जिसमें उस समय के जनमानस की जिज्ञासा, विस्मय, कौतूहल आदि का वर्णन है । ऋग्वेद में लोक-मानस की आशा-आकांक्षा का भी निरूपण है । लोकगीतों की परिभाषा व विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए उस युग की इन गेय रचनाओं को लोकगीत कहा जा सकता है, किन्तु वैदिक युग में विभिन्न संस्कारादि के अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों का रूप कैसा रहा होगा, इसका निश्चित रूप से कुछ पता नहीं चल सका । यज्ञ-उत्सवादि के अवसर पर निश्चित रूप से नारियों के कोकिल कंठ कूजे होंगे, किन्तु प्रमाण के अभाव में उनकी केवल कल्पना की जा सकती है । विद्वानों ने वेदों में गाथा एवं गाथिन् शब्दों के प्रयोग को लोकगीत मान लिया है ।

"यद्यपि निश्चित रूप से लोक साहित्य की प्रत्येक रचना का सम्रूप ढूंढना कठिन है, तथापि उनके बीज प्राचीन साहित्यिक स्रोतों में सुरक्षित मिलते हैं ।[1] विवाह संस्कार के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले

---

1. Though we are yet unable to find an exact of duplicate of every piece of folklore, we surely find the seed in some of the ancient literary sources.

An outline of Indian Folklore, P-2.

गीतों को "रैभी" अथवा "नाराशंसी" तथा "गाथा" कहा जाता था।[1] सूर्या के विवाह संस्कार के अवसर पर "रैभी" एवं "नाराशंसी" शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है,[2] लेकिन ये गाथाएं हैं, जिन्हें लोकगीत नहीं कहा जा सकता। "गाथा" को पुरोहित व ब्राह्मण गाते हैं, न कि जनसाधारण।[3] केवल "गाये जाने" की विशेषता के कारण इन्हें लोकगीतों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

५. "रैभी" वैदिक मन्त्र है जिसका प्रयोग पुरोहित करता था। नाराशंसी में मनुष्य की स्तुति होती थी। ब्राह्मण ग्रंथों में भी गाथाओं का प्रयोग हुआ है, जो ऋक,यजुः और साम से पृथक् होती थी। इनमें किसी राजा का यशोगान होता था। अश्वमेध करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्रों का वर्णन इनमें अधिकता से होता था। लेकिन लोकगीतों की मूल भावनाओं का इनमें अभाव होता था। "रैभी" और "नाराशंसी" से आगे चलकर स्तोत्र एवं स्तुतिपरक प्रवृत्ति का विकास अवश्य हुआ जिसने भजन जैसे लोकगीतों को जन्म दिया।[4]

1- डॉ० शिवशेखर मिश्र का लेख: भारतीय संस्कृति में लोकगीतों की अभिव्यक्ति सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृ० 131

2- रैभ्यासीदनुदेयी, नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृताम्।। ऋग्वेद : 10-75-6

3- -युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।
गाथा स्तोत्रेण - फुटनोट, व्याख्या, ऋग्वेद वेद 8/98/9
-रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी, ऋक 10/85/6
व्याख्या - रैभ्यः काश्चनर्चः शंसति रेभन्तो वै देवाश्चर्षयश्च स्वर्गलोकमायन् इत्यादि ब्राह्मणविहिता रैभ्यः। मनुष्याणां स्तुत्यो नाराशंस्य सा नाराशंसी न्योचनी। गाथा गीयते इत्यादि ब्राह्मणोक्ता गाथा।

4- लोकायन - डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 26

यास्क की निरुक्ति की व्याख्या करते हुए श्री दुर्गाचार्य ने गाथा का अर्थ प्रतिपादित करते हुए कहा है कि वैदिक सूत्रों में कहीं-कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओं के द्वारा और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध होता है। ऋचाओं के समान गाथा भी छन्दोबद्ध होती थी।[1] लोकगीत छन्द रहित होते हैं, अतः "गाथा" छन्दबद्ध होने के कारण लोकगीत की श्रेणी में नहीं आती।

ऋग्वेद के उपरान्त साहित्य में लोकगीतों की प्रवृत्ति का उभार नहीं हो सका। संस्कृत विशिष्ट वर्ग की भाषा थी, लोक की नहीं, अतः उस भाषा में लोकगीतों का समावेश संभव भी नहीं है। साहित्यिकों व पुरोहितों की भाषा जन-सामान्य के लिए पराई हो गई। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस भाषा को मृत भाषा की संज्ञा देकर इसमें गल्प व गान को असम्भव बताया। भाषा जब तक जन-सामान्य को भावों के प्रवाह में बहा न ले जाय तब तक गल्प और गान का आविर्भाव संभव नहीं हो सकता। सरस काव्य के रचयिता कालिदास एवं संस्कृत के गीतकार जयदेव भी बंगाली वैष्णवों की समता नहीं कर सकते। कालिदास का काव्य भी झरने की तरह सर्वांग रूप से नहीं बहता। उसका श्लोक अपने में ही सम्पूर्ण है। वह श्लोक हीरे के टुकड़े जैसा है। किन्तु नदी के समान कल-कल निनादिनी अविच्छिन्न धारा नहीं।[2] संस्कृत विद्वानों की भाषा थी। उससमय साधारण जन में प्रचलित लोक भाषा में लोकगीतों का स्रोत मिल सकता है। इस विषय में डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय का मत उद्धृत है -- लोकगीतों की अजस्त्र

1- निरुक्ति : दुर्गाचार्य: 4-6
"सपुनरितिहास: ऋग्बद्धो गाथाबद्धश्च, ऋक् प्रकार एवं कश्चित् गाथोत्युच्यते। गाथाशंसति नाराशंसी : शंसतिइति, उर्वत गाथानां कुर्वीतिति ।।"

2- रवीन्द्रनाथ टैगोर-प्राचीन साहित्य (बंगला संस्करण) पृ० 55-56

धारा को हमें संस्कृत के जलकूप में नहीं, जनजीवन को तरंगित करने वाली जन-भाषा में खोजना पड़ेगा। वेद ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में वर्णित यज्ञगाथा अथवा राजाओं के यशोगान में लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप दुर्लभ ही रहेगा। संस्कृत साहित्य से लोकगीतों के अस्तित्व का केवल संकेत मिल सकता है। इस विषय की विस्तृत जानकारी हमें पालि, प्राकृत आदि जनभाषाओं में अवश्य ही मिल सकती है; क्योंकि जन जीवन के सम्पर्क की व्यापक आयोजना में लोकगीतों का पक्ष अछूता कैसे रह सकता है।[1]

संस्कृत आदिकालीन भारत के विशिष्ट वर्ग की भाषा थी। अतः इसमें माना जा सकता है कि लोक गीतों के संकेत मात्र मिलते हैं। उनका स्वरूप पालि, प्राकृत आदि जनभाषाओं में मिलेगा।

पालि भाषा के जातकों में अत्यन्त प्राचीन गाथायें मिलती हैं, जिनमें तत्कालीन लोक प्रचलित कहानियों और घटनाओं का वर्णन दिया गया है। बौद्ध साहित्य को सच्चे अर्थों में लोक-साहित्य की संज्ञा प्राप्त है। भगवान् गौतम बुद्ध के चरित को गाथाओं में ही अभिव्यक्ति मिली है। पालि के अति प्रसिद्ध सिंहचर्म जातक में शेर की खाल ओढ़कर धान-जौ के खेतों में चरने वाले गधे की कथा है। किसान रूप में उपस्थित बोधिसत्व (गौतम बुद्ध) गधे की आवाज पहचान कर इसका रहस्योद्घाटन करते हैं और प्रथम गाथा कहते हैं। एक अन्य कथा इसी स्थल पर गधे के स्वामी बनिये द्वारा कही गई है।

1- लोकायन- पृ0 27 डा० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 27

जैसे --

"बोधिसत्तो पठमं गाथमाह --

नेत सीहस्स नदितं न व्यग्धस्स न दीपिनो ।

पारूतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गदमो ति ।।[1]

त्रिपिटकों में स्थान-स्थान पर सामान्य जनजीवन का यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण मिलता है । "सुत्त निपात" में धनिय गोप के जीवन का चित्र एक गीत में उपलब्ध होता है --

"अब हे देव चाहो तो खूब बरसो ।
भात मेरा पक चुका है,
दूध दुह लिया गया है,
गंडक नदी के तीर पर अपने स्वजनों के साथ वास करता हूँ ।
कुटी छा ली है, आग सुलगा ली है ।
अब हे देव चाहो तो खूब बरसो ।
मच्छर मक्खी यहां नहीं है,
कछार में उगी घास को गायें चर रही हैं,
पानी भी पड़े तो वे उसे सह लें,
अब हे देव चाहो तो खूब बरसो ।
मेरी ग्वालिन आज्ञाकारी और अचंचला है,
वह चिरकाल की प्रियसंगिनी है,
उसके विषय में कोई पाप नहीं सुनता,
अब हे देव चाहो तो खूब बरसो ।

1- पालि जातकावलि : पृ0 17, बटुकनाथ शर्मा ।

मेरे तरूण बैल और बछड़े हैं,

गाभिन गायें और बछड़ें भी हैं,

सबके बीच वृषभराज भी है,

खूँटे मजबूत गड़े हैं,

मूँज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे हुए हैं,

बैल भी उन्हें नहीं तोड़ सकते ।

अब हे देव चाहो तो खूब बरसो ....[1]

लोकगीतों के प्रमुख लक्षण 'भावना की सरल एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति' के अतिरिक्त इसमें आधारभूत पंक्ति टेक का प्रयोग हुआ है । बौद्ध साहित्य की थेरी गाथाएँ टेक व प्रश्नोत्तर प्रणाली के कारण लोकगीतों की श्रेणी में आती हैं ।

प्राकृत काल में लोकगीतों का पर्याप्त विकास मिलता है । 'गाथा सप्तशती' में एक करोड़ में से सात-सौ गाथाएँ संकलित हैं जो गीति-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । एक गाथा में विरहिणी नायिका की मन:स्थिति का सुन्दर-स्वाभाविक चित्रण किया गया है, जब वह प्रियतम के परदेश गमन के पश्चात् दिवस गणना के लिए आतुर होकर प्रथम दिवस के अर्ध भाग में ही 'आज गया है, आज गया है' सोचकर समस्त दीवार को रेखाओं से मण्डित कर देती है --

"अज्जं गओत्ति, अज्जं गओत्ति, अज्जं गओत्ति मणिरीए,

पढम च्चिय दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलियो ।।[2]

1- पालि साहित्य का इतिहास - पृ0 237

2- गाथा सप्तशती, 33/8 अमरूक शतक

एक अन्य स्थल पर एक मुग्धा नायिका के सर्वांग सौंदर्य का चित्रण किस चातुर्य से किया गया है -- नायिका को आज तक किसी ने पूरी तरह नहीं देखा । क्योंकि जहां आंखें मिलती हैं, उस सौंदर्य से अभिभूत होकर वहीं चिपकी रह जाती हैं । आगे नहीं बढ़ पाती इसलिए सर्वांग की सुषमा से वंचित रह जाती हैं --

"जस्स जहं विअ पठमं तिस्सा अङ्गम्मिनिवडिआ दिट्ठी
तस्स तहिं चेअ ठिआ, सव्वगं केण विंन दिट्ठम् ।[1]

परवर्ती युग के संस्कृत काव्यों पर भी इन गाथाओं का प्रभाव देखा जा सकता है । वैदिक युग के उपरान्त इन ऐतिहासिक गाथाओं का वर्णन महाकाव्य एवं पौराणिक युग में भी मिलता है । अनेक विद्वानों का मत है कि आदिकवि बाल्मीकि ने रामायण की रचना तत्कालीन प्रचलित लोकगाथाओं के आधार पर की हैं ।[3]

बाल्मीकि रामायण में राम-जन्म के अवसर पर गंधर्वों द्वारा गीत गाने अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का उल्लेख मिलता है --

"जगु फलं च गन्धर्वा: ननृतुश्चाप्सरो गणा: ।
देय दुन्दुभ्यो नेदु: पुष्प वृष्टिश्च श्वात्पतत् ।।[2]

वेद व्यास जी ने इसी क्रम में कृष्ण के जन्मोत्सव पर स्त्रियों द्वारा मिलकर गीत गाये जाने का वर्णन किया है --

"वादित्र गीन द्विज मन्त्रवाच वेश्यकार सूनोरभिषेचनं सती ।"[4]

1- अमरूक शतक, उप गाथा

3- Winternitz - A History of Indian Literature, Vol-I, P-311.

2- बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, पृ0 18-16

4- श्रीमद्भागवत्, दशम् स्कन्ध ।

महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ रघुवंश में अज के जन्मोत्सव के समय राजा दिलीप के राजमहल में वेश्याओं द्वारा नृत्य एवं गायन वाद्य प्रस्तुत करने का वर्णन किया है --

"सुखश्रवा मंगलतूर्य निस्विना:
प्रमोद नृत्यै: सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीयते :
पथि व्यजम्यन्त दिवौकसामपि ।।"[1]

बारहवीं शताब्दी की संस्कृत की प्रसिद्ध कवयित्री 'विज्जिका' ने चक्की पीसते, धान कूटते तथा खेती निहारते समय स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले समूह गानों का अत्यन्त मनोहर एवं सरस रूप में वर्णन किया है । स्त्रियाँ धान कूट रही हैं, साथ ही गीत भी गाती जा रही हैं । मूसल उठाने एवं गिराने के साथ उनकी चूड़ियाँ झंकृत हो रही हैं । श्रम प्रयास के कारण उनका अंग-प्रत्यंग शिथिल है । गीतों के स्वर चूड़ियों की झंकार से मिलकर मिलकर अनुपम आनन्द की सृष्टि कर रहे हैं --

"विलासमसृणोल्लसम्मुसत लोलदो: कन्दली -
परस्पर परिस्खतद्वलयनि: स्वनोद्वन्धुरा: ।
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभकम्पितोर: स्थला, --
त्रुट्टगमक सबुता कलभगण्डनी गीतय : ।।"[2]

1- कालिदास कृत रघुवंश, 3/119

2- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : भाग -16, पृ0 20 से उद्धृत

नैषधीय चरित के सर्ग 2, श्लोक 85 में महाकवि श्री हर्ष ने चक्की पर सत्तू पीसती स्त्रियों का उल्लेख किया है, जिसकी सुगन्ध पथिकों को आकृष्ट करती है और स्त्रियाँ गीत गाती हैं --

"प्रतिहट्ट पथे घरटट्टा जात्

पथिकाह्वानद् - सवत् सौरभैः ।

कलहान्न धनान् यदुत्थितात्

अधुनाप्युज्झति घर्घर स्वनः ।।"

अपभ्रंशकाल में लोकगीतों का स्वरूप एवं लोकप्रियता वैदिक काल की अपेक्षा अधिक विकसित जान पड़ती है । आचार्य हेमचन्द कृत 'काव्यानुशासन' में संकलित तत्कालीन प्रचलित लोकगीतों के कुछ उच्चतम उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है । डॉ० सत्यव्रत सिन्हा के शब्दों में - "अपभ्रंश काल में लोक-तत्त्वों एवं लोक जीवन को स्पर्श करता हुआ ग्रंथ संदेशरासक है ।[1] इसके अतिरिक्त बौद्ध सिद्धों की अनेक रचनाओं में भी तत्कालीन लोक साहित्य के विभिन्न विकसित रूप दृष्टिगत होते हैं । सिद्धों के प्राचीनतम ज्ञात कवि सरह की रचनाओं में भी लोकगीतों का उल्लेख प्राप्त होता है । हिन्दी के आदिकाल में अपभ्रंश से चली हुई रासक की परम्परा में ही रासो का जन्म हुआ ।[2] 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने रासक को एक साहित्यिक गेय रास माना है ।[3] इसका आधार लोक गाथाएँ हुआ करती थीं । जिसका उदाहरण नरपति नाल्ह की लोक तत्त्वों से पूर्ण रचना बीसलदेव रास में भी मिलता है ।

1- भोजपुरी लोकगाथा, पृ० 2।

2- वही पृ० 3।

3- वही पृ० 3।

इसके उपरान्त हिन्दी के आदिकालीन साहित्य में लोकगीत का वास्तविक स्वरूप अपने निखार में मिलता है । उस काल का साहित्य वास्तव में लोक साहित्य का ही विकसित रूप है । 'संदेश रासक', ढोला मारू रा दुहा', 'परमार रासो' (आल्हा) आदि रचनाओं का मूल्यांकन करने पर सहज ही यह पता चलता है कि आदिकालीन हिन्दी साहित्य मूलत: लोक-गाथाओं, कथाओं एवं लोकगीतों की दृढ़ नींव पर आधारित है । इसके मौखिक रूप में 'रासो' मात्र गाने के लिए ही रचे गये ।

मध्ययुगीन साहित्य में तुलसी, सूर, कबीर, जायसी आदि की रचनाओं में तो लोक तत्व भरा पड़ा है । जायसी ने अपने धर्म-प्रचार के निमित्त भारतीय लोक गाथाओं व कथाओं का सहारा लिया था । इसी प्रकार तुलसी ने भी तत्कालीन प्रचलित लोक साहित्य के आधार पर ही अपने अमर काव्य का प्रणयन किया । तुलसी ने अनेक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा मंगल गान गवाये हैं - जैसे राम-जन्म, सीता का गौरी पूजन, सीता स्वयंवर, सीता-राम विवाहादि के अवसर पर । राम जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

बृन्द-बृन्द मिलि चली लोगाई ।
सहज श्रृंगार किये उठि धाई ।।
कनक कलस मंगल भरि थारा ।
गावत पैठहि भूप दुआरा ।।

गौरी पूजन - संग सखी सब सुभग सयानी ।
गावहिं गीत, मनोहर बानी ।।

सीता स्वयंवर - चली संग लै सखी सयानी ।

गावत गीत मनोहर बानी ।।

सीता-राम विवाह - गावहिं सुन्दर मंगल गीता ।

लै लै नामु रामु अरू सीता ।।

§रामचरित मानस, बालकाण्ड§

राम विवाह के अवसर पर बारातियों को भोजन कराते समय स्त्रियों द्वारा जेवनार तथा गाली गाने का उल्लेख है --

"जेंवत देहि मधुर धुनि गारी ।

लै लै नाम पुरुष अरू नारी ।।"

§बालकाण्ड§

यही गाली गाने की प्रथा आज भी हमारे गांवों में प्रचलित है । लोक रीतियों को भी तुलसी ने अपने काव्य में स्थान दिया है । लोकरीतियां, लोकगीतों के बिना अपूर्ण हैं । सोहर छन्द में तुलसी ने 'राम-लला नहछू' नामक ग्रंथ की रचना की जो लोकगीतों में भी गाया जाता है --

"नैन विसाल नउनियां भौं चमकावइ हो ।

देह गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो ।।"

'जानकी-मंगल' व 'पार्वती-मंगल' में समस्त वैवाहिक प्रथाओं एवं विधियों समेत राम-सीता व शिव-पार्वती विवाह का वर्णन किया गया है । इसमें अवसरानुकूल गीत गाने का सर्वत्र उल्लेख किया गया है --

"चतुर नारि बर कुंवरिहि रीति सिखावहिं ।

देहिं गारि सहकौरि समौ सुख पावहिं ।।"

§जानकी मंगल§

"करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह ।
जेंइ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ।।"

(पार्वती मंगल)

सूरदास ने कृष्ण-काव्य की रचना में अनेक लोकछन्दों को लिया है । लोकगीतों की सम्पूर्ण परम्परा मध्यकालीन काव्य में दिखाई देती है । मुसलमान कवियों ने लोक तत्त्वों को लेकर काव्य रचना की । नजीम अकबराबादी के काव्य में लोकजीवन देखने को मिलता है । बरसात के चित्र में ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग हुआ है --

"सब्ज़ों पे बीर बहूटी, तीले ऊपर धतूरे
पिस्सू से मच्छड़ों से रोये कोई बिसूरे
बिच्छु किसी को काटे कीड़ा किसी को घूरे
आंगन में कतसलाई कोनों में कनखजूरे
क्या-क्या मची है यारो बरसात की बहारें "

भारतेन्दु के काव्य में लोक प्रतिबिम्बित है । उन्होंने 'लावनी' आदि लोक रूपों को अपनाया । लोक प्रचलित कृष्ण कथा पर भारतेन्दु ने लिखा है --

"रहै क्यों एक म्यान असि दोय
जिन नैनन में हरि रस छायो तिहि क्यों भावै कोय
जा तन मैं रमि रहे मोहन तहां ज्ञान क्यों आवै ।"

आधुनिक काल की काव्य चेतना में भी लोकगीतों का प्रभाव दृष्टव्य है । प्रसाद की रचनाओं में गीति तत्त्व झलकता है --

" उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर

करूणा की नव अंगड़ाई-सी

मलयानिस की परछाईं सी

इस सूखे तट पर छिटक छहर "[1]

~~(लहर, पृ० 9)~~

पंत ने लोरी को विषय बनाकर लिखा है --

"लोरी गाओ लोरी गाओ

फूल-दोल में उसे झुलाओ

निंदिया की प्रिय परियाँ आओ

मुन्ना का मुख चूम सुलाओ ।"[2]

~~(रश्मिबंध, पृ० 90)~~

निराला ने अपनी रचनाओं में लोकजीवन को प्रतिबिम्बित किया है --

"फूटे हैं आमों में बौर

भौंर बन-बन टूटे हैं

होली मची ठौर ठौर

सभी बंधन छूटे हैं ।"[3]

~~(अर्चना)~~

महादेवी जी का समस्त काव्य गीतिमय है । गीतों में उनके हृदय की मर्मव्यथा आँसुओं से भीगकर व्यक्त हुई है --

---

1. लहर, पृ० -9
2. रश्मिबंध, पृ०-90
3. अर्चना, पृ०15

"आज क्यों तेरी बीणा मौन ?

शिथिल - शिथिल तन थकित हुए कर

स्पन्दन भी भूला जाता डर

मधुर कसक-सा आज हृदय में

आन समाया कौन ?

आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

(नीरजा)

नई कविता के साथ-साथ नव गीत का प्रचलन आजकल जोरों पर है । इन नवगीतों का स्वरूप लोकगीतों से मिलता जुलता ही है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों की भारतीय परम्परा का आविर्भाव उस समय से है जब से साहित्य का या मानव का अस्तित्व प्रकाश में आया । आज भी यह परम्परा अबाध गति से बहती चली जा रही है । यद्यपि मौखिकता के कारण इसका क्रम टूटता रहा, फिर भी प्रत्येक काल व युग में इसके अस्तित्व के लक्षण विद्यमान मिलते हैं ।

§ब§ §1§ "हरियाणा की प्रादेशिक ऐतिहासिकता"

हरियाणा प्रदेश का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है । यह प्रदेश सदैव भारतीय संस्कृति, धर्म, आध्यात्मिकता एवं साहित्य की पावन स्थली रहा है । प्रसिद्ध इतिहासकार बुद्धप्रकाश ने इसकी प्राचीनता के विषय में कहा है कि "ऋग्वेद के काल में भारत के लोगों ने यहाँ यज्ञ की अग्नियाँ प्रज्वलित कीं । आप्री सूक्तों ने सरस्वती को भारती से सम्बन्धित किया है । इन्हीं भारत लोगों के नाम पर इस सम्पूर्ण प्रदेश का नाम भारत पड़ा है ।[1]

'हरियाणो' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋक् संहिता 6•2•25•2 में रजतं हरियाणे पाठ में मिलता है जो देशवाची न होकर राजा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका भावार्थ है -- "सदैव यान §रथ§ चलता रहता है जिसका ।"[2]

1- हरियाणा §सांस्कृतिक दिग्दर्शन§ पृ0 37 पर डॉ0 बुद्धप्रकाश का लेख

2- निरूक्त -नैगम काण्ड, अध्याय 5, खण्ड-15, पृ0 529 §दुर्गाचार्य की टीका§

मूलपाठ-हरियाणो हरमाण्यान: । रजतं हरयाण इत्यपि निगमो भवति । भाष्य -हरयाण इत्यनवगतम् । हरिमाण्यान् इत्यवगम: । ऋजमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि -ऋक् संहिता 6•2•25•

अर्थ - इसमें यान की स्तुति की गई है । घोड़ों से युक्त चाँदी से मढ़े और सरल, सुखद गतिवाले रथ को हमने, यान सदैव चलता रहता है जिसका और साम शोभायमान है जिसका ऐसे उक्षण्यायन नाम के राजा के यजमान और महादक्ष दाता होने पर प्राप्त किया ।

इसके पश्चात् विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग के (1384) एक शिलालेख में इस देश को पृथ्वी पर 'स्वर्ग सन्निभ कहा गया है और यहाँ की 'ढिल्लिका' (दिल्ली) नामक नगरी तोमरवंश द्वारा निर्मित बताई गई है ।[1] अन्य एक स्थल पर हरियानक शब्द उल्लिखित है । बलबन के राज्यकाल के एक शिलालेख में यह शब्द आया है । यह शिलालेख पहले वाले से 47 वर्ष प्राचीन है जो पालम की एक बावड़ी से प्राप्त हुआ है । उसका समय संवत् 1337 दिया हुआ है ।

जिला हिसार की बन्दोबस्त रिपोर्ट (सन् 1863) में पं॰ धरनीधर हाँसीवाले की पुस्तक 'अखण्ड प्रकाश' से उद्धृत इसी श्लोक में इस प्रदेश के लिए 'हरिबानक' शब्द का उल्लेख है --

---

1- यह शिलालेख सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का है जो दिल्ली से 5 मील दूर दक्षिण स्थित 'सारबन' नामक गाँव से मिला है और इस समय दिल्ली के म्यूजियम बी॰ 6 में रखा हुआ है । इस शिलालेख में तिथि सं0 1384/85 विक्रमीय फाल्गुन शुक्ल 5 मंगलवार अंकित है । कुल 16 श्लोक है । यहाँ पर उद्धृत अंश तृतीय श्लोक है --

'देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः ।
ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता ।
तोमरानन्तरं तस्यां राज्यं हितकंटकम् ।
चाहामाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालनतत्पराः ।।

अभौजितोमरैरादौ चौहाणे स्तदनंतरम् ।

हरिबाणक भूरेषा शकेन्द्रैः शास्यतेऽधुना ।।

अर्थात् हरिबाणक देश आरम्भ में तोमरों ने और बाद में चौहानों ने अपने अधिकार में रखा और अब शकेन्द्र इस प्रदेश में हाकिम हैं । इस श्लोक के अनुसार तो हरियाना 'हरिबानक' या 'हरिबन' का परिवर्तित रूप हुआ । 'अखण्ड प्रकाश' में ही इस प्रदेश की पूर्वी-पश्चिमी भौगोलिक सीमा वर्णित है --

पालंब ग्रामपूर्वे तु कुशुंभ ग्राम पश्चिमे ।

हरिबाणक भूरेषा सर्वसस्यादिवर्द्धिनी ।।

निष्कर्षतः यह प्रदेश सदैव समृद्धशाली रहा है और तोमर व चौहान राजाओं ने इस पर 8वीं से 13वीं शताब्दी तक राज्य किया । (अनंग पाल(प्रथम) ने सन् 736 ई० में जो तोमरवंशीय सर्वप्रथम राजा है, दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया । आगे चलकर 1151 ई० में बीसलदेव अथवा विग्रहराज ने (चौहान वंशीय राजा) अनंगपाल द्वितीय, से दिल्ली को छीनकर अपनी राजधानी बनाया । दिल्ली के सिंहासन पर चौहान वंशीय अन्तिम राजा पृथ्वीपाल हुए जिनका प्राणान्त मोहम्मद गौरी के हाथों हुआ ।)

इस प्रकार हरियाणाशब्द का उल्लेख काफी प्राचीन समय से मिलता है । डॉ० शंकर लाल यादव के मत में इसका सर्वप्रथम उल्लेख चौदहवीं शताब्दी के शिलालेख में मिलता है,[1] जबकि राज्य कवि उदयभानु हंस के अनुसार इसका सर्वप्रथम उल्लेख दसवीं शताब्दी में हुआ -- 'हरियाणा नाम का प्रचलन अनुमानतः ईसा की दसवीं शताब्दी के पश्चात् हुआ ।'[2]

---

1. हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डा० शंकरलाल यादव, पृ० 55.

2. हरियाणा गौरव गाथा, उदय भानु हंस, (राज्य कवि), पृ० 9.

हरियाणा शब्द की ऐतिहासिकता के उपरान्त अब हम हरियाणा प्रदेश की ऐतिहासिकता के विषय में विचार करेंगे । यहाँ का इतिहास बहुत प्राचीन है । जिस ब्रह्मर्षि प्रदेश में मनु ने सृष्टि का बीज बपन किया था, वह ब्रह्मवर्त प्रदेश हरियाणा है और आर्यों की प्राचीनतम संस्कृति का सूत्रपात यहीं हुआ था । वैसे तो ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक और अनेक दृष्टियों से हरियाणा का गौरव कीर्तिमान रखता है किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से इसका मूल्य अप्रतिम है --

मानवता के इतिहास में, संस्कृति के आदि विकास में,

भारत का प्रथम स्थान है, जिसका ऋग्वेद प्रमाण है ।[1]

स्वामि ओमानन्द सरस्वती के अनुसार, "यह ब्रह्मर्षि देश (हरियाणा) सारे संसार को चरित्र और वैदिक संस्कृति की क्रियात्मक शिक्षा देने वाला प्रमुख केन्द्र था ।[2]

यह स्थल आर्य सभ्यता का भी केन्द्र रहा है । मनुस्मृति और महाभाष्य में प्रस्तुत ब्रह्मवर्त, आर्यावर्त, महर्षि तथा मध्यदेश के अधिकांश भूभागों की भौगोलिक स्थिति आज के हरियाणा की स्थिति है ।[3]

1- उदयभानु हंस, हरियाणा गौरव ग्रंथ, पृ० 46

2- पृ० 97 पर स्वामि ओमानन्द सरस्वती का लेख ।

3- (1) सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मवर्तं प्रचक्षते ।। मनुस्मृति 2•17
(सरस्वती और दृषद्वती देवनदियों के बीच के
देवताओं से बनाये गये देश को ब्रह्मवर्त कहा जाता है ।

(2) कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पन्चालाः शूरसेनकाः ।
एषः ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ।। 2•19
(कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन देश कहलाते हैं जो ब्रह्मावर्त से
भिन्न हैं ।)

---

§3§ हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।।2•21

§हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में विनशन नदी से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम देश को मध्यदेश कहा जाता है ।

महाभाष्य-- कःपुनरार्यावर्तः ? फिर आर्यावर्त कौन सा देश है ?

प्रागदर्शनात् प्रत्यक् कालकवनाद् दक्षिणे न हिमवंतं उत्तरेण पारियात्रम् । §अदर्शन नदी से पूर्व में, कालक वन कनखल से पश्चिम में, हिमालय से दक्षिण और पारियात्र से उत्तर में आर्यावर्त देश है । -- विधिशेष प्रकरणे एकवृद्भावप्रकरणम् 1,
पृ0 537•

मनुस्मृति, महाभाष्य, बौधायन, धर्मसूत्र, वशिष्ट धर्मसूत्र और विनयपिटकादि में वर्णित मध्यदेश व आर्यावर्त की पश्चिमी सीमा आज के हरियाणा की पश्चिमी सीमा है,[1] जहाँ सरस्वती और दृषद्वती §घग्गर नदी§ आज भी प्रवहमान है ।[2] उस ब्रह्मवर्त प्रदेश में, आर्यों के मूल निवेश में । उत्तर में नदी सरस्वती, दक्षिण में बहे दृषद्वती ।।[5] ~~§हरियाणा गौरव गाथा, पृ० 46§~~

प्राचीन हरियाणा में ही वेद-मन्त्र रचे गये थे । उस युग में समस्त मानव यहाँ से अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करते थे ।[3] यही वह आर्यों के आदि विकास के प्रागैतिहासिक स्थल हैं जहाँ सर्वप्रथम मनुष्य ने ग्रामों में सुनियोजित ढंग से रहना सीखा था --

"वह युग था प्राग-इतिहास का, आर्यों के आदि विकास का,
बस रहे वहाँ पुरग्राम थे, जो सुनियोजित अभिराम थे ।

सर्वप्रथम गुरूकुल परम्परा का सूत्रपात यहीं हुआ जिससे विश्व में श्रुति पाठ की शिक्षा-पद्धति प्रकाश में आई ।[4]

इसी आर्यावर्त प्रदेश में वृत्रासुर असुर के वध के लिए ऋषिवर दधीचि ने अपना अस्थि दान किया था ।

1- Indian Antiquary 1905, पृ0 179 पर कविराज शेखर का नोट ।

2- गजेटियर जिला हिसार, पृ0 5 पर हिसार की नदियाँ

3- हरियाणा गौरव गाथा, उदयभानु हंस, पृ0 14

4- गुरूकुल की चली परम्परा, आलोकित हुई वसुन्धरा । शिक्षा पद्धति श्रुति पाठ की, बन गई विश्व की भारती । §ऊषा पर्व, पृ0 30§ वही, उदयभानु हंस

5- हरियाणा गौरव गाथा, उदयभानु हंस, पृ0 46.

इस रण में वृद्ध दधीचि ने,

ऋषिवर तप त्याग मरीचि ने ।

सुरहित सम्पादन के लिए,

अस्थियां प्राण तक दे दिये ।[1]

चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, कल्पसूत्रों और अनेक स्मृति ग्रन्थों की रचना इस पावन स्थली पर हुई थी --

रचना समस्त ऋग्वेद की

श्रुतियों के शाखा भेद की

यजु और साम के मन्त्र भी

अति गुह्य अथर्वण तंत्र भी

ब्राह्मण ग्रंथों का सार भी, उपनिषदों का उद्गार भी कुछ कल्पसूत्र के ग्रंथ भी, नाना स्मृतियों के पंथ भी ---- थी सकल उपज इस काल की, हरियाले क्षेत्र विशालकी ।"[3] उपर्युक्त विवरण से हरियाणा की प्राचीनता के विषय में कोई संशय नहीं रहता ।

आधुनिक शहर रोहतक प्राचीन काल में यौद्धाओं की राजधानी 'बहुधान्यक' नाम से प्रसिद्ध था । इतिहास की खोजों और प्राप्त सिक्कों से भी यह प्रमाणित हो गया है कि इस जनपद परयौद्धेयों का शासन रहा है । यौद्धेयों का उल्लेख पाणिनीय अष्टाध्यायी में भी मिलता है ।[2]

यौद्धेयों का वर्णन अपभ्रंश के कवि पुष्प दन्त ने अपने ग्रंथ "योधेय भूमि वर्णन' में भी किया है । उनके अनुसार "यौधेय देश पृथ्वी पर (धरती पर) दिव्य वेश धारण किये हुए हैं और वह प्रदेश धन-धान्य से परिपूर्ण है ।

1- हरियाणा गौरव गाथा, उषा पर्व, पृ0 56, उदयभानु हंस

2- अष्टाध्यायी - "न प्राच्यभर्गादि यौधेयादिभ्य:" 4.1.178
पाणिनी का समय 4-5 शताब्दी ईस्वी पूर्व माना जाता है ।

वहां के नगर-ग्रामादि सब बड़े शोभायमान हैं --

जोहेयउ णामि अत्थि देसु । णं धरिणाए धरियउ दिव्वदेसु ।

जहिं जणधणकण परिपुण्णगाम । पुरणयर सुसीमा रामसाम ।[1]

(पुष्पदन्त महाराज कृष्णराज का दरबारी कवि था । इसका काल 10वीं -11 वीं शती माना जाता है ।)

रोहतक यौधेयों की राजधानी था और इसके मरू व बहुधान्यक नामक दो भागों का उल्लेख मिलता है । कैप्टन कहले की खोज से प्राप्त सिक्के बहुधान्यक टकसाल में घड़े गये हैं ।[2] महाभारत काल तक यह राज्य पर्याप्त सम्पन्न था । नकुल दिग्विजय में उल्लिखित है कि नकुल दिल्ली के पश्चिम कीओर बढ़ा और वह रोहतक होता हुआ (महेम) महेत्थ और सिरसा (शैरीषक) तक गया है । वहां भी इस प्रदेश को बहुधन वालाऔर धनधान्य सम्पन्न बताया गया है ।[3]

1- हिन्दी काव्य धारा - राहुल जी, पृ0 190

2- ~~यह श्लोक कुंभकोणम संस्करण के अनुसार 35वां अध्याय है और सुब्रह्मण्यम शास्त्री के मद्रास संस्करण के अनुसार 28 वां अध्याय है ।~~

3 2- भारतीय अनुशीलन ग्रंथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित नकुल का पश्चिम दिग्विजय पाठ:- ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत् ।।

(सभापर्व, अध्याय - 35)

प्रो0 जयचन्द विद्यालंकार ने इस विषय में कहा है कि `नकुल खांडवप्रस्थ से भारी सेना लेकर चला । उसे रोहतक - सिरसा के समूचे प्रदेश में कुछ अंश मरू और कुछ बहुधान्यक मिले ।

इन्हीं यौधेयों ने सर्वप्रथम गोत्र प्रणाली का सूत्रपात किया ।[1]

था गोत्र प्रणाली का चलन,

रखते थे आर्थिक सन्तुलन।' उस युग में राज्य की इकाई ग्राम थी और हर ग्राम में आधुनिक पंचायत प्रणाली `खाप` अपने मूल रूप में विद्यमान थी ।`[2]

`था ग्राम इकाई राज्य की

गण में थी शक्ति समाज की

हर खाप स्वयं जनतन्त्र थी

जपती स्वराज्य का मन्त्र थी ।'

महाभारत काल में हरियाणा की प्रमुख भूमिका रही है । `महाभारत` में वर्णित जनपदों में `कुरूवन` आधुनिक हरियाणा का वह प्रदेश था, जिसे कौरवों ने पाण्डवों को दिया था । पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी । आपसी गृहकलह की शान्ति के लिए पाण्डवों ने कौरवों से जो पाँच गाँव मांगे थे उनमें पाणिप्रस्थ (पानीपत) और श्रोणिप्रस्थ (सोनीपत) आधुनिक हरियाणा के आज भी महत्त्वपूर्ण स्थल है । इन्द्रप्रस्थ अपने समय में बड़ा समृद्ध प्रदेश था जहां से पाण्डवों ने अपनी पश्चिमी दिग्विजय प्रारम्भ की थी । विश्वविख्यात कुरूक्षेत्र का युद्ध यहीं हुआ और गीता का उपदेश भी इसी प्रदेश की पावन स्थली

1- हरियाणा गौरव गाथा - उदयभानु हंस, पृ0 71

2- वही, पृ0 73

पर दिया गया । यह स्थल राजा कुरू का प्रदेश, गीता का 'धर्म क्षेत्र', महाभारत का विश्वविख्यात युद्धस्थल, 'कुरूक्षेत्रं महापुण्यं, सर्वतीर्थानिषेवितम्', सन्निहित व ब्रह्मसरोवर का तीर्थ, सम्राट हर्षवर्धन की जन्मस्थली, बाणभट्ट द्वारा वर्णित अप्स-राओं का नगर आदि अनेक रूपों में भारत का प्रमुख सांस्कृतिक स्थान माना जाता है ।[1]

इसके पश्चात् गुप्त साम्राज्य का इस देश पर शासन हुआ । चक्रवर्ती सम्राट अशोक, कनिष्क आदि के शासनकाल में बौद्धमत का यहाँ जाल बिछा था ।[2] इसकी पुष्टि सुनेत व खोखराकोट से मिले सिक्कों से होती है ।[3] यहाँ से कई गुप्तकालीन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जिन पर वृष, गज और रणशास्त्रादि के चित्र अंकित हैं और जो हरियाणा की प्राचीनता को स्पष्ट करते हैं ।

"मुद्राएँ स्वर्णिम काल की/ हरियाणा क्षेत्र विशाल की/स्मारक हैं विजय महान् की/यौधेयों के गुणगान की । इनमें अंकित इतिहास है/ युग का मिलता आभास है / गणपद्धति का, गण संघ का/ सम्मिश्रण है बहुरंग का ।"[4] गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् हर्षवर्धन ने यहाँ राज्य किया । किन्तु उनके पश्चात् एक के बाद एक विदेशी आक्रमणों से सारा भारतवर्ष एक हजार वर्ष तक पराधीनता का दुःख भोगता रहा । इसी बीच यहाँ पानीपत के मैदान में

1- आध्यात्मिकता और हरियाणवी संस्कृति, आर्य- पृ0 12, डॉ0 रामकुमार वर्मा ।

2- आये दिन वंश कुषाण के/सम्राट कनिष्क महान् के/उसका साम्राज्य विशाल था/ छा गया बौद्धमत जाल का ।

हरियाणा गौरव गाथा, उदयभानु हंस, पृ0 77।

3- हरियाणा गौरव गाथा, पृ0 78

तीन महान् युद्ध हुए । वेद,उपनिषद, महाभारत, गीता व पुराणों से लेकर, शिव, गणपति,कार्तिकेय, कौरव-पाण्डव,परशुराम, भारद्वाज, कपिल यौदेयों आदि की क्रम-परम्परा में आज के श्रमजीवी कृषक व परमवीर चक्र विजेता सैनिकों तक में यह सांस्कृतिक रूप अपने आदर्श व निष्ठा को रूपायित कर रहा है ।[1]
एक प्राचीन शिलालेख में हरियाणा को स्वर्ग सदृश कहा गया है --

"देशोऽस्ति हरियाणाख्य: पृथिव्यां स्वर्गसन्निभ:"

(विक्रम संवत् 1385 का एक शिलालेख

इसी बात को हरियाणा राज्य कवि श्री उदयभानु हंस ने कविता में इस प्रकार कहा है[2]-

"पृथ्वी पर है स्वर्ग-सदृश प्राचीन देस हरियाणा ।

स्वर्ण अक्षरों में लिखा जिसका इतिहास पुराना ।

ब्राह्मावर्त देवताओं का यह ऋषियों की धरती/ जहां वेद मन्त्रों की वाणी अब तक गूंजा करती । सरस्वती के तट पर उपनिषदों की गंध बिखरती/ विजय पताका आर्य सभ्यता की सर्वत्र फहरती ।" इस प्रकार हम देखते है कि हरियाणा में अत्यन्त प्राचीन काल से ही लोकगीतों का प्रचलन मिलता है । इनकी परम्परा अक्षुण्ण रूप से बहती दिखाई देती है ।

1- आध्यात्मिकता और हरियाणवी संस्कृति बोध, डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ0 12

2- देसां में देस हरियाणा, उदयभानु हंस, पृ0 14

(2) हरियाणा का नामकरण व क्षेत्र विस्तार

हरियाणा प्रदेश के नामकरण के विषय में कई मत प्रचलित हैं। जिला हिसार की बन्दोबस्त रिपोर्ट में कहा गया है कि जींद के पास एक तीर्थस्थल रामहृदय है। उस स्थान पर परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का वध किया था। अतः हरि (हरि के अवतार) ने इस स्थल पर (यान-स्थल या एकत्रित करना) क्षत्रियों की बलि दी थी, इसलिए यह स्थान 'हरियाना' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1]

इसके अतिरिक्त राजा हरिश्चन्द्र एक बार अपनी राजधानी अयोध्या से घूमने के निमित्त इस तरफ आये थे और यहाँ पर लोगों को बसाया था, जहाँ पहले जंगल था। अतः उनके नाम पर हरि के आने से यह प्रदेश 'हरिआना' बना। तीसरा मत है कि यहाँ घना जंगल था जो 'हरियाबन' नाम से प्रसिद्ध था, जिससे कालान्तर में इसका नाम हरियाना प्रसिद्ध हुआ।

---

1. It is not positively known why it is called Hariana, but three reasons are assigned. Ist There is a village (and tank of the same name) called Ramridh, 4 kos west of Jind where Paras Ram (an incarnate of Hari) in Shastri means slain and 'ana' assembly. Hence the name Haryana. 2nd that a Raja Hari Chand having come from Outh and peopled this country which at the time was wild waste. The place was called after his name. 3rd that prior to the formations of villages and towns in this wild country, there used to grow a kind of wild wood called Hariaban from which the name Hariana has derived its origin. This last is the generally believed and accepted idea. Settlement Report, Hissar Distt. 1863-64. P.151

श्री एम॰ एस॰ रन्धावा और देवीशंकर प्रभाकर ने हरियाणा की उत्पत्ति हरि + अरण्य से मानी है क्योंकि महाभारत काल में अम्बाला से लेकर मथुरा तक भारी जंगल था । उनका विचार है कि यह धरती श्री कृष्ण भगवान् का क्रीड़ास्थल रही और इसीलिए हरियाणा कहलाई ।[1]

जिला हिसार की बन्दोबस्त रिपोर्ट में एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में सम्मिलित होने जब श्रीकृष्ण आये तो सर्वप्रथम इसी स्थल पर वे ठहरे थे । अत: हरि के आने से यह प्रदेश हरियाणा कहलाया ।

ब्रज से द्वारिका जाने के लिए कृष्ण के यान का यही निर्दिष्ट मार्ग था । इसलिए भी यह भूभाग हरियाणा कहलाया ।[2]

1883 की बन्दोबस्त रिपोर्ट में मुंशी अमीनचन्द का मत उद्धृत है जिसमें उन्होंने हरियाबन से हरियाणा की उत्पत्ति मानी है । जिला हिसार के गज़ेटियर में भी हरा शब्द से ही हरियाणा शब्द की उत्पत्ति मानी है --

A more probable derivation is from 'Hara(Green) in allusion to the expanse of Brushwood which once covered the part of the district and even now covered large portion of it growing at certain seasons of the year-an aspect of greeness to the whole country."[3]

---

3. Hissar Distt. Gazetteer, 1883-84. P.8.

1- हरियाणा के लोकगीत, पृ० 4

2- बालमुकुन्द गुप्त, स्मारक ग्रंथ, पृ०-1

इस कथन की पुष्टि इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इन्डिया (Provincial Series) पंजाब (1908) प्रथम खण्ड में की गई है --

"The name is most probably derived from Hari(Green) and is reminiscant of a time when this was a rich and fertile tract. Archeological remains show that the country watered by the Saraswati was once the scene of a flourishing Hindu Civilization and the records of Timur's invasion mention the sugarcane jungles of Tohana, a proof that at any rate the valley of Ghaggar was at that time of high fertility, though the country near Hissar seems already to have been dry and arid."[1]

गौडपादाचार्य श्री रामेश्वराचार्य की पुस्तक गौडोत्पत्ति में पृ0 72 पर इस प्रदेश को हर्यारण्य कहा गया है --

"गौड़ ब्रह्मऋषि देश में, हर्यारण्य प्रधान,
स्वामीपुर सो ब्रह्मपुर, साल्हावास स्थान "

इस पर प्रो0 पं0 स्थाणुदत्त शर्मा की टिप्पणी उद्धृत है -- कोई विद्वान् 'हरि' और 'यान' शब्द के मेल से 'हरियाणा' बनाते हैं, कोई हिरयारण्य से बनाते हैं और कोई हर्यारण्य से । कुछ लोगों का विचार है कि अकाल के समय राजस्थान से भागकर आये हुए लोगों को यहीं आकर हरियाली के दर्शन हुआ करते थे । इसलिए उन लोगों ने इस प्रदेश को पहले हरियाला कहना शुरू कर दिया । एक अन्य मत यह भी है कि इस प्रदेश में जंगलों की अधिकता थी तथा इसके दक्षिण और पश्चिम की ओर वाले प्रदेशों में बरसात की प्राय: कमी होती रहती थी । उन प्रदेशों के रहने वाले लोग

1.Gazetteer Series, Pb. (1908) Vol.I, P.222-23

अनावृष्टि के दिनों में अपने पशुओं को लेकर इस ओर आ जाया करते थे। यहाँ आकर उनकी गौएं (ह्यर्ा) हो जाती थीं। 'ह्यर्ा' शब्द का अर्थ है -"हरियाली से प्रेम करने वाली, हरियाली की ओर लपककर जाने वाली और उद्दण्ड।" ~~उनकी गाएँ यहाँ आकर ह्यर्ा हो जाती थी।~~ इसी से वे लोग इसे 'ह्यर्णा' या 'हरियाणा' कहने लग पड़े। इसी प्रकार से लोगों ने और भी कईप्रकार की कल्पनाएँ की हैं। पर उनमें से कोई भी आज सर्वमान्य न बन सकी।"[1]

पं0 धरणीधर हांसी वाले ने अपनी पुस्तक 'अखण्ड प्रकाश' में इस प्रकार लिखा है कि इस प्रदेश का नाम 'हरिबानक' था। पीछे से उच्चारण भेद से यह हरियाणा हो गया। हरिबाणक शब्द का अर्थ है जिस देश में 'हरि' (इन्द्र) की अधिक आकांक्षा हो। योगरूढ़ि से यह शब्द प्रदेशवाची बन गया। आज भी हरियाणा पानी की बूंद के लिए तरसता है और इन्द्र भगवान् की ओर आशा की दृष्टि से देखता है।[2]

वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्राचीन आभीरायण (अहीरों का घर) शब्द से हरियाणा शब्द की व्युत्पत्ति मानी है। आभीरायण > अहिरायन > हीराअन > हरिआन > हरियान > हरियाना।[3]

1- हरियाणा की भाषा, पृ0 2-3 भाषा विभाग की 58-59 वार्षिक गोष्ठी में पं0 स्थाणुदत्त शर्मा जी द्वारा पढ़ा गया लेख।)

2- पं0 धरणीधर द्वारा लिखित "अखण्ड प्रकाश" में हरिबानक शब्द का इतिहास

3- हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव।

महापंडित राहुल जी ने डॉ० शंकर लाल यादव को पत्र में अपना निम्नलिखित सुझाव दिया था कि हरियाणा शब्द हरिधान्यक से हरित्वानक > हरिआनक > हरिआनअ > हरिआन > हरियान> हरियाना आदि प्रक्रिया से अपभ्रंश की चक्की में पड़कर बना है । हरियाणा की प्रादेशिक एतिहासिकता वाले भाग में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि नकुल ने पश्चिम दिग्विजय में बहुधान्यक प्रदेश को अपने वश में किया था । प्रो० जयचन्द विद्यालंकार ने बहुधान्यक को रोहतक राज्य का एक भाग माना है । इसी को 'हरिधान्यक' नाम से भी पुकारा जाता रहा है । बहुधान्यक का अर्थ है - प्रचुर धन सम्पन्न, इसी प्रकार हरिधान्यक का अर्थ होगा -- हरियाली से भरा-पूरा । यह प्रदेश हरा-भरा रहा होगा । इसी से इसका नाम हरिधान्यक बना ।

वेद धरातल के रचयिता सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य गिरीशचन्द्र जी अवस्थी ने ऋग्वेद में उल्लिखित शब्द 'हरयाणा' को हरियाणा प्रदेश से सम्बन्धित किया है । वे कहते हैं कि "ऋग्वेद में 'हरियाण' शब्द एक राजा के विशेषण के रूप में आया है । 'हरयाणे नित्यकाल मेवाभिप्रस्थितभाने " अर्थात् जिसका रथ सदैव चलता रहे । इससे उस राजा का नाम 'हरयाण' भी प्रसिद्ध था । यह प्रतीत होता है । फिर कालान्तर में हरयाण राजा के नाम पर उस प्रान्त का नाम 'हरयाणा' पड़ गया जो आज भी पंजाब में हरियाणा नाम से प्रसिद्ध है ।[1]

1- वेद धरातल, पृ० 779 लेखक श्री गिरीशचन्द्र जी अवस्थी, व्याकरणाचार्य, प्रधानाध्यापक, संस्कृत प्राच्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने अपने अलग-अलग विचार इस विषय में प्रस्तुत किये हैं । मेरी दृष्टि में हरियाणा प्रदेश का नामकरण हरे-भरे वन प्रदेशों के कारण ही हुआ होगा क्योंकि आज भी हरियाणा की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है और प्राचीन समय में यहाँ सरस्वती और दृषद्वती नदियाँ बहती थीं, इसलिए यहाँ प्रर्याप्त अरण्य रहा होगा ।

§3§ "हरियाणा प्रदेश की बोलियाँ"

भारत एक देश है और इसकी राष्ट्रभाषा हिन्दी का क्षेत्र समस्त भाषाओं में सर्वाधिक विस्तृत स्थान रखता है। हिन्दी प्रदेश को विद्वानों ने कई विभागों में बाँटा है -- पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी और मध्य पहाड़ी।[1] पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आने वाली बोलियों में 'बांगरू' भी एक है। ये बोलियाँ निम्नलिखित हैं -- कौरवी, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली।[2]

बांगरू बोली पश्चिमी हिन्दी की सबसे पच्छिमी बोली है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इसे सरहदी नाम से पुकारा है।[3]

1 नवम्बर सन् 1966 से पहले भारत के मानचित्र में हरियाणा की सीमाओं का अलग से उल्लेख नहीं था और बन्दोबस्त रिपोर्ट से भी इस विषय में कुछ मदद नहीं मिलती। अतः विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग सीमाएँ निर्धारित करके इसे नाम देने का प्रयत्न किया है। डॉ० जार्ज ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम इसे बांगरू नाम से पुकारा है। इसके अतिरिक्त हरियानी, देसनी, जाटू, चमरवा आदि से भी इसे उच्चरित किया। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसे हरियाणा प्रदेश में बोली जाने के कारण 'हरियाणी' और बांगर क्षेत्र में व्यवहृत होने के कारण 'बांगरू' नामों से इसे अभिहित किया। डॉ० पी॰डी॰ गुणे

1- हिन्दी उद्भव, विकास और रूप, प्रथम संस्करण, पृ० 68 डॉ० हरदेव बाहरी।
2- डॉ० ग्रियर्सन - भाषा सर्वे।
3- डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ग्रामीण हिन्दी, नवीन संशोधित संस्करण, 1950 का परिचय भाग, पृ० 19

इसे केवल बांगरू कहने के पक्ष में थे । डॉ० जगदेव सिंह ने भी अपनी पुस्तक में इसे केवल बांगरू कहा । स्थाणुदत्त शर्मा ने इसे हरियाणई कहा और नानकचन्द शर्मा ने हरियाणवी । डॉ० शंकर लाल यादव ने अपने शोध प्रबन्ध 'हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य' में इसे हरियानी नाम से पुकारा है ।

विभिन्न जातियों और प्रदेशों के कारण इस प्रदेश का नामकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया । इस प्रदेश के हिसार, भिवानी, रोहतक, सोनीपत तथा कैथलादि क्षेत्रों की अधिकांश भूमि ऊँची-नीची, शुष्क व समतल होने के कारण बांगर कहलाती है । औरइसी के आधार पर उस प्रदेश की बोली का नामकरण बांगरू हुआ । 'हरियानी' नाम क्षेत्र विशेष के नाम पर रखा गया । यहां के निवासी बाहर जाने पर 'दसवाले' कहलाते हैं जिससे इस बोली का नाम देसड़ी प्रसिद्ध हुआ ।

वस्तुत: कोई भी बोली किसी एक जाति तक सीमित नहीं होती । उस प्रदेश में रहने वाले अन्य जाति के लोग भी उसको व्यवहार में लाते हैं । इसलिए 'जाटू' व 'चमरवा' नाम उचित प्रतीत नहीं होते । हरियाणवी और बांगरू देशपरक नाम हैं । जिस समय हरियाणा की भौगोलिक सीमाएं निर्धारित नहीं हुई थी, उस समय इसे चाहे जिस नाम से पुकारा गया हो, किन्तु अब जबकि इसकी सीमाओं का निर्धारण हो चुका है तो प्रदेश विशेष के नाम पर जैसे -- गुजराती, मराठी, बंगाली, मद्रासी आदि हैं, इसको हम हरियाणवी बोली के नाम से पुकारना उचित समझेंगे । बांगरू इसकी उपबोली होगी । डॉ० शंकर लाल यादव का मत उद्धृत है -- "हरियाने की बोली को हम हरियानी नाम से अभिहित करेंगे और बांगरू को हरियानी की उप-बोली मानेंगे ।[1]

1- हरियाना प्रदेश का लो॰सा॰ पृ० 85

हरियाणवी भाषा सम्पूर्ण हरियाणा में एक जैसी नहीं बोली जाती । कहावत है कि हर बारह कोस पर बानी और पानी बदल जाते हैं तो यह कहावत यहां भी लागू होती है । इसी भिन्नता को देखते हुए इसकी निम्नलिखित उपबोलियां निर्धारित की गई हैं --

§1§ बांगरू --

यह हरियाणा की मुख्य बोली है और वहाँ के सबसे अधिक क्षेत्र में व्यवहृत होती है । इस बोली के स्वरों के उच्चारण में दीर्घता और फैलाव इसकी अपनी वस्तु है और विशेषता कही जायेगी । इस प्रदेश की शक्ति सम्पन्न जातियों का बलिष्ठ उच्चारण उनकी वाणी के प्रत्येक स्वर और व्यंजन से फूटा पड़ता है । जो अपनी कर्कशता में भी आकर्षक और दीर्घता में भी मधुर है ।

§2§ मेवाती -- यह मुख्य रूप से गुड़गांव जिले की नूंह और फिरोजपुर झिरका तहसीलों में बोली जाती है । वास्तव में यह राजस्थानी की उपभाषा है, क्योंकि इसमें राजस्थानी का प्रभाव अधिक है, किन्तु हरियाणा में भी थोड़े से परिवर्तन के साथ यह बोली जाती है ।

§3§ अहीरवाटी

महेन्द्रगढ़-जिला, गुड़गांवा जिले की गुड़गांव, वल्लभगढ़, तहसीलें तथा रोहतक में झज्जर के दक्षिण के क्षेत्रों में इस बोली का प्रचलन है । यह पूर्व में ब्रज और पश्चिमी में राजस्थानी से अधिक प्रभावित है किन्तु फिर भी यह बोली हरियानी के निकट मानी जाती है ।

(4) शेखावाटी

यह भी राजस्थानी की उपशाखा है जिसे भिवानी जिले की पश्चिमी सीमा पर रहने वाले लोग बोलते हैं।

(5) बागड़ी -- यह हिसार जिले के पश्चिमोत्तरी भाग में बोली जाती है। राजस्थानी की यह उप-बोली है। हिसार जिले की सीमा पर जहाँ बीकानेर का क्षेत्र आरम्भ होता है, वहाँ विशुद्ध बागड़ी सुनने को मिलती है। वहाँ से हरियाणा की ओर आने पर यह बागड़ी बांगरू से प्रभावित लगती है।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हरियानी यहाँ की मुख्य बोली है और पाँच उपबोलियाँ हैं, जिनमें बांगरू विशुद्ध हरियानी है क्योंकि यह अपने चारों ओर से हरियाणी बोली की उपभाषा से घिरी है, जबकि अन्य बोलियाँ दूसरी बोलियों से प्रभावित हैं।

(4) "बांगरू बोली का नामकरण तथा क्षेत्र विस्तार"

'बांगर' शब्द में सम्बन्धवाची 'ऊ' प्रत्यय लगाकर बांगरू शब्द बना है। बांगर भूमि शुष्क, समतल व रेतीली होती है। इस प्रकार की भूमि हरियाणा के सोनीपत, रोहतक, भिवानी जिले के पूर्वोत्तर भाग, हिसार के पूर्वी भाग व जीन्द जिले, कुरूक्षेत्र के दक्षिणी भाग और करनाल में बोली जाती है। इस समस्त प्रदेश की बोली में समानता है। स्थानीय एवं सीमावर्ती प्रभाव होने के बावजूद भी व्याकरण तथा शब्दावली की दृष्टि से सारे क्षेत्र में यह एक जैसी ही है। इसी कारण इसे 'बांगरू' कहा जाता है। यह यहाँ की प्रतिनिधि बोली है। बांगरू बोली के गीतों का अनुशीलन मेरे शोध का विषय है।

:::::::::::

::::

::

§2§

-: निष्कर्ष :-

जनमानस ने भावाभिभूत होकर जो लयबद्ध स्वानुभूति गाकर अभि-व्यक्त की, वह लोकगीत कहलाई । लोकगीतों के बिना सभी उत्सव, त्यौहार, संस्कार अधूरे हैं । लोकगीत अपने काल की सामाजिक, धार्मिक व पारिवारिक गतिविधि का सुन्दर चित्रण करते हैं । ये हमारी संस्कृति के जागरूक प्रहरी हैं। मानव हृदय में स्पन्दित होने वाले सुख-दु:ख के विविध भाव ही लोकगीतों में अभिव्यक्त होते हैं । लोकगीत एक व्यक्ति द्वारा रचा गया, समूह ने इसको वाणी दी, जिससे यह सामूहिक माना जाने लगा । इसका उद्गम ज्ञात होते हुए भी अज्ञात है । समस्त विश्व के लोकगीत बाहरी आवरण जैसे भाषा, शैली, शिल्प आदि में भिन्न होते हुए भी आन्तरिक भावों में समान होते हैं । ये मौखिक रूप में परम्परा से चले आ रहे हैं । गीतों को लयात्मक बनाने के लिए इनमें पुनरावृत्ति की अधिकता होती है । यह प्रश्नोत्तर प्रणाली में भी मिलते हैं । इनमें संख्याओं का बहुधा उल्लेख होता है । चूंकि ये सरल-स्वाभाविक होते हैं, इसलिए अलंकरण, कृत्रिमता व आडम्बर आदि का इनमें अभाव होता है ।

लोकगीत और कलागीत, दोनों गीत की श्रेणी में आते हैं । दोनों की आत्मा समान है फिर भी दोनों में पर्याप्त अन्तर भी है । लोकगीत ग्रामों की उर्वरा भूमि की उपज है जबकि कलागीत का जन्म नगरीय परिवेश में हुआ। वैसे दोनों एक दूसरे से प्रभावित हैं और एक दूसरे की सीमाओं को एक निश्चित सीमा तक अपने में समेटे हैं ।

लोकगीतों की भारतीय परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । इसके मूल को ढूंढना कठिन है । लिखित रूप में इसका उल्लेख ऋग्वेद से मिलता है । संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई लोकगीतों की यह परम्परा आज भी निर्बाध गति से प्रवहमान है ।

प्रस्तुतअध्याय के द्वितीय खण्ड में हरियाणा की प्रादेशिक एतिहासिकता, उसके नामकरण व क्षेत्र विस्तार तथा बोलियों की विवेचना की गई है । हरियाणा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है । इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋक् संहिता में मिलता है । प्राचीन हरियाणा में वेद-मन्त्रों की रचना हुई । महाभारतका युद्ध इसी क्षेत्र में हुआ था ।

हरियाणा के नामकरण के विषय में विद्वानों ने अनेक मत दिये हैं। संभवत: इस प्रदेश का नामकरण हरे-भरे वन प्रदेशों के कारण ही हुआ है क्योंकि आज भी हरियाणा की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है और प्राचीन समय में यहां सरस्वती और दृषद्वती नदियां प्रवहमान थी । अत: यहां पर्याप्त अरण्य रहा होगा ।

हरियाणा की बोली को हरियाणवी नाम से अभिहित किया गया है और बांगरू इसकी उपबोली है, जो रोहतक, सोनीपत, भिवानी जिले के पूर्वोत्तर भाग, हिसार के पूर्वी भाग व कुरूक्षेत्र के दक्षिणी भाग में व्यहृत होती है ।

Chapter - 3

तृतीय ~~तीसरा~~ अध्याय

संस्कार गीत

भारतीय संस्कृति में संस्कार अतुलनीय महत्त्व रखते हैं। जीवन के प्राथमिक चरण से अन्तिम चरण तक कुछ विशेष स्थितियों अथवा पद्धतियों का पालन ही संस्कार है। मानव के स्वाभाविक दोषों को परिष्कृत करके उसे गुणों में परिवर्तित कर पूर्ण पवित्र एवं कीर्तिवान बनाना संस्कारों का कार्य है। इनका उपयोग मानव सुसंस्कृत होने के लिए करता है। यही संस्कार जब समन्वित रूप धारण करते हैं तो 'संस्कृति' बन जाते हैं। ये मानव को पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर अग्रसर करते हैं। संस्कृति शब्द का आविर्भाव संस्कृत भाषा की "कृ" धातु में "सम्" उपसर्ग तथा "क्तिन" प्रत्यय लगाने से हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ 'अच्छी' अथवा 'सुधरी हुई स्थिति' है। जबकि भावार्थ मानव समाज की उस स्थिति का द्योतन करता है, जिससे वह परिष्कृत, ऊँचा और जीवन के उच्चतर मूल्यों में आस्थावान माना जाय। पूर्णतः सुसंस्कृत मनुष्य तभी माना जाता है जब वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। मनुस्मृति में संस्कार के महत्त्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है कि --

"वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादि द्विजन्मताम्।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।।"[1]

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को इहलोक तथा परलोक में पावन करने वाला (गर्भाधान आदि (सोलह) शरीर) संस्कार वेद विहित पवित्र कर्मों द्वारा करने के योग्य है।

1- मनुस्मृति, अध्याय-2, श्लोक - 27

भारतीय जनजीवन यथार्थ से दूर भावना एवं धार्मिकता में विश्वास रखता है । युगों से चले आने वाले संस्कार भारतीय मानव जीवन के नियन्तास्वरूप हैं । वास्तव में हमारी भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है मनुष्य के विचारों का संस्कार करना और आदर्श बनाना । परिष्कार करने हेतु ही हिन्दू धर्म में विशेषत: संस्कारों का समावेश है ।[1] भारतीय संस्कृति मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की विविध क्रियाओं को विशेष महत्त्व देती है । गौतम और अंगिरा ने गृह्य सूत्रों का समर्थन किया है जिसके अनुसार जो माता-पिता अपनी सन्तति के संस्कार नहीं करते वे पशु की भाँति जनक मात्र हैं, जो एन्द्रिय तृप्ति के लिए सन्तान उत्पन्न करते हैं। जब तक ये संस्कार यथाविधि सम्पन्न नहीं होते तब तक माता-पिता का पद जिसे सन्तान स्वर्ग,धर्म, और पवित्र कर्त्तव्यों के समान सम्मानित करती है, प्रतिष्ठित नहीं होगा ।

वैयक्तिक और पारिवारिक निर्माण में भी इन संस्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । पं0 शिवसहाय चतुर्वेदी ने घर-घर होने वाले संस्कारों की समष्टि को ही पारिवारिक संस्कृति कहा है ।[2] चरित्र की परिष्कृतता में इन संस्कारों का सराहनीय योगदान रहता है । जिस प्रकार चित्रकला में सफलता प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के रंगों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार चरित्र निर्माण भी विभिन्न संस्कारों द्वारा होता है।[3]

1- डॉ0 राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 39

2- डॉ0 सत्य गुप्त,

3- बुन्देलखण्डी लोकगीत, भूमिका -वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ0 औ

आज के यान्त्रिक युग में भी संस्कारों का उतना ही महत्व है जितना प्राचीनकाल में था । समय के घात-प्रतिघातों से यद्यपि इनमें आंशिक न्यूनाधिक बाह्य परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, किन्तु इनके अन्तर में प्राचीन संस्कारों की गौरवशाली परम्परा प्रवाहित होती है ।

भारतीय समाज में इन संस्कारों की जीवन्तता का श्रेय परम्परा से चले आ रहे लोकगीतों को जाता है । ये लोकगीत हमारी सभ्यता व संस्कृति के सजीव दर्पण हैं । इनमें हमारा सांस्कृतिक इतिहास सुरक्षित है । प्रत्येक संस्कार के लिए अलग-अलग गीतों का विधान है । जिसमें संस्कार की मनोहर योजना होती है । ये संस्कार लोकगीतों के माध्यम से जन-मन में रचे बसे उनको मानसिक विश्रान्ति प्रदान करते हैं । लोकगीत ही इनको जन-मन में बसाए रहते हैं । क्योंकि लोकगीत के बिना कोई संस्कार नहीं होता । संस्कार के समय जितनी प्रथाओं का पालन होता है, जितने भी लोकाचारों का सम्पादन होता है, उन सबका निर्देश करने वाले लोकगीत ही होते हैं ।[1] इन सांस्कारिक सुअवसरों पर ग्रामीण नारियों के मधुर कण्ठों से उनके हृदय का समस्त उत्साह, उल्लास स्वच्छ झरने की तरह फूट पड़ता है ।

परम्परा से चले आने वाले संस्कारों का समग्र रूप से चित्रण हमारे लोकगीतों में मुखर हो उठता है । ये लोकगीत अपने में लोकमानस की विविध झांकियों को समाहित रखते हैं जो प्राचीन काल से ही मानव-जीवन के अभिन्न अंग है ।"यदि मानव जीवन संस्कारों द्वारा निर्मित है तो उस निर्माण का सत्य रूप लोकगीतों में देखा जा सकता है ।[2] इस प्रकार लोकगीतों और संस्कारों

1- कन्नौजी लोकसाहित्य में समाज का स्वरूप, सन्तराम अनिल, पृ0 280

2- बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ0 विनोद तिवारी

का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है । मानव मन की विविध भावनाओं का समावेश एवं उद्वेलन इन संस्कारगीतों में होता है । चूंकि संस्कार मानव जीवन में घुल-मिल गये हैं, अतः मानव मन की सभी भावनाओं को इनमें अभिव्यक्ति मिली है । भारतीय लोकसंस्कृति जनजीवन की झांकियों एवं रीति-रिवाजों के प्रत्यक्ष दर्शन इन गीतों में होते हैं ।

लोक गीतों के विख्यात् प्रणेता श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में भारतवर्ष का कोई भी चित्र भारतीय प्रथाओं, रीति-रिवाजों और हमारे आन्तरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराई को इतने स्पष्ट एवं सशक्त ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता जितना कि लोकगीत कर सकते हैं ।

लोकगीतों में हमारी संस्कृति सुरक्षित है । जन्म से लेकर मृत्यु तक के विविध आयामों की सजीव झांकी इनमें प्रतिबिम्बित होती है । हिन्दुओं के समस्त प्रचलित संस्कार, बारहमासों में फैले हुए विभिन्न ऋतुगीत परिवेश, जातीय गौरव की गाथाएँ, विभिन्न धार्मिक उत्सव, पर्व-मेले तथा हमारी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक चेतना लोकगीतों के वर्ण्य-विषय हैं । शकुन-अपशकुन, लोकविश्वास, पशुपक्षी, वन, नदियां एवं अन्य प्राकृतिक नयनाभिराम दृश्य इन लोकगीतों में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति पाते हैं ।[1]

हमारे इन लोकगीतों में हमारी मौलिक सांस्कृतिक चेतना की अनुभूति प्रायः अपने परम्परागत रूप में सुरक्षित है । हमारी विख्यात मार्मिक ऐतिहासिक घटनाएँ व चरित्र भी इनमें सुरक्षित हैं । सांस्कृतिक दृष्टि से सभी

---

1. अवधी लोकगीत, समीक्षात्मकअध्ययन, डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, पृ० 29

मनुष्य समान हैं। लोकसाहित्य के अमर वैतालिक सांस्कृतिक समता की घोषणा मानवीय शाश्वत भावनाओं की आदिम अभिव्यक्ति के रूप में करते ही रहे हैं और कहते हैं कि हम सब प्रकृतित: एक हैं।[1]

यह सर्वमान्य है कि लोकगीतों द्वारा ये संस्कार जनमानस में लोकप्रिय बने रहते हैं। ये मनुष्य के स्वाभाविक दोषों का परिष्कार करके उन्हें गुणों में परिवर्तित कर देते हैं। उन्हें पवित्र एवं कीर्तियुक्त बनाना इनका काम है।

प्राचीन वैदिक साहित्य एवं स्मृतिग्रन्थों में इन संस्कारों की संख्या सोलह मानी गयी है। जो निम्नलिखित हैं -- {X} गर्भाधान, {X} पुंसवन, {X} सीमन्तोन्नयन, जातकर्म{जन्म}, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास, अन्त्येष्टि।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इनकी संख्या छ: मानी है। यद्यपि संस्कारों की संख्या सोलह है, किन्तु पुत्र-जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान संस्कार माने जाते हैं। इन संस्कार गीतों का सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मूल्य है।

प्रत्येक संस्कार दो प्रकार से सम्पन्न किया जाता है। पौरोहित्य अथवा शास्त्रीय पद्धति से और लौकिक पद्धति से।
शास्त्रीय या पौरोहित्य संस्कार को ब्राह्मण-पुरोहित मन्त्रोच्चार के साथ सम्पन्न करते हैं। जबकि लौकिक पद्धति को स्त्रियां लोकगीतों द्वारा सम्पन्न करती हैं।

1- डॉ० देवराज उपाध्याय - लोकायन की भूमिका, पृ० ग

इनमें लोक-निर्मित आचारों का पालन किया जाता है, जिनका उल्लेख न तो शास्त्र में ही होता है और न उनके अनुष्ठान के लिए पुरोहित की आवश्यकता होती है। लौकिक संस्कार का सम्बन्ध आनुष्ठानिक गीतों से है, जिनका समस्त कार्य स्त्रियाँ गीतों के द्वारा ही करती हैं। इन गीतों का मन्त्रोच्चारण से पृथक महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य स्थान है। ये औपचारिक गीत अपना मांगलिक महत्त्व रखते हैं।[1] इनका महत्त्व मन्त्रों से किसी भी अंश में कम नहीं होता। सन्तराम 'अनिल' के शब्दों में "संस्कारों और लोकसाहित्य के सम्बन्ध की अविच्छिन्नता को देखकर कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य आज भी लोक को अनुप्राणित करने की शक्ति रखता है, वह केवल अतीत की वस्तु न होकर पूर्णरूप से सामान्य लोकमानस की शिराओं में प्रवहमान है।"[2]

लोकगीत संस्कार में सजीवता और रोचकता भर देते हैं। कोई भी संस्कार उस शोभा, उस स्फूर्ति एवं उस हृदयहारिता से वंचित रह जाएगा, जो अवसरोपयोगी इन गीतों के द्वारा संस्कार को प्राप्त होती है।[3]

हिन्दू शास्त्रों द्वारा निर्धारित ये सोलह संस्कार मानव के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। किन्तु आजकल केवल तीन संस्कारों का अधिक महत्त्व है। जातकर्म (जन्म), विवाह एवं अन्त्येष्टि (मृत्यु)। कई

1- डॉ0 श्रीमती विनोद तिवारी - बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन

2- सन्तराम 'अनिल' कन्नौजी लोकसाहित्य में सामाज का स्वरूप, पृ0 280

3- डॉ0 शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, पृ0 123-24

संस्कार विलुप्त हो गये हैं । लोकगीतों में मुंडन संस्कार का विधान अवश्य मिलता है । कर्णबेध एवं जनेऊ संस्कार यद्यपि पौराहित्य है, किन्तु बांगरू भाषी प्रदेश में जनेऊ संस्कार अलग से सम्पन्न नहीं किया जाता अपितु विवाह के समय ही सम्पन्न किया जाता है । विलुप्त संस्कारों के विषय में सन्तराम अनिल का कथन तर्कसम्मत है कि "लुप्त संस्कार हो सकता है सामान्य जनता में कभी मनाए ही न गये हों, इनका सम्बन्ध केवल शिक्षित और सवर्ण लोगों तक ही रहा हो और इसीलिए इन संस्कारों से सम्बन्ध रखने वाले लोकगीत या किसी प्रकार की भी लोकाभिव्यक्ति उपलब्ध नहीं होती ।[1] बांगरू भाषी प्रदेश में मुख्यत: जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार ही प्रचलित हैं । उपनयन संस्कार का प्रचलन है, किन्तु उस समय गाये जाने वाले गीत आर्यसमाजी ढंग के हैं । ये गीत सुधारवादी हैं, अत: लोकगीतों के तत्त्वों का उनमें अभाव है । गुरूकुल और ब्रह्मचर्य की साधारण महिमा उनमें वर्णित होती है ।[2]

जातकर्म, विवाह और अन्त्येष्टि मानव जीवन की तीन महानतम घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं । जन्म एवं विवाह का मानव की प्रजनन क्रिया से और मृत्यु का उसके अवसान से सहज सम्बन्ध है । मानव अपनी वंश परम्परा की धारा को सतत् रूप में प्रवहमान रखना चाहता है, इसका एकमात्र साधन है प्रजनन, और यही कारण है कि वह प्रजनन क्रिया को अधिकाधिक फलवती बनाने के लिए उत्सुक एवं प्रयत्नशील रहता है । इसी उत्सुकता के कारण मानव ने देशकाल की

1- डॉ0 सन्तराम अनिल, कन्नौजी लोक साहित्य का स्वरूप, पृ0 279

2- डॉ0 सन्त राम अनिल, पृ0 274, वही

सीमाओं के बन्धन को तोड़कर प्रजनन क्रिया में महान् आकर्षण और सौन्दर्य का दर्शन किया है। इसके विपरीत मृत्यु तो जीवन का अवसान ही कर देती है। अतः उसकी भयंकरता से भी मनुष्य बहुत अधिक प्रभावित हुआ है।[1]

बालक के जन्म से भी पूर्व गर्भाधान से लेकर मृत्यु के बाद तक लोकगीतों का विस्तार देखा जा सकता है। इन लोकगीतों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव अभिव्यक्त होते हैं। विश्व की समस्त जातियों में विवाह अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर माना जाता है। क्योंकि इसमें मानव मन अपने नए साथी के लिए उत्सुकता से परिपूर्ण हो उठता है। विवाह की परिणति सन्तानोत्पत्ति में होती है। सन्तानोत्पत्ति सृष्टि के विकास का अद्भुत रहस्य है।

हमारे प्राचीन शास्त्रों में पुत्रजन्म से पूर्व गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन का वर्णन मिलता है, किन्तु आजकल जनसमाज में इनका उतना प्रचलन नहीं मिलता।

हिन्दी में पुत्र जन्म एवं उत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'सोहर' कहलाते हैं, जो संभवतः 'सोहिलो' के अपभ्रंश हैं।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य की भूमिका में सोहर की व्युत्पत्ति बताते हुए लिखा है कि संभवतः सोहर शब्द की व्युत्पत्ति "शोभन" शब्द से ज्ञात होती है। यही शब्द शोभिलो > सोहिलो > सोहर के रूपों में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। इसकी उत्पत्ति 'सुघर' शब्द से भी मानी जा सकती है, जिसका अभिप्राय सुन्दर होता है।[2]

1- डॉ० सन्तराम अनिल, पृ० 274, कन्नौजी लोक साहित्य का स्वरूप

2- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 72,

श्री चन्द जैन ने सूतिका गृह-सौरी से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम सोहर माना है । जबकि डॉ0 भगवती प्रशाद शुक्ल का मत है कि इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के `सूतिकागृह` और प्राकृत के `सुइहर` से हुई है । डॉ0 सरोजिनी रोहतगी ने इसे `सोहिलो` या `सोहिला` कहते हुए इसकी व्युत्पत्ति क्रमशः इस प्रकार मानी है -- सं0 शोभावत - प्रा0 सोहिलो + क, हि0 सोहला ।[1] जायसी कृत पद्मावत में सोहिलो शब्द आया है --

`सबका विलास होइ सोहिला` ।

हिन्दी साहित्य में `सोहर छन्द` में रचित अनेक काव्य मिलते हैं, जैसे तुलसीकृत जानकी मंगल, आदि । तुलसी ने गीतावली में रामजन्म पर सोहिला गवाए हैं -- राग जैतश्री --

सहेली सुनु सोहिलो रे ।
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज
पूत-सपूत कौसिला जायो अचल भयो कुल राज ।

अवध प्रदेश में भी सोहर शब्द का प्रचलन है --

"बाजै लागी अनन्य बधाइयाँ, गावैं सखि सोहर "

हरियाणा में पुत्र जन्म के अवसर पर मांगलिक गीत गाने का विधान है । जिसमें प्रधानतया स्त्री-पुरूष की रति क्रीड़ा, गर्भाधान, गर्भिणी की शरीर यष्टि, प्रसव पीड़ा, दोहद;धाय का बुलाना और पुत्र-जन्म आदि का वर्णन होता है ।

1- अवधी लोक साहित्य, पृ0 12

गर्भवती स्त्री खाने के लिए जिन इच्छित वस्तुओं की कामना करती है, उसे हिन्दी में 'दोहद' और बागरू में 'ओजणा' कहा जाता है। गर्भवती की खाद्येच्छा को पूर्ण करने का आदेश शास्त्रों में भी दिया गया है, इसीलिए उसकी हर इच्छा की पूर्ति अनिवार्यत: करनी पड़ती है। खाने की इच्छा की पूर्ति हेतु कहीं-कहीं 'सिंधारा' भेजने की प्रथा का प्रचलन है, जिसमें प्रथम बार गर्भवती होने पर पांचवें अथवा सातवें मास में विभिन्न खाद्यान्न एवं वस्त्राभूषण भेजने का प्रचलन है। इस प्रथा को 'सिंधारा' कहते हैं। ओजणा की साध गर्भिणी को अपने पति व परिवारजनों से इच्छित वस्तुएं मांगने पर मजबूर कर देती है। वस्तुत: ओजणा को अत्यन्त प्रतिष्ठा से देखा जाता है।

'दोहद' अर्थात् गर्भावस्था में स्त्री के दो हृदयों का होना -उदरस्थ शिशु और माता-इन दोनों के मन में अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। लोक प्रचलित विश्वास है कि यदि ये इच्छाएँ अपूर्ण रह जाएं तो बच्चे की सदा लार टपकती है। वह सदैव असन्तुष्ट रहता है। मनोवैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध किया जा चुका है कि अतृप्त इच्छाएँ भविष्य में मानसिक अपरिपक्वता और अस्वस्थता में परिणत होती हैं। जननी का मानसिक स्वास्थ्य उदरस्थ शिशु के मानसिक एवं शारीरिक विकास को प्रभावित करता है। इसीलिए स्वस्थ सन्तान के लिए ही हमारे पूर्वजों ने दोहद का विधान किया था और गर्भवती की इच्छा को इतना महत्त्व दिया गया था --

महाकवि कालिदास ने भी सुदक्षिणा के दोहद का वर्णन किया है --

"न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं, स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इतिस्म पृच्छत्यनुवेलमादृत:, प्रियासखीमुत्तरकोशलेश्वर:।"[1]

1- कालिदास - रघुवंश 3/5

हरियाणा में इस विषय से सम्बन्धित अनेक गीत प्रचलित हैं । एक गीत में गर्भिणी अपने पारिवारिक पुरुषों से किशमिश खाने की इच्छा व्यक्त करती है, परन्तु वे टाल जाते हैं--

"ससुरे तैं अरज करूँ थी, मन्नै हरी हरी दाख मंगा द्यो,

थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या ।

किन्तु ससुर दाखों के अभाव में लड्डू-पेड़ा आदि बहू को देते हैं --

"थम लाडू-पेड़ा खा ल्यो, हरी हरीदाख नहीं सै,

थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या ।"

इसी प्रकार वह अपने जेठ, देवर आदि से आग्रह करती है, किन्तु वे उसे क्रमशः दूध, मलाई और खीर खाने के लिए कहते हैं । सर्वत्र निराश गर्भिणी अपने पति से ओजणा निवेदित करती है --

"कन्था ते अरज करूँ थी, मन्नै हरी हरी दाख मंगा द्यो,

थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या ।

पति सहर्ष उसकी बात को सर-आंखों पर लेता है --

सैहरा में दाख घणी सै, थमनै भावै उतणी खा ल्यो,

थारी प्यारी कै ओजण लाग्या ।[1]"

पति की सहानुभूति पत्नी से स्वाभाविक है ।

एक अन्य गर्भवती वधु अपने श्वसुर से बेरों के लिए आग्रह करती है --

---

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 128

"सुसरै आग्गै बीणती मेरो मन बेरो बेर पुकारै,

हमनै बेर दुवा द्यो जी।

सुसरा बोल्या बेरा की रुत कोन्या,

दूद-दलियो भावै इतणो खाय, बेरां गी रुत कोन्या।

सास्सड़ बोल्ली बेरा की रुत कोन्या,

हलवो पूड़ी भावै जितणी खा, बेरां की रुत कोन्या।"

अन्त में पति चूंकि देश-विदेश की यात्रा करता है, इसीलिए वही पत्नी की इच्छा पूर्ण करता है --

"रै गोरी हम तो जावां देस परदेश, ल्यावां ए बेर भर छावड़ो,

बेर भावैं उतणैं खा।"

भोजपुरी नारी अपनी इच्छाएँ इस प्रकार से व्यक्त करती है --

"सावन की सबनइयां आंगन सेज डासीले हो

ए पिया। फुलवा फुलेला करइलिवा गमक मने भावेला हो

आरे पातरि-पातरि सुनर मुख दुरहुरि हो

कवन कवन फलवा मन भावे कहि ना समुझाबहु हो

भातवा त भावेला धानहि केरा, दलिया रहरि केरा हो

ए प्रभु रेहुआ त भावेला मछरिया, मासु तीतिले केरा हो।"

एक अन्य स्थल पर दोहद गीत में गर्भवती की नौ मास की अवस्था का चित्रण किया गया है --

"जी पैहुला मास जे लागिया, दूद दही मन जाय

मेरे अंगवा मैं अमला बो दिया।

दूजा मास जै लागिया निंबुवां मैं मन जाय, मेरै ------

तीजा मास जै लागिया, मेरा बेरां मैं मन जाय, मेरै---------

चौत्था मास जै लागिया, मेरा लड्डुवां मैं मन जाय, मेरै -----

पांचमा मास जै लागिया, मेरा खीर मन जाय, मेरै------

छट्ठा मास जै लागिया, मिरा गूंद गिरीयां मन जाय, मेरै ------

सातमां मास जै लागिया, मेरा फलियां मैं मन जाय, मेरै---

आठमां मास जै लागिया, मेरा धाणियां मैं मन जाय, मेरै -----

नौम्मां मास जै लागिया, मेरा हौल्लड़ सबद सुणाय, मेरै------- ।"

मनोविज्ञान के अनुसार भी गर्भवती स्त्री की इच्छाओं एवं भावनाओं का समुचित आदर करना चाहिए, ताकि वह प्रसन्न रहे । हरियाणवी नारी इस दृष्टि से सौभाग्यशालिनी कही जा सकती है । ससुराल में न केवल उसकी खाने की इच्छा को मान दिया जाता है, अपितु पूर्ण विश्राम भी वह करती है--

"चुन्नी लेहरा ले री जच्चा ए तेरै हात मैं

एक सुख देख्या मन्नै सुसरै जी के राज मैं

कुरसी उप्पर बैठठी कताब मेरै हात मैं । चुन्नी -----

एक सुख देख्या मन्नै जेट्ठा जी के राज मैं

दूद पीया दूद का गीलास मेरै हात मैं । चुन्नी------

एक सुख देख्या मन्नै देवरजी कै राज मैं

पेड़े खाए पेड्यां का लफाफा मेरै हात मैं । चुन्नी "

किन्तु न जाने क्यों पति के राज्य में

उसकी दाल नहीं गली --

"मिस्सै खाए टिक्कड़ गंट्ठा ए मेरै हात मैं ।"

इसी विषय का एक अन्य गीत द्रष्टव्य है जिसमें सास-नणद आदि गर्भवती से सहृदयतापूर्ण व्यवहार करती हैं और उसे खाने-पीने की वस्तुएं अवस्थानुसार परोसती हैं --

"मन्नै तीज्जा मिहना लाग्या, सास्सु नै बेरा पाट्या
वा हलवा पूरी करके ल्याई, मन्नै देख थनथनी आई ।
मन्नै छट्टा मिहना लाग्या, नणदी नै बेरा पाट्या
वा दाल चरचरी ल्याई, मन्नै दोन्नू गोज भरायी"

इसी खुशी के मौके पर लुगाइयां हंसी-मजाक करने से भी बाज नहीं आती --

"जच्चा गी चटोरी जीब जलेबी मांगै
इंके सुसरे नै गैहणा धरा के, सासु का ब्याज लुगाल्यो"

इसी प्रकार जेठ, देवर,नणदोइया आदि को रहन रखकर क्रमशः जेठानी, देवरानी,नणद आदि का ब्याज लगाने की बात कही गई है ।

माता की प्रसन्नता-अप्रसन्नता का सीधा प्रभाव उदरस्थ शिशु पर पड़ता है । इस इच्छा का इतना ध्यान रखा जाता है कि दुर्लभतम वस्तु भी परिवारजन बहू के लिए उपलब्ध कराने को तत्पर रहते हैं । निम्न गीत में पुत्र वधु श्वसुर से दुर्लभ सीताफल खाने की इच्छा व्यक्त करती है, जिसे वह समुद्र के बीच से लेकर आता है --

"मैहला में खड़ी जच्चा लाडली सुण सुसरा मेरा
नाज ना भावै तोला एक सीताफल भावै
न्यूं तै बता दे बहुअड़ लाडली कड़ै सी पावै
जइये समन्दरां गै बीच पाणी मैं पावै

जइये समन्दरा गै बीच खाणे मैं आवै
हरे ए गुलाबी नाबी फूल भीतर तैं धोले
नै ए टंकी सै उसका नाम खाणे मैं मीट्ठे।"

राजस्थानी नार दोहद में नींबू खाने की इच्छुक है --

"सासु जी म्हारै हालड़ियो आवै नरवछोल्या नींबू भावै"

यहां भी पति इच्छा पूरी करता है -- पत्नी आभार प्रकट करके उनके कुटुम्ब के सुख की कामना करती है --

"थम तो म्हारी सास्सु गा जाया, म्हारी मनड़ी इच्छा पूरी करी
रदियो-बदियो थारी बेल, कन्थै जी म्हारी इच्छा पूरी करी।"

अवधी दोहद का एक गीत दृष्टव्य है --

"सोने की टिकुली दुलहिनी रानी ठनुकि ठुनुकि बोलैं
राजा हमरे हबुसि[1] कै साथ, हबुस लै आवो।

अनेक लोकगीतों में सन्तानोत्पत्ति के समय के कष्टों का ब्यौरेवार उल्लेख मिलता है। स्त्री असह्य प्रसव पीड़ा से छटपटाने लगती है। निम्न गीत में इसी का वर्णन हुआ है --

"घमड़-घमड़ आवें पीड़ कदीक तै कोई जागैगी
जागैगी सास म्हारी वाई तै म्हारै आवैगी।"

प्रसव पीड़ा के आरम्भ होते ही जच्चा को नेगादि की चिन्ता होने लगती है। इस अवसर पर सास-ननदादि अवश्य आएंगी और उनका नेग धरावणा पड़ेगा। अत:

1- हरा गेहूं या जौ की हरी बाल भूनकर दाने निकालकर गुड़ और घी से मिलाकर खाना।

वह अपने पक्ष के लोगों को ही बुलाना अधिक पसन्द करती है। क्योंकि पीहर वालों से उसे कुछ मिलने की आशा है जबकि श्वसुर पक्ष उससे कुछ प्राप्ति की आशा रखता है --

"उट्ठी राजा मेरै पेडडू मै पीड़ उट्ठी
कहो तो जच्चा तेरी सास नै बुला द्यूं
नहीं मेरे राज्जा सास्सु का काम नहीं, उट्ठी ------
कहो तो जच्चा तेरी नणदल नै बुला द्यूं
नहीं मेरे राज्जा मेरी नणदल का काम नहीं। उट्ठी ----
कहो तो जच्चा तेरी मां बाहुण नै बुला द्यूं
कही मेरे राज्जा मेरे मन की सी बात कही। उठी -------
कहो तो गोरी किसै पंडित नै बुला द्यूं।
नहीं मेरे राज्जा मेरे पंडित का काम नहीं। उट्ठी ----
कहो तो जच्चा अपणे नाई नै बुला द्यूं
नहीं मेरे राज्जा मेरे नाई का काम नहीं
कहो तो राणी तेरे बाबल बीरण नै बुला द्यूं
कही मेरे राज्जा मेरे मन की सी बात कही।"[1]

इसके विपरीत एक लोकगीत में पत्नी सास, नणद, दौराणी-जिठाणी को बुलाने का आग्रह करती है, किन्तु किन्हीं कारणों से पति बहाने बनाकर उनका बुलाना टालता है --

"पिया काल सांज के पीड़ कमर का कोय ना सात्थी
पिया भाज लूज के ज्या सास मेरी भाज्जी आवैगी
रै गोरी मेरा र उसका बैर फेर वा तान्नै मारैगी। पिया --

1- हरियाणा के लोक गीत-राजा राम शास्त्री, पृ0 16

पिया आज लूज के जाय धुराणी मेरी भाज्जी आवैगी ।

रै गोरी मेरा र उसका बैर फैर वा हात हलावैगी"

बहन के लिए भी वह बहाना बनाता है --

"रै गोरी छोर्‌या के हो्‌या गुमान म्हैंस उसकै हातै पावैगी ।"

गर्भवती स्त्री पीड़ा से व्याकुल होकर अपने पति, सास, जिठानी आदि से प्रार्थना करती है कि वे उसकी पीड़ा बंटा लें --

"कोइडी कोइडी बाड़ बुहारूँ दर्द उठ्या सै कमर मैं"

पतिदेव चुप्पी साधे बैठे रहते हैं । गुस्से में वह पति को घर छोड़ने की धमकी देती है --

"हो राजीड़ा इब ना रहूँगी तेरै घर मैं"

अपनी देवरानी, जेठानी से भी पीड़ा बंटाने का अनुरोध करती है, परिणामस्वरूप उसे उपहास का पात्र बनना पड़ता है --

"द्योर जिठाणी मेरी बोल्ली मारैं जिब क्यूं सोवै थी बगल मैं"

किन्तु सास नणद उसे सान्त्वना देती हैं --

"सास नणद मेरी धीर बंधावै

होत आवै सै जगत् मैं "

छोटा देवर दाई को अवश्य बुला देता है --

"छोट्टा देवर खरा रसीला दाई नै बुलावै इक छन मैं"

भाभी पारितोषक के रूप में अपनी अनुजा का विवाह देवर से करवा देती है --

"छोट्टा देवर नै बाहण ब्वाहद्यूं, दाई बुलाई इक छिन मैं ।"[1]

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 130-31

आसन्न प्रसवा को कष्ट की अधिकता में और कुछ नहीं सूझता तो वह अपने उदरस्थ शिशु से शीघ्र उत्पन्न होने का आग्रह करती है, ताकि वह कष्ट से छुटकारा पा जाये । किन्तु बालक उससे वचन लेता है कि मुझे सोने का पलना और मखमल का गद्दा चाहिए । साथ ही वह सम्बोधन भी कृष्ण का चाहता है । लोकगीत में उसे यही आश्वासन दिया गया है[1] --

"मैं पड़ी सूं वीर की कैद छुड़ाओजी म्हारा राज
मा मैं क्युक्कर जलम ले ल्यूं ?"
टूटटी खटड़िया फटी गुदड़िया छोरा के के बोल्लो जी
म्हारा राज
जो लाला थम जलम ले ल्यो, सुन्ने का पलणा, मखमल के गद्दा
किरसन कैहृ के बोल्ला, हर कहे के बोल्ला जी म्हाराज
आछी सी रात खुले हैं किवाड़, पहरेदार सोये जी म्हाराज ।"

दीर्घ प्रतीक्षोपरान्त वह शुभ घड़ी भी आ जाती है जब उसके गर्भ से पुत्र रत्न जन्म लेता है । पुत्र जन्म से माता में हर्ष और उत्साह की लहर फूट पड़ती है, उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं होता । वह पुत्र जनने पर गर्वित है --

"जागे म्हारे भाग हुआ रे म्हारे ललना
रूई दार घल्या री म्हारे पलणा ।"

पुत्र प्राप्ति को प्राचीन समय में भी उत्सव के रूप में नाच गाकर मनाया जाता था । यह प्रथा आज भी कई जातियों में प्रचलित है । आदि कवि बाल्मीकि ने रामजन्म के समय गंधर्वों द्वारा गाने और अप्सराओं द्वारा नाचने का वर्णन किया है --

----

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 131

"जगुः कलं च गन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरो गणाः ।

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिच खात्पतत् ।।"[1]

महाकवि कालिदास ने पुत्रजन्म के अवसर पर राजा दिलीप के महल में वेश्याओं द्वारा नृत्य तथा मंगल वाद्य होने का उल्लेख किया है --

"सुखश्रवाः मंगलतूर्य निस्वनाः प्रमोद नृत्यैः सह वारपोषिताम् ।

न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्युजृम्भन्त दिवौकसामपि ।"[2]

डॉ० राजबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक हिन्दू संस्कार में इसी मत की पुष्टि करते हुए उल्लिखित किया है कि गर्भ धारण का निश्चय हो जाने के उपरान्त गर्भस्थ शिशु को पुंसवन नामक संस्कार से अभिषिक्त किया जाता था । पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस धर्म से था जिसके अनुष्ठान से पु=पुमान्(पुरुष) सन्तति का जन्म हो । इस अवसर पर ऋचाओं में पुमान अथवा पुत्र का उल्लेख किया गया है तथा वे पुत्र जन्म का अनुमोदन करती हैं । पुत्र को जन्म देने वाली माता की प्रशंसा थी व समाज में आदर था । यह परम्परा उस युग से चली आती थी जब युद्ध के लिए पुरूषों की अधिक आवश्यकता होती थी क्योंकि प्रत्येक युद्ध के पश्चात् पुरूषों की संख्या घटती जा रही थी । स्त्री का भी जन्म होता ही था, पर स्त्री से भी यही आशा की जाती थी कि वह पुत्र सन्तान को ही जन्म देगी, पुत्रीको नहीं ।[3]

कन्नौजी लोकगीतों की नायिका पुत्रजन्म पर गर्वित होती है --

1- बालकांड, 18/16

2- रघुवंश, 3/19

3- हिन्दू संस्कार, राजबली पाण्डेय, पृ० 73-77

"हमने जाये हैं नन्द लाल, धिआ नहिं जाई है ।"

स्त्री को बधाई देते समय कहा जाता है कि तुम तो कुल को तारने वाली हो । कुल तारने से उस भारतीय विश्वास की ओर संकेत मिलता है जिसमें माना गया है कि पुत् नामक नरक से त्राण पाने के लिए पुत्र ही समर्थ होता है । अतः पुत्र को जन्म देकर वह कुल तारनी बनती है ।[1]

जहाँ पुत्र जन्म पर इतना हर्ष और उत्सव मनाए जाते हैं, वहीं पुत्री जन्म पर विषाद की गहरी रेखा दिखाई पड़ती है । माता कहती है कि जैसे पुरइन का पत्ता हवा के कारण काँपता है, उसी प्रकार मेरा हृदय पुत्री के जन्म से काँप रहा है ।[2]

इस विषय से सम्बन्धित गीत हरियाणा में भी मिलते हैं । नायिका ने जब गर्भ धारण किया था तो पति ने उसे पहले ही चेतावनी दे दी थी कि यदि उसने पुत्री को जन्म दिया तो वे उसके नाक और कान काट लेंगे । अतः वह प्रतिपल यही भजती थी कि भगवान् उसके नाक और कान बचाएँ । अन्त में उसकी पुकार सुनी और स्वीकारी जाती है ।

"जो गोरी तन्नै जनमी ए धीयड़ी
कोए काट त्यागे नाक अर कानड़े
म्हारे अंगणा में अमला बो दिया ।
रामा एक मास गये दो ए मास
रामा तीजे मैं लाग्या ए उपाय, म्हारे ------- ।

1- कन्नौजी लोकसाहित्य का स्वरूप, सन्तराम "अनिल", पृ० 63
2- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० 74

रामा चौत्था ए लाग्या ए पांचमा

रामा छट्ठा लाग्या ए सातमा, म्हारे ------ ।

रामा आठमा लाग्या ए नौमा

कोए उठी ए कमर मैं पीड़, म्हारे ------- ।

कोए दाई नै दिया होल्लड़ जणाय

भली ए करी मेरे राम नै कोए राख दिये

नाक अर कान, म्हारे ------ ।"

पुत्र जन्म को जहां इतने उल्लास पूर्वक मनाया जाता है, वहां पुत्री के जन्म को इतना शुभ नहीं माना जाता । विशेषतया उन जातियों में जहां पुत्री के विवाह पर भारी भरकम खर्च उठाना पड़ता है । कन्योत्पत्ति पर माता-का निरादर होता है । कोई उत्सव नहीं मनाया जाता । बांगरू भाषी प्रदेश में जहां पुत्रजन्म पर शुभसूचक थाली द्वारा पड़ौसियों को सूचित किया जाता है, वहीं पुत्री जन्म पर केवल ठेंकरा फोड़ दिया जाता है --

"म्हारे जनम मैं बाजैं,ठेकरे, भाई के मैं थाली

बुड्ढा बी रोवै, बुढ़िया बी रोवै, रोवैं हाली-पाली"

संस्कृत में पंचतंत्री के कर्ता ने भी पुत्री-जन्म को एक संकट बताया है --

"पुत्रीति जाता महती हि चिंता,

कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः

दत्वा सुखं प्राप्स्यति वानवेति

कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् ।

(मित्रभेद, कथा-5, श्लोक 222)

जननी मनोहरति जातवती परिवर्धते सह शुचा सुहृदाम ।

परसात्कृतापि कुरूते मलिनं दुरतिक्रमा दुहितरो विपदः ।

प्राचीन काल से ही पुत्रजन्म को पुण्य का फल माना जाता है । जहाँ माता की स्तुति "तू इड़ा है, तू मित्रोंवरूण की पुत्री है"[1] आदि शब्दों द्वारा की जाती थी, वहाँ पुत्र की महत्ता "तू वेद है"[2] जैसे शब्दों के माध्यम से प्रकट की जाती थी ।

पुत्र जन्म पर सारा घर प्रसन्नता से झूम उठता है । पुत्र उन्हें साक्षात् भगवान् कृष्ण सदृश लगता है --

"किरसन जी नै जलम लिया तारा भरी रात मैं
दाई आवै होल्लड़ जनावै नेग मांगै रात मैं
द्यो राजा जी नेग होल्लड़ जणाया रात मैं"

गृहस्वामि इस अवसर पर 'दसूठण' करना चाहता है । जिसमें भारी खर्चा होने की संभावना है । घर की गृहस्वामिनी ऐसा करने से उन्हें मना करती है कि इससे व्यर्थ का खर्चा होगा --

"लल्ले का दादा न्यू कहै मैं करूँ दसूट्ठण भारी
लल्ले की दादी न्यू कहै लल्ला के हुंड्डी ल्याया ।
हात्तां तै नंगा आया, पैरां तै नंगा आया ।
हात्तां की मुट्ठी भींच कै सिर पै लट्टूरी ल्याया ।"

इसी प्रकार चाचा, ताऊ, मामादि दसूठण की तैयारी करते हैं और क्रमश: चाची, ताई, मामी आदि उनको मना करती हैं ।

1- पारस्कर गृह्यसूत्र - 1/16/15

2- गोभिल गृह्यसूत्र 2/7

एक अन्य स्थल पर गृहपति बड़ा खर्च करता है --

"कहियो कहियो री होल्लड़ के दाद्दा नै

ज्योड़या री जकोड़या आज खर्चे

म्हारै बाज रह्या थाल हुआ नन्द लाल

हुआ नन्द लाल अर मुंशी सूबेदार"

प्रसूता के लिए विभिन्न पौष्टिक खाद्यान्न पकाए जाते हैं । सास चरूवे में पानी औटाकर रखती हैं । जेठानी-देवरानी आदि सब सेवा में तत्पर हो जाती हैं । सूतिकागृह के द्वार पर नज़र रखी जाती है ताकि बिल्ली आदि अन्दर प्रवेश न कर जाए । बिल्ली नवजात शिशु को हानि भी पहुँचा सकती है और एक लोकविश्वास भी प्रचलित है कि बिल्ली यमराज का रूप होती है । अत: उसे अनिष्टसूचक माना जाता है । जच्चा के द्वार पर बैठकर स्त्रियाँ अपने कोकिल कण्ठों से लोकगीतों का गान करती हैं । जच्चा के लिए तैयार किये जाने वाले खाद्य पदार्थों में पंजीरी मुख्य है । इसकी गंध से पति की चटोरी जीभ लपलपा उठती है[1] --

"या कुण करै कढाइया, या कुण करै कढ़ाइया

या कुण फेरै चम्मच्चा, मीट्ठी लाग्गै पंजीरिया"

वह थोड़ी सी पंजीरी चाहता है --

"टूक सी दे दे पंजीरिया, मिट्ठी लाग्गै पंजीरिया"

किन्तु पत्नी उसे देने से स्पष्टत: मना कर देती है । वह उसे उस पूर्व स्थिति का स्मरण कराती है जब उसने उसके कष्ट में सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की थी । अब वह उसे पंजीरिया किस एवज में दे? थोड़ी सी पंजीरी

1- हरियाना प्रदेश के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 17

मांगने पर उसे कैसे करारे उत्तर का सामना करना पड़ता है --

"मेरै उट्ठे थी पीड़, तन्नै आवै थी नींद

ठोस्सा खा ले पंजीरिया

मेरै उट्ठै था गुस्सा, मेरा जाम्मण का मौका

तेरा बाज्जै था हुक्का, ना द्यूं, ना द्यूं पंजीरिया ।"

इसी से मिलता जुलता एक गीत ब्रज प्रदेश में भी प्रचलित है । किन्तु हरियाणावी पुरुष जहां पत्नी के उत्तर से मौन हो जाता है, वहां ब्रज नायक चालाकी से काम लेता है । वह जरा सी सहानुभूति से अपनी पत्नी का मन रख लेता है । बड़ा तर्कपूर्ण उत्तर देता है --

"गोरी छप्पर होइ उठाऊं, जनै दस लाऊं

भैया दस लाऊं ।

गोरी जे करतार गढ़रिया, सखिन बिच-खोलो;

जाय राम छुड़ावैं, जाय कृष्ण छुड़ावैं ।"

पति अपने कार्य के सिलसिले में बाहर जाना चाहता है, किन्तु पत्नी को चिन्ता है कि पति के जाने के उपरान्त उसे कोई भी जमावणा नहीं जमा कर देगा । अत: वह अपनी इस शंका का समाधान चाहती है --

"थम रै पिया परदेस चले औ

गोरी नै अजवण कुण ल्यावैगा जी राज

रै गोरी थम होल्लड़ तो जलमो

अजवण म्हारा बाबू जी ल्यावैगा जी राज

तेरे रै बाबू का पिया के ए भरोसा

ल्यांवता बिखेरै, तुलांवता बिखेरै

जच्चा राणी का जी ना पसीजै जी राम । थम -

थम तै पिया परदेसां चाल्या

गौरी गी अजवण कुण पीस्सैगा जी राज

रै गौरी थम तूं हो ल्लड़ तो जलमो

अजवण मेरी माता पीस्सैगी जी राज

सास्सड़ का पिया के रै भरोसा

पीसती खिंडावै, जमावती खिंडावैं,

जच्चा का जी नां पसीजै जी राम । थम -- ।

देवर जी का पिया के सै भरोसा

सेर ल्यावै, तीन पा बतावै, जच्चा राणी ----

नणदल का पिया के सै भरोसा

बांधती खावैं, जमावती खावैं, जच्चा ----- ।"

अन्त में पति स्वयं अजवायन ला कर, जमा देने की बात करता है, तभी पत्नी को सान्त्वना होती है ।

"इब रै पिया मिरा अजवण पचैगा

जच्चा राणी का जी पसीजै जी राम ।"

जमावणें के बाद सभी का मन होता है कि हम भी चखें । पति बेचारा एक बार तो लताड़ खा चुका है । अब श्वसुर, देवर, जेठ आदि सौंठ के लड्डू पर ललचाते हैं --

"मेरा पेरस चढ़न्ता सुसरा न्यू कहवै
बूहू एक लाड्डू हमनै द्यो ए, लाड्डू चरचरी सूंठ को
बहू का मन देने को नहीं करता, अतः
वह बहाना बनाती है --
"सुसरा फोड़ूं तो दुक्खै म्हारी आंगली
साब्बत दिया ए ना जाय "

पति भी मांगता है । अब पत्नी का मन बदल जाता है
और वह सहर्ष लड्डू देने को तैयार हो जाती है --
"पिया कोट्ठी ओ पाच्छै झाखरा
तेरा मन चाहवै उतणे खा,
लड्डा चरचरी सूंठ का"

किन्तु पिता के अपमान को पुत्र अपना अपमान मानता है ।
परिणामतः वह लड्डू नहीं खाता --
"गोरी बगड़ बखेरूं तेरा झाखरा
मेरै बाब्ल का मारया सुमान,
लाड्डा चरचरी सूंठ का ।"

लोकगीतों में इसी समय नेगों का भी वर्णन होता है ।
कोई भी शुभ संस्कार नेगों के अभाव में सम्पन्न नहीं होता ।
स्त्री को अपने श्वसुर पक्ष की सभी स्त्रियों को पुत्रजन्म पर नेग
देने पड़ते हैं । इनमें मुख्यतः सास,देवरानी, जिठानी,नणद,दाई और
नाइन आती हैं । जो पहले उसे देखकर मुंह फेर लेती थीं, वे भी
अब नेगादि के लिए आ रही हैं । लेकिन जच्चा को अब गर्व हो गया
है । वह जानती है कि यही समय है कि जब वह उनसे उनके

किये का बदला ले सकती है । वह काम पड़ने पर किसी को नहीं बुलाती । वह सब कार्य स्वयं करना चाहती है --

"राज्जा के मैहला मैं कबूत्तर बोल्या आदी रात
कह्वो तो राणी दाई बुला द्यां तेरे पास
नई-नई मेरे राज्जा होल्लर तो जणें अपणे आप
कह्वो तो राणी सास्सड़ बुला द्यां तेरे पास
नई-नई मेरे राज्जा घूट्टी पिलावी अपणे आप"

नेग लेने के लिए सर्वप्रथम दाई आती है । क्योंकि वही बालक का जन्म कराती है ।

"दाई आवै होल्लर जणावै तारा भरी रात मैं"

साधारण जन का चित्रण राजा-रानी के माध्यम से हुआ है । राजा गाँव की चौपाल के मध्य चौपड़ खेलने में व्यस्त है । स्त्री उसे बुलवाकर दाई को बुलाने भेजती है । बरसती रात में दाई आती है । उसकी भी शर्त है[1] --

"राजा जी जै थारै जलमैगा पूत, मोहर हम पचास लेवां-हां जी हां
जै थारै जलमैगी धीय, ओढ़ां हम चूंदड़ियां- हां जी हां
दाई ए पूत जलम्या हमारी नार, तेरा दाई क्यारे लाग-
हां जी हां
राजा जी दोए बरस की से बात, दाई के पैरां फेर पड़ो-
हां जी हां
राजा जी मेह अंधेरोड़ी रात, चतर दाई कैसे चलै, हां जी हां
दाई ए छिन मिन बरसै मेह ओढ़ो थारी घाघरी -
हां जी हां

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 132

दाई एकाली कुती दोय गैल करां, हां जी हां ।"

पति-पत्नी किसी को नेग देना नहीं चाहते । वे नई नई अटकलें लगाते हैं कि किस प्रकार ननद, सास, जिठानी, देवरानी को नेग न देना पड़े और सम्बन्ध भी न बिगड़े । क्योंकि उन्होंने जच्चा की इस दौरान पूर्ण तत्परता से सेवा सूश्रूषा की थी । सास ने खान-पान सम्बन्धी जिम्मेदारियों को निपटाया तो जिठानी ने पलंग बिछाया । देवरानी ने जहां परदों की व्यवस्था की, वहां नणद ने उसके स्तन धोकर शिशु के पीने योग्य बनाए ।

"हे यशोदा मूं दिखादे अपणे मदन गुपाल का
सास्सड़ आवै दीवला जगावै उंका नेग दिवाय दियो
जिठाणी बी आवै पिलंगा बिछावै उंका नेग दिवाय दियो
नणदी बी आवै सतिया धरावै, उंका नेग दिवाय दियो ।"

उनके कार्यों को स्मरण न करके भावज अपनी अड़ौसन-पड़ौसनों से कहती है कि नणद को पुत्र-रत्न की प्राप्ति का पता ही न लगने दो --

"सुणो री म्हारी पाड़ पड़ौसण
सुणोरी म्हारी दौर जिठाणी
नणंद तै कोई मत कहियो
आज म्हारे होलड़िये हुए ।"

वह ढोलक बजा कर खुशी भी मनाती है और यह भी चाहती है कि उसकी थाप नणदल तक न पहुँचे --

"ढोलियारै धीरै-धीरै ढोलकी बजा

पिछवाड़ै बसै नणदल ।"

फिर भी नणद तक भतीजे के जन्म का समाचार पहुँच ही जाता है ।

"ढोलक सुण नणदल भाज्जी आई

ल्यावो गले का हार, ओ हो मन रंजना "

भाभी जब गर्भवती हुयी थी, उसी समय बदनी हुई थी कि नणद टिकावल हार ही लेगी । उस समय तो भाभी मान गयी थी । लेकिन अब उसे भी टिकावल हार से मोह हो गया है । इस गीत में पूरी घटना का सविस्तार वर्णन हुआ है --

"पड़छाइयां गी छांह नणद भावज दोन्नूं बतलावै

हीराबन्द चूंदड़ी जी

जे म्हारी नणदी धीय जणांगे री बेब्बे

न्यूं आई न्यूं ए ज्या, हीराबन्द चूंदड़ी जी--

जे म्हारी नणदी पूत जणांगे

द्यांगे टिकावल हार, हीराबन्द चूंदड़ी जी --

ये नौ ए दस मास नणदी

होल्लड़ सबद सुणाय, हीराबब्द चूंदड़ी जी--

गायां मैं आच्छा बैड़का जी सायबा

म्हारी नणद नै द्यो, हीराबन्द चूंदड़ी जी

गऊ री बेहड़ा म्हारे घरां भतेरे

जो बचन भइया सोई द्यो

हीराबन्द चूंदड़ी जी --"

नणद को दो भिन्न कार्यों के लिए दो नेग चाहिए।

भाभी स्पष्टतः बच कर उसे भाई के पास भेजती है जो

पूर्व नियोजित योजनानुसार उसे सगी बहन मानने से ही

इंकार कर देता है --

"जै री नणदी तेरै होया री भतीज्जा
चुची धुंवायी म्हारा री हसला
है री सथियां गी लोली बूंद

नणद तन्नै राज्जी कर द्यूंगी

इब री भावज मेरै होया री भतीज्जा

चुच्ची धुवायी म्हारा री हसला

मेरी सथियां की लोली बूंद

भावज मन्नै राज्जी कर दे री

इब री नणद तेरा बीरा री जाणै

कोन्या री मा जायी बाहण

गोरी रै क्यूं घर नै लुटावै

री मेरा सासरा थोड़ी क दूर

भावज मैं त सांझ नै डिगर ज्यांगी।"

एक अन्य गीत में भावज अपनी नणद को पुत्रोत्पत्ति पर गले का हार देने का कौल करती है । इस गीत में यशोदा के नन्दलाल का चित्रण हुआ है ।[1]

"आनन्द हुए म्हारी नगरी आज, अरे मन रंजना
नन्दलाल हुए नन्द लाल हुए ओ हो मन रंजना
कोए भाभी ने न्हाण संजोया
नणदल मुखड़ा निरखै, अरे मन रंजना
जो भाभी तुम पुत्तर जणोगी
ले ल्यां गजे का हार; ओ हो मन रंजना
ढोलक सुण नणदल आई, ल्यावो टिकावल
हार ओ हो मन रंजना"

भाभी के पूछने पर नणद शर्त बदनी की तिलड़ी और भजीजे का हार चाहती है ।
लेकिन भाभी का तर्क है कि कष्ट तो हमने उठाया । हार तुम्हें क्यों दे दें?

"कष्ट उठाया हमने जाया, तम कैसे मांगो गल
हार अरे मन रंजना "

फिर स्वयं ही तिलड़ी न होने की स्थिति में भतीजा उठा ले जाने को कहती है --

---

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 19

"बीबी तिलड़ी कित तै ल्यावूं

ले जाओ नै भतीज्जा उठाय, अरे मन-- ।"

नणद ऐसा ही करती है --

"कोए अंगणा मैं झूलै पलणा

बीबी ले गयी भतीज्जा उठाए, ओ हो मन- ।"

पुत्र बिना पति-पत्नी को घर-आंगन सुनसान लगता है ।

वे बदनी की तिलड़ी देकर बालक लेते हैं --

"थाल भर मोत्ती भाब्बी ल्याई

ऊपर जड़ाऊ हार, अरे मन रंजना ।

बीबी ले ल्यो जड़ाऊ हार अर दे द्यो म्हारा

लाल, अरे मन रंजना ।"

भाभी के कुटिल मन में सर्प रूपी षड्यन्त्र रेंगने लगा ।

नणद ओढ़ पहन कर जब उससे गले मिलने आई तो उसने

तिलड़ी पर हाथ साफ किया और पैर दबाते समय

पाजेब निकाल ली ---

"पैहर ओढ़ जो बीबी ठाड़ी भावज नै

मिलणा संजोया, अरे मन रंजना

गल मिलती की तोड़ ली तिलड़ी

पांय पड़ती काढ़ ली पजेब, अरे मन रंजना "

विजयोन्माद में गर्वित नायिका पति से अपनी होशियारी

बताती है ---

"राजा जी देखो म्हारी चतरायी

हम तीन्नूं चीज ले आयी, अरे मन रंजना ।"

पति आखिरकार भाई तो बहन का भी है । वह पत्नी के ओछेपन से प्रभावित नहीं होता बल्कि उसे लताड़ता है --

"गोरी तूं सै ओछा घरां गी धीय
तेरै पीहर मैं योए होत्ती आयी ।"

परिहास में कन्नौजी नार नणद को सौत कहने से भी नहीं चूकती --

"लइ जाव लइ जाव सउति रानी
कंगना लालन के भये "[1]

जच्चा पति से अनेक बहाने बनाती है, जिससे कि श्वसुर पक्ष की स्त्रियां नेग लेने न आ जाये --

"मिरा रिणक भिणक सिर भड़कै
सिरहाणै बैठ्या बूज्जै, गौरी के रतमारा दूखै
पिया इसी सास ना चइये हलवे पै राड़ जगावै हो
पिया इसी जिठाणी ना चइये, पिलंगा पै राड़ जगावै हो
पिया इसी दुराणी ना चइये पड़दे पै राड़ जगावै हो
पिया इसी नणद ना चइये, टुम्मां पै राड़ जगावै हो"

जच्चा के गीत गाने के लिए आस-पास की कौटुम्बिक स्त्रियां एकत्र होती हैं । वे आशा करती हैं कि गीत गाने के एवज में उन्हें नेग की प्राप्ति होगी । न होने पर वे उपालम्भ देने से भी नहीं चूकती --

---

1- डॉ० सन्तराम अनिल - कन्नौजी लोक साहित्य का स्वरूप-२५६

"मैं आयी थी मीठियां की ल्यालच

फीकियां देय भुलाय दई

मैं आयी थी गिउआ की खात्तर

बाजरै की देय भुलाय दई

मैं आई थी धणियां की खात्तर

दो-दो देय भुलाय दई "

इस गीत में गृहिणी की कृपणता द्योतित होती है । मां अपने मन में सन्तान के आगमन के स्वप्न भी संजोती है --

"वा घड़ी सुब दिन जाणूंगी

मिरा री होलड़िया अपणे दाद्दा घर जावैगा

दाद्दा के घर ज्यावैगा रे दादी हंस

हंस लाड़ लड़ावैगी "

पुत्रोत्पत्ति पर नाते-रिश्ते के सम्बन्धी बधाई देने आते हैं । इस विषय को लेकर जो गीत प्रचलित हैं, उन्हें 'बधावा' कहा जाता है । इसमें बधावा शब्द का प्रयोग भी हुआ है --[1]

"किस मोस्सर म्हारै जलम्या सै पूत

किस मोस्सर म्हारै जलम्या है पूत

बधावा हो मैं सुण्या जी म्हाराज

सुसरा म्हारा गाम्मां का चौधरी जी म्हाराज

सास्सड़ म्हारी है घर की मेढ़, बधावा हो मैं --

जेठ म्हारा बाजूबन्द जी म्हाराज

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 20

जिठाणी हमारी बाजूबन्द की डोर, बधावा --

नणद हमारी कड़क बीजली जी म्हाराज

नणदोइया साम्मण सी लोर, बधावा ---- ।

धन-धन बऊअड़ तेरी जीब नै जी म्हाराज

सारे यश फैलाया हो, बधावा हो मैं ---- ।

धन-धन सास्सड़ तेरी कूख नै जी म्हाराज

कोए जनमे हैं अरजन भीम, बधावा हो ---

नित उठ जनमै धीयड़ी जी म्हाराज

नित आवैं पाहुवणे, बधावा हो मैं ----- ।

नित उठ जनमैं हमारे पूत जी म्हाराज

नित उठ म्हारे बाज्जैं हो बाजिया जी म्हाराज

नित उठ म्हारै राधै हो खीचड़ी

बधावा ------- ।"

एक अन्य बधावा गीत प्रस्तुत है --

"म्हारै आंगण बाज्जा बाजियो जी राज

मैं त नित उठ लीपा आंगणो

किण मोस्सर लीपा पाछली पछीत

बधावा हम सुणियो जी म्हारा राज

हम तो नित उठ राछा खीचड़ी जी

किण मोस्सर ओ सायबा जिंदवा का भात"

पुत्र जन्म के छठे दिन 'छठी' नामकउत्सव सम्पन्न किया जाता है। यह एक मुख्य संस्कार है। जच्चा-बच्चा को नहलाकर प्रसूति गृह से बाहर निकाला जाता है। घर आंगन की लिपाई-पुतायी होती है। पकवान बनाए जाते हैं, लापसी की धोक लगती है। माना जाता है कि इस दिन 'बे माता' नवजात शिशु का भाग्य लिखती है। द्वारों के दोनों कोलों पर साथिये रखे जाते हैं। यह कार्य सास-नणद आदि करती हैं। परिणामस्वरूप वे नेग प्राप्त करती हैं। इस समय पर गाया जाने वाला एक गीत प्रस्तुत है --

"बड़ ए बगड़ तै सती राणी नीसरी
भर गोब्बर की हेल
गोब्बर छिड़का भोली राणी भौंपड़ी
धरती मैं हुवाए लिपाव
बड़ ए बगड़तै सती राणी नीसरी
भर गिंहा की हेल
गीऊं छिड़क्या भोली राणी भौं पड़ी
धरती मैं राख्या ए बीज
बड़ ए बगड़ तैं सती राणी नीसरी
भर लोट्टा भर नीर
गड़वा तो छिड़कों भों पड़ी
धरती हुआ ए लिपाव"

सत्ती देवी छठी की अधिष्ठात्री देवी

मानी मानी गयी है --

"इन रे गाणा के बीरा गोखै

लम्बी लम्बी ए खजूर

जे चढ़ सत्ती राणी सत्तलियो

सुरग नेड़ै घर दूर

मेरा बीरा ए बीरा ढोलिया

गहरा ढोल बजाय

पीहर सुणियो बीरा रै लाडलड़ी नणसाल

उतका तो ल्यावैं बीरा चूंदड़ी उतका नागर पान

ओढ़ सुहागण राणी चूंदड़ी, चाब्बो न नागर पान

सीलै री हुयो सापूतड़ी, जिन्हैं रै लिवाया म्हारा

नाम "

नायिका को इस बात की बड़ी ईर्ष्या है कि उसने इतने कष्ट सहकर पुत्र जना है और वह स्वामि का लाल कहलायेगा । कन्नौजी नार तो सास - ननदादि से इस बात का दावा खुल्लम खुल्ला ~~करता~~ करती है कि

"दरद तो हमने सही, पिया के लाल कहसेक हाये "

किन्तु हरियाणवी नार इसके रहस्य से अनजान नहीं है कि पति का इसमें साझा तो है ही, फिर भी वह खिचड़ी, पीला, गूंद, अजवायन, खांड, घी आदि के बदले में पति का पुत्र में साझा करने की बात करती है --

"हम धनी जी खिचड़ी गी साध

खिचड़ी हाल मंगाद्यो जी

खिचड़ी ए गोरी मायुयड़ भावज पै मांग

(मैवा मीसरी जी) हम पै जी

हम धन जी पीला गी साध

पीला हाल मंगा द्यो जी

पीला ए गोरी मायुयड़ पै मांग

हम पै नौरंग चूंदड़ी जी

इस पर पत्नी धमकी देती है --

"इतणी जे म्हारी साध पजोय,

जिब होल्लड़ हम सीरद्या"

पति का प्रत्युत्तर सटीक है --

" भूली री धण असल गंवार

होल्लड़ थारा म्हारा सीर का "

छठी के उपरान्त कुँआ पूजन अथवा जलवा पूजने की विधि सम्पन्न की जाती है । इस अवसर पर जच्चा 'पीला' ओढ़कर पानी लाती है । 'पीला' एक वस्त्र होता है जो आसपास बांधणी छपाई से युक्त और बीच में से पीला होता है ।

इसे केवल पुत्र की मां ही धारण कर सकती है । पुत्र जन्म पर स्त्री के पिता के घर से वस्त्र, आभूषण, घी इत्यादि आते हैं । इस शुभ अवसर पर शक्कर और घूघरी गीतेरनों में

बांटी जाती है । इस अवसर के गीतों को 'पीला' कहा जाता है --

"पीला तो ओढ़ म्हारी जच्चा सहर चाली नी
सारा सहर सराही पति प्यारा जी, पीला रंगा
द्यो जी ।
पीला तो ओड म्हारी जच्चा मुंडलै बैठी
सास नणद मुख मोड़या, पति प्यारा जी --
के पीला तेरी मांय रंगाया
के नणसालां तैं आया, पति प्यारा जी --
सास्सू का जाया भोजी बाई जी का बीरा
उण म्हारी साद पजोयी, पति प्यारा --
आंख्यां ना देखै जच्चा मुखड़े ना बोल्लै जी
कण रै निरासी निजर लगायी, पति प्यारा --
दिल्ली सहर तैं साहबा बैद बुलाद्यो जी
जच्चा गी नबज दिखाद्योजी, पति प्यारा--
झड़ै तो झाड़ै बेदा रोक रुप्पैया जी
मुख तै बोल्लै मोहर पचीसी जी, पति-----
अपणा चढ़ण का साहबा घुड़ला बकसो जी
जच्चा गै जीव की बधायी, पति-------
तूं रै बैद का बेट्टा बोहत ठगोरिया जी
भोले हाक्किम नै ठग लिया, पति प्यारा ---- "

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 142

पुत्र जन्म चूंकि शुभ अवसर होता है, इसलिए भगवद् स्तुति अनिवार्य है । स्त्री की चरम आकांक्षा मातृत्व की भावना में होती है । पुत्र-रत्न के जन्म की खुशी में गाया जाने वाला कामना गीत द्रष्टव्य है ।

"जै री माता तूं सतयुग की कहिये राणी
रस्ते मैं बाग लुंवाया माता सतयुग की
पाच्छा तो फिरके देखो रे लोगो

आम्ब अर नींबू झड़न लागे माता सतयुग की माता के
राह में बांझ पुकारे माता दे री पुत्तर घर जायें
पाच्छा तो फिरके देखो री लोगो पुत्तर खिलादी घर जायें"

'मैथिली लोकगीत' में डॉ० रामइकबाल सिंह का कथन है कि --

सोहर सुखान्त होता है । इसमें आशा की निर्बाध निर्झरिणी टेढ़ी नागिन सी बल खाती हुई चली गई है ।"[1]

लेकिन सोहर गीतों में जहाँ आशापरक गीतों की प्रमुखता रहती है, वहीं निराशाप्रद गीतों का प्रचलन भी है । यह निराशा स्त्री के बांझपन की है । वह अपनी कोख के दुःख से दुःखी है । ऐसी स्त्री अपने गौरवशाली पद से शनैःशनै च्युत होती जाती है । उसका मन स्वप्न देखता है कि कोई नन्हा उसकी अंगुली पकड़ने वाला हो, जिसके साथ वह पति को लेकर सारा शहर घूम आए । उसके आंगन लीपते ही कोई अपने

1- पृ० 50

नन्हें-नन्हें पैरा से उसमें चरण चिन्ह छोड़ दे । किन्तु वह बेबस है, बांझ है । लोक-कवि की पैठ नारी के भीतरी मन तक है । इस गीत में कैसी व्यथा है नारी मन की[1] --

"चलो म्हारा राजीड़ा सैहूरां में चाल्लां
जे कोय बालक पकड़े आंगली जी
बोल्ली है धण मूरख गंवार, बिण जायां कैसे पकड़े
आंगली जी
लीप्या पोत्या बांझड़ी के सोभै,
ना कोय बालक खेलैं आंगणे"

बालकों को खेलते देखकर स्त्री के मन में टीस उठती है । कहीं उसका निश्वास बच्चों को न प्रभावित करे, सपूती स्त्रियां बांझ से कतराती हैं । अनेकों बार वे स्पष्टत: उसके मुंह पर कह देती हैं कि तू चूंकि बांझ है, इसलिए अशुभ है । पुत्र की मां बन्ध्या से पर्याप्त दूरी बनाये रखती है ताकि कहीं उसके दुर्भाग्य का दुष्प्रभाव सपूती पर न पड़े । वन्ध्या गर्भवती स्त्री का 'तुंबड़ली' कहकर उपहास करती है । और कहती है कि मैं भी भाई-भतीजों वाली हूं । गर्भवती तर्क करती है कि भाइयों से तेरी मां और भतीजों से भावज सपूती है । निपूती होने के दु:ख में तेरे हृदय में आग जल रही है[2]--

---

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 11
2- वही, पृ0 12

"रहो रहो बाँझलड़ी दूर रहियो

तेरी ए लाम्मण सैं म्हारे फूल झड़ैं जी

रहो रहो तुंबड़ली गरब मत बोल

हम सां भाई भतीज्यां आली जी

भाई ए भतीज्यां तेरी मा ए सपूती

तेरै ए हिवड़े बाँझड़ दौं क्लै जी ।"

दु:खी मन से वह उदास रहती है । सखियां कारण जानने को उत्सुक हैं [1] --

"क्या दु:ख री तन्नै सास का, क्या तेरे पिया परदेस

नां दु:ख री मन्नै सास का कोए ना पिया परदेस"

अपना दु:ख वह बाँझपने को बतलाती है --

"इक दु:ख री मन्नै कोख का, कोय या मैर मारैं सै मान"

एक सखी का सुझाव है कि तुम्हारी बहन के सात पुत्र हैं, एक उधार ले लो --

"तेरै री बाहण के सात पुत्तर, कोय एक उधारा जे लेय"

वह शंकित है कि पुत्र उधारा नहीं मिलेगा --

"सुन्नै रै चाँद्दी मिलैं सै उधारे कोई लाल उधारे ना दे

गेहूं चावल मिलैं सैं उधारे कोय लाल उधारे ना देय "

मर्माहत स्त्री लुहार से छुरी घड़ाने और अपनी कोख चीरने को उद्यत होती है, जिससे उसमें भूसा भरकर आग लगा दे --

---

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 14

"मेरै पिछोकड़ै खाती का कोय ल्यावूं घुरी घड़वाय
चीरूं रै फोड़ूं या कोख नै, या कोय मेरै मारे सै मान,
खाल कढ़ा के भुस भराऊँ कोय भुस मैं दिलाधुंगी आग"
दीर्घ प्रतीक्षोपरान्त उसके पुत्र रत्न की प्राप्ति
होती है --
"बारह बरस मैं कोख बाहुवड़ी जलमै सै अरजन
---सरजन लाल
सास बुलावूं नणद बुलावूं कोय नेग दिला द्यूं जी
आज ।"

बांगरू लोक गीतों में इस प्रकार के अनेकों प्रसंग हैं । एक अन्य लोकगीत में बन्ध्या स्त्री मन को समझाती है कि क्या हुआ यदि उसके पुत्र नहीं है ? वह अपनी अनुजा का विवाह पति से करवायेगी और उसके पुत्र से स्वयं सपूती हो सकेगी । पति को दूसरे विवाह के लिए राजी करती है--

"पिया एक कहया मेरा मान, दूजा ब्या करवा ले हो"

पति समझाता है --

"गोरी मत ले ब्याह का नां दुखड़ा भारी हो ज्यागा"

वह खुशी से अपना साज सिंगार बहन को देने को तैयार हो जाती है--

"पिया जाइये हो म्हारे गाम, बाहुण मेरी मां की जाई हो
पिया दे द्यूं तार सिंगार, दे द्यूं तीयल रेसमी हो
पिया सौंप द्यूंगी मैं घर बार, हो जाऊँ हात तलै की हो"

पति विवाह करवाकर आता है --

"पिया ब्याह कै उल्टा आ बांग्गा मैं डेरा लाइये हो
बाढ़ी भर मोती का थाल, राणी नै तारण चाल्ली हो

किन्तु सगी बहन अपशकुन से भयभीत उससे मुंह मोड़ लेती है --

"जीजी इंघै नै मुखड़ा मोड़, बाहुण मेरी मा की जाई हो

बेब्बे परे नै मुखड़ा मोड़, थम तै बांझ लुगायी हो "

ये शब्द उसका हृदय चीर कर रख देते हैं।

वह फिर दिन-रात उदास रहने लगती है। बहन के सात पुत्र भी उसको सपूती न कर सके। वह कोई वस्तु तो नहीं है जो उसे उधार मिल सके।

निपूतेपन का कलंक इतना गंभीर और व्यापक है कि प्रकृति और प्रकृति के जीव-जन्तु सबकोइससे ग्रसित होने का भय है। गृह-द्वार से निष्कासित-अपमानित भोजपुरी नारी जब वन में जाती है तो वहां नागिन, बाघिन और धरती द्वारा तिरस्कृत होती है। अन्ततः भगवान् उसकी विपदा को समझते हैं और उसे पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं, जिससे उसकी खोई हुई मान प्रतिष्ठ पुनः स्थापित हो जाती है।

"सासु मोरी कहेली बंझनियां ननद ब्रजवासिनी हो

रामा जिनके मैं बारी रे बिआही अहो घर से निकस-लीन हो॥।॥

घरवा से निकसी बंझनियां जंगल बिच ठाढ़ भइली हो

रामा बनवा से निकसी बघिनिया त दुःख सुख पूछइलो

तिरिया। कुवन विपतिया के मारल जंगल विच ठाढ़ भइली हो

सासु मोरि कहेली बंझनियां ननद ब्रजवासिन हो

बाघिनी। जिनके हम बारी बिआही रे ऊ हो घर से

निकसलनि हो

जहवां से तू चलि आइलू, लवटि तवहां जावहु हो
बांझनि । तोहवा के जो हम खाइबि हमहुं बांझ होखबि हो
उइवां से चलेली बंझनियां बिअरी पासे ठाढ़ भइली हो
रामा । बिअरी से निकले नगिनिआ त दुःख सुख पूछई हो
तिवई कवने विपत्तिया के मारि बियरी पासे ठाढ़ भइलि हो
सासु मोरी कहेली बंझनिया ननद ब्रजवासिनी हो
नागिनी। जिनके हम बारी बिआही रे ऊहो घर से निकसलनि हो
नागिनी। हमारा के जो खाइ लीहत विपत्तिया से छूटटी हो
जहवां से अइलू लवटि तहां जावहू तोहि नहिं डसबइ हो
बांझनि तोहरा के जो हम उसीब हमहू बांझ होखबि हो
उहवां से चलली बंझनियां भाई बुअरा ठाढ़ भइली हो
सितरा से निकसी मयरिया त दुःख सुख पूछहि हो
बिटिया । कवन विपति तोरे ऊपर उहां से चलि अइलू हो
सासु मोरि कहेली बंझनिया ननद ब्रजवासिन हो
मइया । जिनकर हम बारी बिआही रे ऊहो घर से
निकसलनि हो १
मइया। हमरा के जो राखि लिहितू विपत्तिया से छूटिती हो
धिया । जहवां से अइलू लवटि तहवां जावहु तोके नहि राखवि हो
धिया तोहरा के जो हम राखबि बंझनिया बहू बंझिहनि हो
उहवां से चलेली बंझनियां जंगल बिच आवेली हो
धरती । तू ही सरन अब दिहितु त बंझनिया नाम छटति हो
जहवां से तू अइलू उलटि तहवां जावहु तुमहि नाही राखब हो

बाझनि तोहरा के रखले हमहू होखबि असर हो ।"

अवध प्रदेश में भी यह गीत कुछ शाब्दिक परिवर्तन के साथ प्रचलित है । करूणा की पराकाष्ठा है इस गीत में । वन्ध्या स्त्री की घोर उपेक्षा है । समस्त जगत् में वन्ध्या का/कहीं कोई सहारा या आश्रय नहीं है । मान-मार्यादा और प्रतिष्ठा नहीं है । वह ऐसी उपेक्षिता स्त्री है जिसका पृथ्वी के समस्त तत्त्व अनादर करते हैं ।

पति स्वयं सन्तान के दु:ख से दु:खी है । वह अपने दूसरे विवाह की तैयारी करता है । स्त्री के पूछने पर बताता है कि यदि एक पुत्र होता तो दुनिया में नाम रह जाता, वंश चल पड़ता । स्त्री परास्त हो जाती है । विवाह की समस्त तैयारियां होती हैं । वह नववधु की आगवानी करने अत्यन्त उत्साह से जाती है । किन्तु वह वन्ध्या कहकर मुंह मोड़ लेती है। दुखित मन से वह अन्दर जाकर रोने लगती है । पति धीरज बंधाता है

भगवत् कृपा से कुछ ही दिनों के उपरान्त दोनों स्त्रियां गर्भवती होती हैं । सौभाग्यवश बड़ी के पुत्र उत्पन्न होता है और छोटी के कन्या जो कालान्तर में स्वर्गवासी हो जाती है । बड़ी का नन्दलाल घर में खेलता फिरता है --

"तावली रोट्टी पो दे री गोरी मन्नै तड़कै दिल्ली जाणा है
इसा ओ पिया के काम जरूरी तनै तड़कै दिल्ली जाणा है
दिल्ली मैं इक राज रोसनी मन्नै उसतै ब्या करवाणा है
इसा ओ पिया के खोट मेरै मैं तम दूज्जे साद्दी करवाओ
इक लाल हो जान्ता रे गोरी मेरा दुनियां मैं नाम रे जान्ता
आइयो ए लुगाइयो मेरे पिया ने बान बठाइयो ए

दिल्ली मैं मच रूया सोर आज राज रोसनी की साद्दी है

आइयो ए लुंगाइयो मैरे पिया की बुह नै उतराइयो ए

छोलै तै परे नै हो ले ए तू कइयै बाँज लुगायी

तू साच्ची साच बता दे ए तेरे आग्गै किसनै बताई

मैरे आग्गै उसनै बताई ए जिसके मैं ब्याई आई

मैं भीतर बड़ के रोई ए मेरा बालम धीर बंधावै

बडली कै छोरा होग्या ए छोट्टी कै छोरी होरी

छोट्टी की छोरी मर गी ए बड़ली का छोरा खेलै ।"

यहाँ बन्ध्यात्त्व के कलंक से छूटने में स्त्री की पुत्र कामना झलक रही है । बन्ध्यात्त्व से मुक्ति फिर यदि पुत्र रत्न के रूप में मिले तो कहना ही क्या ?

छोटी और बड़ी बहन एक ही घर में ब्याही हैं । बड़ी बहन के पाँच पुत्र हैं, जबकि छोटी के एक भी नहीं । छोटी बड़ी से एक पुत्र देने के लिए कहती है, किन्तु वह सभी को व्यस्त बताकर पुत्र देने को मना करती है, भगवदकृपा से कालान्तर में छोटी गर्भवती होती है । कन्हैया को जन्म देती है । वह बड़ी बहन को बुलाकर कहती है कि बहन ! तुम यदि चाहो तो मेरा पुत्र उधारा ले लो । बड़ी बहन को पश्चात्ताप होता है कि यदि पहले मुझे यह ज्ञात होता तो मैं अपना पुत्र तुम्हें दे देती ।

"गंगा र जमना दोए बाहुण थी, दोन्नूं पाणी नै जै ए

हर पणमेसर सरण तुम्हारी ।

बड़ी ए बाहुण नै घड़ा ए डबोया, छोट्टी के आंसू आए

के माई जाई तेरी सास बुरी सै के पीए दुदकारी

ना मा जाई मेरी सास बुरी सै ना पी ए दुदकारी

तेरै ए मां जाई पांच पुत्तर सै एक उधारा दे दे

सोन्ना र चांदी मिलै ए उधारा पूत उधारा ना मिलए

सोन्ना र चांदी बेबे घरां ए बलेरै मैं ए पूत की भूखी

पैहला तो पुत्तर सूरज कहिये, सूरज तपै ए घनेरा

दूजा तो पुत्तर चंदा कहिये, चंदा बिन रात अंधेरी

तीज्जा ए पुत्तर गऊवां का पाली वो पाली नै जा सै

चोत्था ए पुत्तर घर का ए मालिक कोए घर नै साबै

पांचमा ए पुत्तर दुनियां का राज्जा वो ए दुनिया नै डाटै

बारा ए बरस मैं जाम्या ए कन्हैया बड्डी बाहूण बुला दे सास री

बोलो ए मा जाई के काम सै के काम बलाई बाहूणं

बारां ए मास मैं जाम्या ए कन्हैया यो ए उदारा ले ले

जे मां जाई मन्नै न्यूं बेरा होंदा, पांचै उदारा दे द्यूं ।"

हास परिहास के बिना तो प्रत्येक शुभ अवसर फीका लगता है । ऐसे ही एक गीत में जच्चा पति से सास आदि को बुलाने का आग्रह करती है । पति मूर्ख है और अपनी मूर्खतापूर्ण बातों से उपहास का भाजन बनता है ।

"भाज लूज अपणी मायड़ नै बुला ल्या

चाल माय घरां चरूवा फोड़न नै

न्यूं ना कहूवे मेरा बेट्टा भाई रोया

न्यू बोल चाल चरूवा धरण नै ।

भाज लूज अपणी भावज नै बुला ल्या

चाल्लो नै भावज घरां सूंठ फैंकण नै

न्यूं ना कहूवै देवर भाई रोया

न्यू बोल चाल्लो अजवण पीस्सण नै

भाज लूज मेरी सात्थण नै बला ल्या

चाल्लो नै सात्थण घरां जमावणो फैंकण नै

न्यूं ना कहूवै मेरा जीज्जा भाई रोया

न्यूं बोल चाल्लो जमावण चारवण नै ।"

जमावणा जमता है । सम्पूर्ण घर आंगन महक उठता है । पति के मुंह में पानी आ गया है । पंजीरियां मांगने पर कैसा करारा उत्तर पत्नी देती है -- द्रष्टव्य है --[1]

"मेरै उट्ठै थी पीड़ तन्नै आवै थी नींद

ठोस्सा खां ले पंजीरियां

नां द्यूं,ना द्यूं पंजीरियां

मेरा जाम्मण का मोक्का, तेरा बाज्जै था हुक्का ।

ठोस्सा खा ले पंजीरियां, नां द्यूं नां द्यूं पंजीरियां ।"

इसी दौरान दाई होल्लर जनाने आती है । राजा बरसती रात में छतरी तानकर उसे लाता है । लेकिन वापसी में कैसी चुटकी लेता है--[2]

"राजा जी ! मेंह अंधेरी री रात

चतर दाई कैसे चले एकली जी राज

दाइये काली कुत्ती दोए गैल करा हां जी हां

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 17

2- हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 132

दाईये छिन-भिन बरसै मेह, ओढ़ो थारी घाघरी, हां जी हां
गर्भावस्था में स्त्री का शरीर बेडौल हो जाता है । उसको कहीं 'तुंबड़ली'
कहा जाता है और कहीं 'हांड़डी' से उसकी तुलना की जाती है ।

"जच्चा हाय दैय्या हाय मैय्या करती फिरै
वा तो हांड़डी सा पेट घुमावती फिरै ।"

बांगरू के अतिरिक्त अन्य बोलियों के लोकगीतों में भी हास्य परक गीतों की झलक मिलती है जिनसे लोकमानस अपना मनोरंजन करता है ।

"सांप मारि सिरहाने रख लिया बिच्छू मारि बगल में
जच्चा मेरी खाना न जाने रे
दसों कनस्तर घी के खाई गयी मनो मेवा बूरा
आए गये को भूखों मारे घर ले सब कुछ कोठे में
जच्चा मेरी भोली भाली रे ।
जच्चा हमारी लड़ना न जाने
आई गई के पकड़े उतारे, कहले नाहिं कहने दे
जच्चा हमारी भोली भाली रे ।[1]"

इसी से मिलता-जुलता कन्नौजी लोकगीत प्रस्तुत है --

"जच्चा मोरी बहुते मोरी है रे ।
सांप को मारि बगल धरि सोवै, बीछी धरै सिरहाने
जच्चा मोरी मच्छर तै उरि गई रे"

जन्म संस्कार में अनुष्ठानों की विपुल मात्रा है ।

1- धूल धूसरित मणियां, सीता देवी तथा अन्य, पृ0 105-06

मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक के संस्कार के अनुष्ठान अन्यों की अपेक्षा भिन्न होते हैं। इस नक्षत्र में उत्पन्न बालक का मुख पिता तब तक नहीं देखता जब तक कि वह मूल की शान्ति नहीं करा लेता। इसके लिए सर्वप्रथम सत्ताईस खेड़ों की कंकड़ी एकत्र करता है। सत्ताईस कूवों का पानी लाता है और सत्ताईसवें दिन हलस पर बैठकर उस पानी से स्नान करता है। तत्पश्चात् तेल में बच्चे का प्रतिबिम्ब देखने के उपरान्त उसके मुख को देखता है। बच्चे को एक फूस की गोल कुण्डलाकार टाटी में से निकाला जाता है। पिता जलघट में मूसल मारकर भागता है। जो सामने आ जाता है, मूल उसी पर चढ़ जाते हैं और पहले के शान्त हो जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि मूल शान्त न करने पर बच्चे का स्वभाव क्रोधी होता है और अनिष्टकारी होता है।

" विवाह "

धार्मिक और सामाजिक नियमों से आबद्ध स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध विवाह कहलाता है । विवाह हमारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा प्रधान संस्कार है । विश्व की समस्त सभ्य और असभ्य जातियों में यह अत्यन्त उल्लास और उत्साह से सम्पन्न किया जाता है । यह हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित सोलह संस्कारों में सर्वोपरि है । मनुष्य इसी के माध्यम से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है जो समस्त गृहयज्ञों एवं संस्कारों का केन्द्र है ।

ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त मनुस्मृति में विवाह की आज्ञा दी गयी है --

"वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अवलुप्त ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ।।"[1]

(ब्राह्मण चार वेदों को, क्षत्रिय दो वेदों को और वैश्य एक वेद का अध्ययन करके विवाह करे ।)

वेदों के अनुसार अविवाहित मनुष्य का जीवन अपूर्ण है । उसके लिए यज्ञादि में सम्मिलित होना निषेध है । अतः विवाह भारतीय समाज में धार्मिक और सामाजिक कृत्य है । वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में मनुष्य के तीन ऋण माने गये हैं -- ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण । ब्रह्मचर्य एवं ऋषि ग्रन्थों के अध्ययनोपरान्त मनुष्य ऋषि ऋण से उऋण होता है । यज्ञादि सम्पन्न करने से देव ऋण का कर्ज़ चुकता है और अनुकूल वर्ण तथा गुणवाली स्त्री से विवाह करके

1- मनुस्मृति

सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण से मुक्ति मिलती है । इन ऋणों से उऋण होने के उपरान्त ही सन्यास आश्रम धारण किया जाता है । इस प्रकार विवाह का महत्व सर्वाधिक है । इसी से वंश वृद्धि होती है । "प्रजनन क्रिया में मानव ने आदिकाल से लेकर आज तक सदैव आकर्षण एवं सौंदर्य का दर्शन किया है । सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक दायित्व है ।"[1] ब्रह्मा ने भी सृष्टि की उत्पत्ति वासना से अभिभूत न होकर 'एकोऽहं बहुस्याम' की भावना से की थी ।[2]

विवाह द्वारा मनुष्य की स्थिति रहती है और उसी के द्वारा समस्त सांसारिक सम्बन्धों की सृष्टि होती है । "विवाह दो विषम लिंगी व्यक्तियों का न्यूनाधिक रूप से स्थायी सम्मिलन है जो जनमत या विधि द्वारा मान्य है ।[3] विवाह को इसीलिए बहुत महत्व दिया गया है । विवाह में वाग्दान (बरीक्षा) से लेकर कंगन खोलने और विदा गीतों तक का वर्णन आता है ।

विवाह की कई प्रथाएं पाई जाती हैं --

जैसे बहुपति प्रथा, बहुपत्नी प्रथा आदि ।

इसके अतिरिक्त कुछ लोगों में विवाह जैविकीय स्तर पर है, जैसे मुसलमानों में विवाह करीब-करीब जैविकीय स्तर पर एक समझौता है ।[4] यह प्रथा दक्षिण में 'मालाबार' में भी पाई जाती है ।

1- कन्नौजी लोकसाहित्य, सन्तराम अनिल पृ0 292

2- तैतिरीय ब्रह्मानन्द वल्ली-6

3- कैलाशनाथ शर्मा, भारतीय समाज, संस्कृति और संस्थाएँ, पृ0 184

4- कुल्लई लोक साहित्य, पद्मचन्द्र कश्यप, पृ0 81

जैसाकि पिछले पृष्ठों में विवेचित किया जा चुका है, जन्म के समय कन्या का यद्यपि अधिक महत्त्व नहीं होता, किन्तु विवाह के समय कन्या पक्ष में उल्लास एवं उत्साह तथा वेदना व करूणा दोनों की अधिकता होती है । संभवत: कन्या अपना घर छोड़कर हमेशा के लिए दूसरे घर में चली जाती है, इसीलिए ये अवसर अधिक कारूणिक होते हैं ।

विवाह मानव जीवन को नियन्त्रित करता है । डॉ0 सरोजिनी रोहतगी ने विवाह के उद्देश्य तथा कार्य बताते हुए लिखा है कि एक तो इससे स्त्री-पुरूष के यौन-सम्बन्ध का नियन्त्रण और वैधीकरण होता है, दूसरे सन्तान की उत्पति, संरक्षण, पालन तथा शिक्षण होता है और तीसरे इससे नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन होता है ।[1]

विवाह द्वारा मनुष्य की पशु वृत्तियों का नियमन और नियन्त्रण होता है । जिससे दोनों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, इहलौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति द्वारा सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है । इससे सन्तानोत्पत्ति होती है जो वंश-वृद्धि के साथ-साथ पितृ ऋण से भी मुक्ति दिलाती है । इसके द्वारा स्त्री व पुरूष में सामन्जस्य पैदा होता है जिससे पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था और सुख स्वास्थ्य तथा शान्ति की रक्षा होती है ।

मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है --

ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षसी और पैशाच ।

1- अवधी लोक साहित्य, पृ0 173

"चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् ।
अष्टा विमान्समासेन स्त्री विवाहान्नि बोधत ।।[5]
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चष्ट मोऽधमः ।।[5]

आधुनिक समाज में दैव और आर्ष विवाहों के अतिरिक्त अन्य सभी वैवाहिक प्रथाएं हिन्दू समाज में किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं ।

अच्छे शीलवान् गुणवान् वर को स्वयं बुलाकर उसे भूषण-वस्त्र से अलंकृत और पूजित करके कन्या देना ब्रह्म विवाह है ।[1] हमारे समाज में सर्वाधिक यही विवाह प्रचलित है और सर्वोत्तम माना जाता है ।

यज्ञ कार्य को सम्पन्न कराने वाले पुरोहित को सुसज्जित कन्या दान करना दैव विवाह है ।[2] आजकल ये विवाह प्रचलन में नहीं हैं ।

आर्ष विवाह में कन्या का विवाह ऋषि के साथ सम्पन्न किया जाता था ।[3] चूंकि आजकल ऋषियों का अभाव है, अतः यह विवाह प्रचलन में नहीं है ।

"तुम दोनों गृहधर्म का पालन करो" वर से यह कहकर और पूजन करके कन्यादान करना प्राजापत्य विवाह है ।[4] धनाभाव में अनेक कन्याओं का विवाह आजकल इसी पद्धति से होता है, जिसमें परिवारजनों के शुभाशीष से

1- आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ।।§27§
2- यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलङ्कृत्यैसुतादानं दवं धर्मं प्रचक्षते ।।§28§
3- एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्चते ।।§29§
4- सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ।।§30§
5- मनुस्मृति, तृतीय अध्याय, श्लोक, 20-21

कन्या ससुराल जाती है ।

कन्या के विवाह के एवज में वर-पक्ष से धन लेना आसुर विवाह है ।[1] धन के प्रलोभन में माता-पिता ऐसा करते हैं । यह अनेक स्थलों पर मिलता है ।

वर एवं कन्या स्वयं अपनी मर्जी से अपना विवाह करें, यह गांधर्व विवाह की श्रेणी में आता है ।[2] 'कामसूत्रानुसार' यह विवाह अत्युत्तम है । पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावस्वरूप आधुनिक युग में इस विवाह का प्रचलन अधिक है ।

मारपीट अथवा जबरदस्ती रोती-बिलखती कन्या को ले जाकर बलपूर्वक विवाह करना राक्षसी विवाह के अन्तर्गत आता है ।[3] इसका प्रचलन भी अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है ।

पैशाच विवाह अपराध की श्रेणी में आता है । निद्रा मग्न, मदमाती अथवा पागल कन्या के साथ एकान्त भोग करना पैशाच विवाह है ।[4]

उपर्युक्त विवाहों में प्रारम्भिक चार प्रकार के विवाह श्रेष्ठ माने जाते हैं और अन्तिम चार प्रकार के निकृष्ट विवाहों की श्रेणी में आते हैं ।

बांगरू भाषी हरियाणा प्रदेश में विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मनाया जाता है । इस अवसर पर अनेक पौरोहित्य और लौकिक

1- ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छान्धादासुरो धर्म उच्यते ।। (31)

2- इच्छायाऽन्योन्यसंयोग: कन्यायाश्च (वरस्य च ।
गान्धर्व: स तु विज्ञेयो मैथुन्य: कामसम्भव: ।। (32)

3- हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरूच्यते ।। (33)

4- सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहनां पैशाचश्चष्टमोऽधम: ।। (34)

कृत्यों का सम्पादन होता है । स्त्रियां अपने कोकिल कण्ठों से अपनी मधुरतम कोमल भावनाओं को लोकगीतों में व्यक्त करती हैं जिससे वे सरस हो उठते हैं । इनमें परम्परागत रूढ़ियों, नैसर्गिक भावों और विभिन्न संस्कारों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है । मानव चूंकि एक सामाजिक प्राणी है, अतएव एक से दो होने की उसकी भावना स्वाभाविक है । अतः विवाह प्रत्येक जाति एवं वर्ग में आवश्यक है । इस सामाजिक कृत्य की पूर्ति विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा की जाती है । इस अवसर पर गाये जाने वाले विविध लोकगीतों में लोक-जीवन की मधुर झांकी अभिव्यंजित होती है ।"ये वर वधू की सुखद कल्पनाओं को अंकुरित और विकसित करते हैं और इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के प्रति भावात्मक लगाव को जन्म देते और दृढ़ करते हैं ।"[1]

विवाह के गीतों का अपना पृथक् अस्तित्व है । इनका फलक अत्यन्त विस्तृत है । क्योंकि यह एक परिवार नहीं अपितु समस्त कुटुम्ब अथवा कहिये समस्ते जाति के आनन्द का अवसर होता है । इसकी व्यापकता अपने विस्तार में समस्त सभ्य-असभ्य, जाति वर्ग आदि को समेटती चलती है ।

विवाह संस्कार मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । हर प्रदेश के रीति-रिवाज भिन्न-भिन्न होते हैं । बांगरू भाषी क्षेत्र में ये परम्पराएं अनन्त काल से चली आ रही हैं । इस अवसर पर सभी जातियों में गीत गाने की प्रथा प्रचलित है । विवाह गीतों का विस्तार वधू रोकने से आरम्भ होता है और वधू के ससुराल से लौट आने तक चलता है ।

1- कन्नौजी लोकसाहित्य, डॉ० सन्तराम अनिल, पृ० 292

विवाह संस्कार का शुभारम्भ सगाई से होता है । विवाहोपयुक्त कन्या की आयु होते ही पिता उपयुक्त वर की तलाश आरम्भ कर देते हैं । प्राचीन समय में यह कार्य नाई-ब्राह्मण द्वारा सम्पन्न किया जाता था, किन्तु अब यह कार्य परिवार के पुरुष स्वयं सम्पन्न कर लेते हैं । उपयुक्त वर की खोज करना अत्यन्त कठिन कार्य है । इसी कारण कई अनमेल विवाह होते हैं। एक हरियाणवी बाला समस्त लोक-लाज छोड़कर पिता से विनती करती है कि -

"बाबल देस जान्दा परदेस जाइये मेरी जोड़ी का वर ढूँढ़िये"

पिता आश्वासन देते हैं --

"हंस खेल ए तू बाबल की बेट्टी, टोह्यों सै फूल गुलाब का"

सगाई में सर्वप्रथम गोत्र का ध्यान रखा जाता है । वर एवं कन्या के स्वयं के गोत्र, मां, नानी और दादी के गोत्र को छोड़कर अन्य गोत्रों में सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं । दोनों पक्षों की सहमति के उपरान्त निश्चित तिथि को नाई - ब्राह्मण के हाथ नारियल भेजा जाता है । वर के घर चौक पूर कर उस पर लोटा भर जल रखा जाता है । और पाटे पर वर को बैठाकर कन्या के पिता अथवा दादा उसके माथे पर हल्दी, चावल और रोली का टीका लगाते हैं, और झोली में नारियल देते हैं । आम तौर पर नारियल के साथ रूपये भी दिये जाते हैं । इस रस्म से नाता पक्का हो जाता है । कन्या पक्ष के ब्राह्मण एवं नाई को नेग प्रदान किया जाता है । इसके समानान्तर ही स्त्रियों की लौकिक पद्धति लोकगीतों द्वारा सम्पन्न होती हैं --

"सूई सार की ताग्गा पाट का पोया
बेट्टा टीकिये (पिता का नाम) का कहिये
सूई सार की ताग्गा पाट का पोया
पोत्ता टीकिये (दादा का नाम) का कहिये "

इस गीत में क्रमशः परिवार के सभी सदस्यों का नाम सम्मिलित होता है ।

सगाई के उपरान्त साहों[1] के दिनों में विवाह सम्पन्न किया जाता है । कन्या पक्ष का ब्राह्मण पत्रा देखकर और वर व कन्या की जन्म कुण्डलियां मिलाकर तिथि निश्चित करता है । नाई द्वारा इसकी सूचना वर के घर भेज दी जाती है । इसे 'ब्याह भेजना' कहते हैं । इस अवसर पर देई-देवताओं के गीत गाये जाते हैं । तत्पश्चात् टेवा अथवा लगन भेजा जाता है । नाई टेवा लेकर पन्द्रह अथवा इक्कीस दिन पहले जाता है । कन्या-पक्ष का ब्राह्मण भावी वर-वधू के बान निकालता है । बान के दिन पांच, सात,नौ, ग्यारह होते हैं। वर की अपेक्षा कन्या के बान के दो दिन कम रखे जाते हैं । श्वेत पत्र पर तेल, बान, फेरे आदि के सभी कार्यक्रम लिखकर उस पर हल्दी एवं चावल के छींटे लगाकर उसे मौली से बांधा जाता है, जिसे कन्या पक्ष का ब्राह्मण वर पक्ष के घर शादी से 15 अथवा 21 दिन पहले ले जाता है । वहां से वर पक्ष उसे कन्या की तील,फल,मेवे,मिठाई आदि देकर और ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करके विदा किया जाता है । इस अवसर पर देवी देवताओं के भक्ति-परक गीत गाये जाते हैं ।

टेवा आने के उपरान्त धूम-धाम से विवाह की तैयारियां आरम्भ हो जाती हैं । वर-कन्या की मां अपने पीहर में भाइयों को भात न्यौतने जाती हैं । निकट सम्बन्ध की स्त्रियां भी उसके साथ जाती हैं । बहन अपने भाइयों

1- वह अवधि, जिसे विवाह के लिए शुभ माना गया है ।
देवउठणी ग्यारस (कार्तिक) से बढ़लिया नौमी (आषाढ़) तक ।

को गुड़ की भेली, चावल और एक रूपया देती है । भात न्यौतने वाले दिन सारी रात स्त्रियां गीत गाती हैं[1] --

"क्यां ते नूंतूं बाबल राजा, क्यां ते काका ताऊ
क्यों ते नूंतूं जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
भेल्ली नूंतूं बाबल राजा, डलीए काका ताऊ
मिश्री के कूंजे जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
क्यां चढ़ आवै बाबल राजा, क्यां चढ़ चाचा ताऊ
क्यां चढ़ आवै जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
अरथां आवै बाबल राजा, बहली काका ताऊ
हात्ती होदै जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
के बरसैगा बाबलराजा, के बरसैगा काका ताऊ
के बरसैगा जाम्मण जाया बीर, जिसतैं मैं ऊजली
रोक रपैय्या बाबल राजा, टकाए काका ताऊ
सुन्ना र मौर जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
कित उतरैगा बाबल राजा, कित उतेरैगा काका ताऊ
कित उतरैगा जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
परसी उतरै बाबल राजा, पौली काका ताऊ
मैहला मैं उतरै जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
के जीम्मैण बाबल राजा, के जीम्मैगा काका ताऊ
कै जीम्मैगा जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 149

दूद बतासा बाबल राजा, झिनवैं काका ताऊ
सरस मलोदा जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली
के रज बरसै बाबल राजा के रे काका ताऊ
हेरी के रे बरसै जाम्मनजाया बीर जिसतै मैं ऊजली
रुपये री बरसै बाबल राजा अठन्नी चाचा ताऊ
मोहर असरफी जाम्मण जाया बीर जिसतै मैं ऊजली
बरस लिया बाबल राजा, बरस लिया काकाताऊ
हेरी मिर डाट्या ना डटता जाम्मण जाया बीर, जिसतै मैं ऊजली"

बहन भाई के प्रेम का उपमान विश्व में अनुपलब्ध है । भाई पर बहन को गर्व है । भाई से उसे हर प्रकार का सहारा मिलता है । पुत्र अथवा पुत्री के विवाह में वह भात न्यौतने गई है । समस्त प्रकृति उसका स्वागत करती है --

"ओ पिया आई आ बाप मेरै के बाग कोयल सब्द सुणाइया
ओ पिया आई आ बाप मेरै की बणी, बणी झंगारै मोरणे
ओ पिया आई मैं बाप मेरै के गोरै, गोरै गऊवां छाइया"

भात न्यौत कर बहन लौटती हैं । गीत गाती हुई स्त्रियाँ बहन को चढ़ाने आती हैं --

"बीरा थम दाम्मण भल ल्याइये, चुंदड़ी पर रतन जड़ाइये
म्हारा रिमक-झिमक भात्ती आये, बेस्सर थमभल ल्याइयो
झुम्मर पर रतन जड़ाइयो, म्हारा ----------
चुड़लो थम भल ल्याइयो, बोरलै पर रतन जड़ाइयो"

वर और कन्या पक्ष में बान आरम्भ हो जाते हैं । बान से अभिप्राय उस अवधि से है, जब उनके तेल चढ़ता है । चौक पूर कर उस पर चौकी

रखी जाती है । सात हल्दी की गाँठ और जौ लिये जाते हैं । सात सुहागणों के हाथ में कलावा बाँधा जाता है । सात मूसलों में कलावे बाँधे जाते हैं । ऊखल में जौ डाले जाते हैं और सात सुहागण क्रम से सात-सात बार उसे कूटती हैं । ऊखली और मूसल विवाह की समाप्ति तक रख दिये जाते हैं। इसके पश्चात् प्रतिदिन सन्ध्या समय कन्या अथवा वर को तेल-उबटन मला जाता है । इस अवसर पर पास-पड़ौस की सभी स्त्रियां सम्मिलित होती हैं । सभी अपने साथ थोड़ा-थोड़ा अनाज लाती हैं । वर को पटड़े पर बैठाया जाता है । साथ में छोटा कँवारा लड़का बिठाते हैं, जिसे 'विन्नायक' कहा जाता है । उबटन जौ के आटे में हल्दी और तेल मिलाकर बनाया जाता है । इसी समय गडरणी दो कांगन-डोरे बनाकर लाती है जिसमें एक लोहे का छल्ला लाख का छल्ला, कौड़ी और कंद के टुकड़े में बंधे नून-राई होते हैं । काली ऊन के डोरे में इनको पिरोया जाता है जिसे वर की कलाई में बांधते हैं । सात सुहागनें वर के हल्दी और तेल चढ़ाती हैं । उबटन-स्नान के साथ-साथ स्त्रियां अपने सुमधुर कण्ठों से गीत गाती हैं --

"काहे कटोरी में उबटणा, काहे कटोरो में तेल
हथ लाड्डो बैट्ठी मट्टणा
सुन्ने कटोरी में बैट्टणा, रूपा कटोरी में तेल
हथ लाडो बैठी मट्टणा
जौ ए चणे का मट्टणा, राय चमेली का तेल,
हथ लाडो बैट्ठी मटटणा
मैल झड़ै, झड़-झड़ पडै, नूर चढै तेरे आण, हथ--
आ मेरी अम्मां देख ले, तुम देख्यां सुख होय

हथ लाडो बैट्ठी मट्टणा

आ मेरे बाबल देख ले, तुम देख्या सुख होय

हथ लाडो ---------- ।"

इस प्रकार इसमें सभी सम्बन्धियों के नाम लिए जाते हैं । इसके पश्चात् स्नान कराया जाता है । स्नान के लिए वर को बैठने के लिए पीढ़ा चाहिए, पहनने के लिए कपड़े चाहिए । इसी से सम्बन्धित गीत प्रस्तुत है --

"कहिये री उस खाती के लड़के नै, खात्ती के लड़के नै

चौकी तो ल्यावै म्हारे लाल नै

चौकी तो ल्यावै म्हारे राय रतनसिंग नै, छैली बदनसिंग नै

हर मथरा जी के लाल नै

कहये री उस कुम्हरे के लड़के नै, कुम्हरे के लड़के नै

कुंडा तो ल्यावै म्हारे लाल नै

कुंडा तो ल्यावै म्हारे राय रतनसिंग नै छैल बदनसिंग नै

हर मथरा जी के लाल नै

कहिये री उस दर्जी के लड़के नै, दर्जी के लड़के नै

कपड़े तो ल्यावै म्हारे लाल नै

कपड़े तो ल्यावै म्हारे राय रतनसिंग नै छैल बदनसिंग नै

हर मथरा जी के लाल नै

कहिये री इस चमरे के लड़के नै चमरे के लड़के नै

जूते तो ल्यावै म्हारे लाल नै ----------

कहिये री उस मामा जी भड़वे नै, मामा जी भड़वे नै

जामा तो ल्यावै म्हारे लाल नै ---------- ।

कहियै री उस म्हारे समधी नै, बनड़ी तो ब्यावै म्हारे लाल नै

बनड़ी तो ल्यावै म्हारे राय रतनसिंग ------------।"

स्नान का दृश्य बड़ी हंसी-ठिठोली का होता है। भाभियों को इस अवसर पर सींटणे द्वारा उपहास का पात्र बनाया जाता है --

"म्हारे आंगणै चीक्कड़ ए किनै ढोल्या पाणी
म्हारा हतलाडा न्हाया ए उनै ढोल्या पाणी
आई झण्डू की बू दै पड़ी ए उंकी टांग नताणी
पड़ी ए पड़ी ललकारे ए जणो ढल्लो राणी
मोरी मैं त लिवकड़ बे जणु साम्मण का पाणी"

शैली से मुंह चीता जाता है जिसे 'मरमट' कहते हैं। इस अवसर पर निम्न गीत गाने का प्रचलन है[1]--

"यो मरमट किन चीत्या
दूर देसां तै म्हारे बाहुण भ्रुवा आई
यो मरमट उन चीत्या
म्हारे घर मैं एक छन्दलिया भाभी
यो सुरमा उन सार्‌या
म्हारे गाम मैं इक नाई की बसै थी
यो मरमट उन चीत्या"

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 23

मरमट के उपरान्त बहन अथवा भुआ आरती करती हैं । स्त्रियां आरता गीत गाती हैं --

"इक दूर देसां तै मेरो बूआ ए आई, करिये सुहागण आरता
एक दूर देसां तै मेरी बाहण ए आई कर ए मा की जाई आरता
मैं कर ए ना जाणूं कराय ना जाणूं क्युक्कर तीजूं बैरण आरता
एक हात लोट्टा गोद बेट्टा करिये सुहागण आरता
एक हात बीरा गोद लीरा करिये सुहागण आरता
एक हात कसीदा गोद भतीज्जा, करिये सुहागण आरता
इक आरता की गाय ल्यांगा और अलल बछेरियां
गाय का हम दूद पीवां बछेरी म्हारै पीव चढ़ै
वा इतणा सा लेके घर बी चाल्ली दे मेरी मा की जाई आसीस
थम तो लदियो र बदियो म्हारी मा का जाया, फलियो कड़वा
नीम ज्यूं ।"

इस गीत की अन्तिम पंक्तियों में हास-परिहास द्वारा शुद्ध मनोरंजन किया जाता है । सभी हंसती हैं --

'इक हात तावक्कू गोद बाप्पू करिये सुहागण आरता
इक हात कैंची गोद चाच्ची करिये " " ।
इक हात जुआ गोद बुआ करिये " " ।"

तेल और उबटन के वर और कन्या दोनों पक्षों में प्राय: समान गीत गाये जाते हैं । अंतर केवल इतना होता है कि वर के गीतों में 'बन्ना' या 'लाडा' शब्द का प्रयोग होता है जबकि कन्या में 'बनी' या 'लाडो' शब्द का ।

बान से एक दिन पूर्व विवाह वाले घर में गेरू से थापे लगाये जातेहैं । लड़के को एक छड़ी दी जाती है और कन्या के दोनों हाथों में सुहाग चूड़े भी उसी दिन पहनाए जाते हैं ।

विवाह से एक दिन पहले रतजगा मनाया जाता है जिसमें रात्रि जागरण होता है । वर एवं वधू दोनों पक्षों में इसका समान महत्त्व होता है। सारी रात गाना बजाना होता है । इन गीतों का विषय विस्तृत होता है । ये देवी देवताओं के गीतों से आरम्भ होते हैं और विवाह के समस्त कृत्यों को समेटते चलते हैं । सर्वप्रथम गृहाधिष्ठात्री देवी का स्मरण किया जाता है । इस अकेले गीत में सभी आवश्यक देवी देवताओं के नाम आ जाते हैं, अतः इसे प्रतिनिधि गीत माना गया है --

"पांच बतास्से पानां का बिड़ला ले माता पै जाइयो जी
जिस डाली पै म्हारी माता बैट्ठी वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पानां का बिड़ला ले देब्बी पै जाइयो जी
जिस डाली पै म्हारी देब्बी बैट्ठी वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पानां का बिड़ला ले हनूमान पै जाइयो जी
जिस डाली पै म्हारे हनूमान बैट्ठे वा डालो झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पानां का बिड़ला ले पितरां पै जाइयो जी
जिस डाली पै म्हारे पितर बैठे वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पानां का बिड़ला ले सती राणी पै जाइयो जी
जिस डाली पै म्हारी सती राणी बैट्ठी वा डाली झुक जाइयो री

तत्पश्चात् ~~इसके उपरान्त~~ मेंहदी लगाने की विधि सम्पन्न की जाती है । मेंहदी हरियाणा प्रदेश में अत्यन्त शुभ और मांगलिक मानी गयी है । प्रत्येक

शुभ अवसर और त्यौहार पर यह लगाई जाती है । स्त्रियां अपने हाथ और पांव दोनों में मेंहदी लगाती हैं । यहां तक कि मेंहदी का अधिक रचना पति प्रेम की अधिकता का द्योतक माना जाता है [1] --

"मैंदी बोई आगरा जी कोए रंग पाट्या अजमेर
मेंहदी रंगभरी जी
मैंदी सींचण मैं गयी जी कोए छोट्टा देवर साथ, मेंहदी रंगभरी जी
मैंदी घोल्लण मैं गयी जी कोए घोर-जिठाण्या का साथ, मैंदी -----।
मैंदी लावण मैं गयी जी कोए छोट्टी नणदल साथ, मैंदी ------- ।
छोट्टी बूझे ए बड़ली थम कहो रात की बात, मैंदी किसीक रची जी राज
मैंदी तो मन्नै लाय लई जी तू आई ना आदी सी रात, मैंदी अधिक बणी जी राज
घोर जिठाणियां सारी ए आई तूं ना आई आदी रात, मैंदी ------ ।"

एक अन्य स्थल पर माता मेंहदी को अधिक रंगयुक्त बनाने के लिए हिरणी का दूध उसमें मिलाती हैं ।

"मेरी मैंदी के औड़े-चौड़े पात रे बीरा वारी वारी ज्यां
मैं त पीसूंगी चकले के पाट रे बीरा वारी वारी ज्यां
मैं त घोलूंगी हिरणी के दूद रे बीरा वारी वारी ज्यां
मैं त लाऊंगी (वर का नाम) के हात रे बीरा वारी वारी ज्यां ।"

रतजगा के गीतों का फलक चूंकि विस्तृत होता है, इसलिए सभी प्रकार के गीतों का समावेश इनमें होता है । कन्या स्वयं एक गीत में अपने दादा से वर ढूंढने का आग्रह करती है --

---

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 10

"थाम्बी के ओड्डे म्हारी हथलाड्डो बोल्लै, बाबा हो परणाओ ना
इब परणावां म्हारी सदा ए सुहागण आण दे ए बणजारयानै
ये बणजारे गिहूं भर ल्या रे, लाड्डो का ब्याह रचावण नै"

रतजगे के गीतों में सबसे अधिक जकड़ी नामक गीत गाये जाते हैं। मृत्यु के अतिरिक्त सभी अवसरों पर इनके गाने का प्रचलन है। इनका स्वरूप प्रबन्धात्मक भी होता है। आश्चर्य और हास्य रस का पुट भी इनमें मिलता है। आश्चर्य परक एक गीत प्रस्तुत है -

"झूठ नहीं बोल्लूंगी झूठ की सै म्हारै आण
सौन्नीपत कीसरड़क ऊप्पर मिंड्ड-क बांट्टै बाण
बिल्ली तो म्हारै दूद बिलोवै
कुत्ता आवै शीत लेण सिर पै धरकै छाव
चिड़िया तो म्हारै करै लावणी मोर दांती दे
झूठ नहीं बोल्लूंगी म्हारै झूठ की सै आण
कछुवा तो म्हारै म्हैंस चरावै पाली बणकै
मोंडको तो रोट्टी लेज्या बहू बण कै
पहाड़ पर तैं कीड़ी उतरी नौ मण पी ग्यी तेल
झूठ नहीं बोल्लूंगी है सिर पर धररी रेल
मरी पड़ी कीड़ी मैं नौ मण होग्या बोज
घीसणियां पै घिसदी कोन्या घीस्सण चले चमार
सौ जोड़े तो जूती बणगी सांट्टे कई हजार

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 177

कीड़ी तो या दिल्ली चाल्लो सिर पर धरली सुन्नै की ईंट

सैहर का बाणिया न्यूं उठ बोल्या लट्ठा लेगी या के छींट।"

जकड़ी के गीतों में हास्य रस के गीतों का भी समावेश होता है। बागरू प्रदेश में जाटों की अधिकता है। उन्हीं को आलम्बन बनाकर एक गीत लोक कवि ने अपनी कल्पना द्वारा रचा है[1] --

"मन्नै तै पिया गंगा न्हुवादे जारी सै संसार

हां ए जा री सै संसार

तन्नै तो गोरी क्युक्कर न्हुवाद्यूं हात्तड़ पड़ री म्हैंस

म्हैंस, हां ए हात्तड़ पड़ री म्हैंस

खूंट्टी पै मेरा दाम्मण लटकै चुंदड़ी छापेदार

हां ए चुंदड़ी छापेदार

डब्बे मैं मेरी नाथ धरी सै पैहर काढ्यो धार

हां ए पैहर काढ़्यो धार

बाहर तैं इक मोड़िया आया, बेब्बे भिक्षा डाल

हां ए बेब्बे भिक्षा डाल

बेब्बे तो तेरी न्हाण गयी सै जीज्जा काढ़ै धार

हां ए जीज्जा काढ़ै धार

खुंटा पाड़गी जेवड़ा तुड़ागी भाजगी सै भैंस,

हां ए भाजगी सै भैंस।

डंडा लेकै पाच्छै होलिया लैण गया था भैंस,

हां ए लैण गया था म्हैंस

1- हरियाना का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 178

गात्ती खुल ग्यी पल्ला उडग्या मूंछ फडाके लै,

हां ए मूंछ फड़ाक्कै लै

गलियां मैं या चरचा हो री, देखी मुंच्छड़ नार,

हो ए देखी मुंछड़ नार

कोट्ठे चढ़के रूक्के मारे कोई मत भेज्जो न्हाण,

हां ए कोई मत भेज्जो न्हाण ।"

मां ने बड़े उत्साह से पुत्र का विवाह रचाया है कि बहू आकर उसकी सेवा सूश्रुषा करेगी । किन्तु बहू के आगमन के उपरान्त तो बेट्टा भी उसकी ओर से मुंह फेर लेता है । मां पुत्र को अपने पास बैठाकर उसके जन्म से विवाह तक के उन कष्टों का ब्यौरा देती है, जो इस दौरान मां ने उठाए हैं --

"बहू अर बेट्टा मेरा न्यूं बतलाएं ओ रामा

यो रै पुराणा चरखा कद रै डिगैगा ओ राम

इक बर लोबी बेट्टा मेरे धोरे रै आइये

मेरी तो बीत्ती रै बेट्टा सारी सुणके जाइये

जिस दिन लोबी बेट्टा पेट पड़्या था ओ रामा

अन्न झल्या ना मेरै पाणी झल्या ना ओ रामा

जिस दिन लोबी बेट्टा जलम लिया था ओ राम्मा

काढ़ कफ़न मनै धर्‌या ए सिर्‌हानै ओ रामा

जिस दिन लोबी बेटा होम कर्‌या ओ रामा

दादी अर बूआ तेरी सारी सिंगारी ओ रामा

जिस दिन लोबी बेटा होई ओ सगायी

भर भर बोइये मन्नै बांइडी रे मिठायी
जिस दिन लोबी बेटा ब्याए रचाया
ताऊ र ताए तेरे सारे मनाए ओ रामा ।"

रतजगे गीतों के अन्तर्गत प्रबन्ध कथात्मक गीतों का भी समावेश होता है । दानी राजा हरिश्चन्द्र की कथा लोक में अति प्रसिद्ध है । अपने वचन के पक्के हरिश्चन्द्र को कौन-कौन से कष्ट उठाने पड़े, निम्न लिखित गीत इसी प्रसंग का है --

"भिखा पड़ी थी हरिश्चन्दर मैं कासीपर नै चाल्या ए
जा के गली मैं रूक्का मार्‌या कोय तो मनै नौक्कर ला ल्योए
मैं गाम छोड़ के आया
इतणे मैं इक राजा आया उसनै नौक्कर लाया ए
झाड़ू पिंज्जर दिये हात मैं गली सवेरण भेज्या ए
कदे तो मन्नै राज करे थे गली सहेरणी पड़ग्यी ए
इतणे मैं इक राणी आई कोय मनै बांदी ला ल्यो ए
इतणे मैं इक राणी आई उसनै बांदी लाई ए
पैं सेर पक्का धर्‌या पीसणा साज्जै पीस्सण लाई ए
कदे तो मन्नै राज करी थी ए इब चूण पीसणा पड़ ग्या ए
इतणे मैं उंका लड़का आग्या मां मनै रोट्टी पो दे री
बेट्टा रै टूंक्की डट के खाइये मेरा थोड़ा पीसणा रै ग्या ए
इतणे मैं वा राणी आगी लाल बाग मैं जाइये रे
दो फूल तोड़के ल्याइये बाग तैं चइयैं मनै जरूरी ए
लड़के नै तै डाल झुकाया नाग्गण नै डंक चलाया ए

इतणै मैं वो माली बोल्या चीर पाड़ पै थयाया ए
राणी ए मेरी मां नै कहियै तेरा लाल सरफ नै खाया ए
के पीस्सै सै ए बांदी ए तेरा लाल सरफ नै खाया ए
ठा लड़का बाबा धोरै आई बाबा जी लड़का देखो जी
सवा रूपिया धरर दे री राणी जिब तनै जतन बतावूं रे
सवा रूपिया बाबा ल्याऊं कड़े तै मेरै पास इकन्नी कोन्या ए
आछा चीर पाड़ राणी नै लड़के को उठवाया ए
लाल मेरा तो बैट्ठा होग्या ईसबर नै मेहर करी सै
कदै तै हमनै राज करे थे बड़े दुःख सैहणे पड़ ग्ये ए।"

राजकुमार रजमल और गौरा का प्रसंग जनमानस में अपने अनोखे संबंध के कारण विख्यात है। राजकुमार रजमल अपनी छोटी बहन से ही विवाह करना चाहता है। सगे-सम्बन्धी उसे समझाते हैं, किन्तु वह अपनी हठ नहीं छोड़ता। विवाह निश्चित होता है। गौरा अपने सत् के बल पर आत्मदाह कर लेती है[1]--

"एक राजा कै बेबे सात पुत्तर था
सात्तां बिचालै बेबे दो ए बाहण थी
इक पीस्सै री इक रोट्टी बी पोवै
पोय पोय वा लेके बी चाल्ली
छऊं भाइयां नै रोट्टी बी जीमी
नई जीम्मी मेरै रजमल भाई

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 179

के बेट्टा तेरै ताप चढ्या सै, के बेट्टा तेरै सिर मैं दरद है

ना' बाबू मेरै ताप चढ्या सै ना बाबू मेरै सिर मैं दरद है

फेरा दिवा दे बाबू गोरा बाहूण है तै

न्यूं ना सोच्चै रजमल हुई ना जगत् मैं ।

हंस हंस ते रजमल न्हाण संजोवै

रो रो कै वा रजमल न्हाण संजोवै

हंस हंस कै रजमल कपड़ा बी पैहरै

रो रो कै वा रजमल कपड़ा बी पैहरै

हंस हंस के वा रजमल पट्टा बाहवै

रो रो के वा गोरा सीस गुंथावै

हंस हंस के रजमल घोड़ा पै बैठ्या

रो रो के वा रजमल अरथा मैं बैठी

एक डग चाल्या रजमल दोय डग चाल्या

एक डग चाली गोरा दो डर चाली

तीजी पै मरी ए तिसाई ओ राम

ना इत कूआ ना इत जोहड़, कितल्यावूं जल भर झारी ओ राम

फाटगी धरती समा गयी गौरा

खड़्या ए लखावै वो रजमल भाई

तेरी तो बेट्टी बापू सत् की निकली, सत की निकली

फट गयी धरती समा गयी गौरा, समा गयी गौरा"

अनमेल विवाह का प्रचलन कम या अधिक सर्वत्र देखने को मिलता है । हरियाणा अपवाद नहीं है । इस गीत में अनमेल विवाह के पक्ष में दलील

दी गयी है[1] --

"मा मेरी री कर सोलह सिंगार बूढ़े की सेंजा पै गयी
ए मेरी मा
ज्यानी मेराओ पल्ला उछाड़ कै देख सिरहाणै
खड़ी पदमणी ओ म्हारा श्याम
गोरी म्हारी ए डगमग हाल्लै नाड़, गोड्या मैं पाणी
पड़ रह्या ए म्हारी नार
माय मेरी ए मरूंगी जहर विष खाए
बूढ़े नै बेट्टी क्यूं दई ए मेरी मा
गोरी म्हारी ए छैल अड़े अड़े बोल ना बोल
कदे तो कबड्डी खेलता म्हारी नार
गोरी म्हारी ए छैल तो जावै परदेस
बूढ़ा तो सोवै सेज मैं ए म्हारी नार
ज्यानी मेराओ, घर होती छैला मार एकली
मैं तो सो जाती ओ म्हारा श्याम
गोरी म्हारी ए छैला की हाडै बाझ
बूढ़े के टाब्बर खेलैं सै ए म्हारी नार
गोरी म्हारी ए दमड़ा का लोबी थारा बाप
माया की लोबण मायड़ी ए म्हारी नार"

पिता ने अपनी राय में उत्तम वर खोज कर पुत्री का विवाह किया लेकिन पुत्री को उस काले वर से सख्त चिढ़ है। वह उससे छुटकारा पाने के उचित अवसर की खोज में रहती है।

"हम काले से ब्याहे री नणदिया
मेरै पिछोक्कड़ बाजार लगत है

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 178

काले नै बेच्चण जाय री नणदिया
हम काले से ब्याहे री नणदिया
काकड़ी बी बिक गयी, खीरे बी बिक गये
काले को कोई बी ना लेवे नणदिया
हम काले से ब्याहे री नणदिया
मेरे पिछोक्कड़ गंगा बहत है
मैं काले नै डोब्बण जाऊँ री नणदिया
डोब-डोब मैं घर नै आई
पाच्छे-पाच्छे काला मरकदा आया री नणदिया
कोट्टे अन्दर सात कोठड़ी
काले नै मूंदण ज्याऊँ री नणदिया
बरसां पाच्छै मिल्या बालमा
काले से गोरा होग्या री नणदिया
हम काले से ब्याहे री नणदिया।"

जब नणद को ज्ञात होता है कि उसकी भाभी को भाई पसन्द नहीं है तो वह स्वयं उसे ठिकाने लगाने जाती है। उसे क्या पता कि भाभी की घृणा अब समाप्त हो चुकी है। बहन जब कालिये को लेकर चलती है तो भाभी उसकी मिन्नतें करती है कि उसे छोड़ दो, क्योंकि उसके बिना मेरा जीवन सूना है। बांगरू बोली में यह प्रसंग सरस बन पड़ा है --

"कालिये नै डबोवण चाल्ली मेरी नणदी
छोट्टी सी बाल्टी डुब डुब करदी
कालिया ना डुब्बै डुब्बै मेरी नणदी
कालिये बिना जग सूना मेरी नणदी

बन्ना अथवा बन्नी गीतों के बिना रतजगा सूना है । कन्या द्वारा एक गीत में आदर्श ससुराल की कल्पना की गयी है । लोक में आदर्श राम है, अतः कन्या भी राम-सा वर और ससुर दशरथ जैसा चाहती है --

"तेरा दादा ए खड़्या हथ जोड़ लाडो है कुछ माँग लिये
मेरी सीता सी ढूंढी सास ससुर मेरा दसरथ सा
मेरा बाल्लम सिरी भगवान् छोट्टा री देवर लिछमन सा
अजुध्या सी नगरी जै राज रजा"

लाडो को परिवारजन ससुराल में सलीके से रहने की सलाह देते हैं[1] --

"मैं समझाऊँ समझ मेरी लाड्डो अपणा धरम निभाणा है
भाई भतीजे तेरे आड़े रैहजा किसनै रो के सुनाणा है
जोहड़ बिराणा कुंआ बिराणा नीची निजर लखाणा है
बारी सोणा बखते उठणा यो ए परण निभाणा है ।"

कुछ गीतों में विवाह की विभिन्न तैयारियों का वर्णन होता है । घर सजाया जाता है, अनेकविध पकवान बनते हैं और चतुर्दिक् खुशी का वातावरण व्याप्त हो जाता है ।

"दाद्दे मेरै के च्यार ओबरियां च्यारूं ते जगमग होय रही
पैहली ओबरी दादा जलम लिया था
दूजी में टीका कराइयां
तीजी ओबरियां लाडो लगन लिखाया
चौथी में ब्याय रचाइयां ।"

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 186

पुत्री के विवाह में जिस प्रकार बन्नी अथवा लाडो गाने का प्रचलन है उसी प्रकार पुत्र-विवाह के अवसर पर `बन्ना` गाने का प्रचलन है। इसके विभिन्न विषय होते हैं, जैसे वर का श्रृंगार, घोड़ी का श्रृंगार, घुड़चढ़ी का वर्णन, घर की स्त्रियों का उल्लास आदि। निम्न गीत में वर के श्रृंगार का वर्णन है।

> "तेरे गल मैं रे सुन्ने की माला सजी बनड़े
>
> तेरी दाद्दी रै घोड़े कै पीच्छै खड़ी रे बनड़े
>
> वा तै गावै रे राग सुथरे समज बनड़े"

लोकगीत युग के प्रभाव से अछूते नहीं रहते। सायकिल चलाने वाले बन्ने को चेतावनी दी गयी है कि वह साइकिल न चलाया करे। अन्यथा उसकी नाजुक कमर बल खा जायेगी --

> "साइकिल का चलाणा छोड्डो रे बने
>
> तेरी पतली कमर बल खा ज्यागी
>
> दादा की गलियां ना जाइयो बना
>
> तेरी दादी निजर लगा देगी।"

प्रातःकाल गाये जाने वाले गीतों में `दांतुन` नामक गीत मुख्य है। यशोदा अपनी पुत्रवधु रूक्मणि से दांतुन मांगती है। उसके न देने पर अपने पुत्र से इसकी शिकायत करती है। परिणामतः कृष्ण उसे जंगल में छोड़ आते हैं। कुछ दिनों के उपरान्त वे उसे पुनः ले आते हैं। इतने दिनों के उपरान्त राधा आई है, किन्तु यशोदा का क्रोध अभी भी शान्त नहीं हुआ। राधा-यशोदा के रूप में कवि ने लौकिक सास-बहू का चित्रण किया है। प्रस्तुत है गीत-

> "रूक्मण उट्ठो नै होई ए सुबेर
>
> दांदल ल्यावो हरियल जाल की

सास्सड़ म्हारै पै तो उठ्या ए न जाय

दांतल आवै ना हरियल जाल की

बहुअड़ ओछै घरां की सै धीय

यो के जाणै सास्सड़ की सार नै

माता जावूंगा गंगा जी कै न्हाण,

दांतल ल्या द्यूं काच्चे केले की

बेट्टा वा दांतल रूकमण नै द्यो

म्हारी तो दांतल हर कै संग गयी

मात्ता कहवै तो देवां बिडार कहवै तो भेज्जां धण गै बाप नै

बेट्टा क्यां नै तो देवो ए बिडार, क्यां नै तो भेज्जो धन कै बाप कै

बेट्टा या धन जलमैगी पूत बेल बधैगी थारै बाप की

बेट्टा मनड़्यां सै देवो ए बिडार म्हारै तो नां की रूक्मण मर गयी

रूक्मण उठो ना करो ए सिंगार ब्याए तो कहिये तेरै बीर का

हर झूठे तम बोलो ना झूठ साम्मण कैसी बिरदे खिंड रये

रूक्मण उट्ठो ना करो ए सिंगार पूत ओ जाया तेरी भौज कै

हर आप छोड़ै असवार रूक्मण नै बैल जुड़ा दई बाजणी

हर जी उट्ठे सै आदड़ी री रात दीप उजाल्या ठण्डे बड़ तलै

हर जी कुण म्हारै माई अर बाप किसकै भरोसै छोड़ी एकली

रूक्मण बड़ पीपल भाई अर बाप राम भरोसै छोड़डी एकली

हर जी साच्ची तम देओ ना बताय कद घर आवो म्हारै पावणै

रूक्मण आवांगे कातक मास गोरधन पूजां थारै बाप गै

हरजी साम्मण बरसैंगे मेघ भद्रवे मैं खैवें कडैली बीजली

हरजी आसोज पीत्तर सिंजाये कारतक लांबा सीट्टा बाजरा

हरजी मंगसर मैं माँग भराय पोय मैं जाड़ा ए जी अद पड़ै

हरजी माया मैं मांझल नाय फागण फगावा खैला दो जणी

हर जी चैत मैं देबी की जय भर ए बैसाखी केसु ढल रये

हर जी जैठ मैं चाल्लैंगी लूय साढ़ मैं हाली हलिया जोड़िया

हर जी पूगे सै बारोड़ै मास कद घर आवो म्हारै पांवणै

माता क्या बिना घोर अँधेरा क्या बिना लाग्गै आंगण भिणभिणा

बेट्टा बहू बिन घोर अँधेर पोत्या बिना लाग्गै आंगण भिणभिणा

माता धोबी के कपड़े धुवाय तड़कै तो ज्यांगा धन के बाप गै

हर जी उट्ठे सै आदड़ी सी रात दीप उजाला ठण्डे बड़तलै

रूकमण कात्तै थी लम्बे लम्बे तार हर जी आवै थारै पांवणै

रूक्मण चरखे नै परै ए बगाय हर जी तो भूखे थारै पांवणै

हर जी हरी ए मंगाय धोली दाल चावल तो रादुं हर नै ऊजले

हर जी बूरे रेलमठेल घी बरता द्दूं हर नै टोकणै

हर जी जिम्मण तीस बत्तीस मंडै तो पो द्दूं हर नै पातले

हर जी जिम्मो नै कंथ परोसै थाल हंस हंस द्दूंगी हर नै जीमणा

हर जी वै दिन कर ल्यो ना याद किसकै भरोसै छोड़डी एकली

रूक्मणि वै दिन पाच्छे नै मार मन राख्या सै ब्रूढ़ली माई का

हर जी आप छोड़े असवार रूक्मण नै बैल जड़ा दई बाजणी

हर जी उट्ठैं सै आदड़ी सी रात दोप उजाया अपणी सीम नै

माता खोलो ना अजड़ किवाड़ सांकल खोलो ए सार की

बेट्टा खुल रये अजड़ किवाड़ सांकल खोलो ए साल की

माता ऊप्पर सै नीचै उतर आए बाहर खड़ी सै तेरी कूल बहू

बेट्टा म्हारै पै तो उतरया ए ना जाय म्हारै तो नात्तै रूक्मण मर गयी

रूक्मण उतर बैल से नीचे पांय तो पड़िये म्हारै मांय कै
बहुअड़ म्हारै मत पड़ियो पांय पांय तो पड़िये अपणी माय कै ।
माता ऐसे मत बोलो री बोल मांयां के धीयड़ कैसी पांयणै ।"

रतजगे के गीतों की यह एक झलक मात्र थी । जैसा कि पीछे वर्णन किया जा चुका है, इन गीतों का विस्तार बहुत अधिक है ।
विवाह वाले दिन कन्या के यहां प्रातः काल पंडित मांडा रोपने आता है । गेरू के रंग से रंगी एक हाल और लकड़ी का बजारा लाया जाता है । कुम्हार के घर से पांच-सात सुराई और एक करवा मंगाया जाता है । दर्जी डोवटी से मांडा बनाकर लाता जिसका उसे नेग मिलता है । कन्या को चौकी पर बैठाकर नवग्रह पूजन होता है । मांडा रोपने के स्थान पर कन्या चावल और तेल छोड़ती है और मामा की सहायता से धरती खोदती है । खुदाई की गई जगह में हल्दी की गांठ, सुपारी और टका डाला जाता है । हाल को खड़ा करके उस पर डाभ की पांच जड़ें बांधी जाती हैं । मांडे के साथ ही पांच मंगलकलश सजाये जाते हैं और मैंहड़े की हलस के साथ पांच सराइयां मौली से बांधकर टांग दी जाती हैं ।

वर पक्ष के घर इस दिन ज्यौनार होता है । फिर न्यौता लिया जाता है । दरी पर सभी सम्बन्धी बैठ जाते हैं । महाजन बही में से देखकर सबको बताता है कि तुम्हारे घर के अमुक विवाह में वरपक्ष ने इतने रूपये डाले थे । अब अपनी इच्छानुसार उतने ही या उससे अधिक रूपये न्यौते में डाल दो । यह प्रथा गृहस्वामि के कंधों पर पड़े बोझ को हल्का कर देती है ।

पितृ गृह को निमन्त्रित करके वर अथवा कन्या की माँ बहुत उत्सुकता से भाइयों के आने की राह देखती है । उसे विश्वास है कि भाई बहुत सारा सामान लेकर आएंगे । स्वयं उसके लिए भी वे आभूषण लायेंगे । अपने मन को वश में न रख सकने पर वह पति से मन की इच्छा व्यक्त करती है । लेकिन पति उसे झिड़क देता है --

"कंगन तो पिया तौं घड़वा दे आरसी ल्यावैं भातइया
चल चुप रै मस्टंडी नार देखै तेरे भातइया
पांच ल्यावैं पचास लै जावैं ब्याज मूल मैं तनै जावैं
देखै तेरे भातइया"

भाई सीधे बहन के घर नहीं जाते अपितु गांव में अन्यत्र ठहरते हैं । भात भरने की तैयारियां पूर्ण होने के उपरान्त ही वे घर में आते हैं । बहन समस्त तैयारियां करती है --

"गलियारा बुहार आई री, आवैं मेरे भात्तई
गलीचे बिछा आई री आवैं मेरे भात्तई
बगिया समार आई री आवैं मेरे भात्तई
बैठक सजा आई री आवैं मेरे भात्तई
मेरा मात्था फड़कै री क झुम्मर ल्यावैं भात्तई
मेरे कान फड़कै री क ~~झुक~~ काट्टे ल्यावै भात्तई
मेरा दिल धड़क रह्या री क काच्ची ना करा दें भात्तई
मेरे कान फड़कै री क काट्टे ल्यावै भात्तइया
मेरा दिल धड़क रह्या री कदे खाल्ली थैल्ली न दिखा
दें भात्तई ।"

भातियों की आगवानी करने घर के पुरुष जाते हैं । द्वार पर पटड़ा रखा जाता है । चार प्रज्वलित दीपक, हल्दी, चावल और रूपये थाल में सजाकर बहन, भाई के स्वागत की तैयारी में खड़ी है । आने में थोड़ा विलम्ब हो गया है । स्त्रियां गीत गाती हैं --

"कद की देखूं थी बाट माई जाया
सब ते रे पहल्लम न्योंदिया
औरां के घाल्ले बाह्मण नाई, तन्नै रे न्योंदण मैं गई
घर नै है लगाई बार माई जाई तेरा है चूंदड़ रंगावते
सुनरे नै ला दई बार माई जाई, तेरा री अगड़ घड़ावते
तेरी भाब्बी नै ला दई बार माई जाई तेरा री कँवर सिंगारते
मायड़ नै ला दई बार माई जाई तेरा है भात सँवारते
लिकड़्या रे माई जाया बिचली गाल केसर केसर झूमका
किसिए बहाण के बीर माई जाये किसिये के बड़ भातिये"

अन्तत: प्रतीक्षोपरान्त भाई, पिता, चाचा, ताऊ, आदि दिखाई देते हैं । बहन उनको देखकर खुशी से झूम उठती है । बहन भाई के तिलक लगाती है और भाई चूंदड़ी उढ़ाकर सामर्थ्यानुसार थाली में धन डालता है । बैठक गीतों से गुंजरित हो उठती है ।

"आज सोम में मेरे राजा जगमगी
आया मेरी मां का जाया बीर, हीराबन्द ल्याया चूंदड़ी
ओढूं तो हीरे मोती झड़-पड़ैं, डिब्बे में राखूं तो ललचै जी
हीराबन्द ल्याया चूंदड़ी
साद्दी तो क्यूं ना ल्याया मेरे बीरा चूंदड़ी
आज पाटड़े पै मैं सइयां जगमगी आया मेरी मां का जाया बीर

हीराबन्द ल्याया चूंदड़ी ।"

भाई के भात भरने के उपरान्त पिता, चाचा, दादा आदि भात भरते हैं । इसे 'बड़भात' कहते हैं । सभी ओर भात की प्रशंसा होती है । बहन गर्व से फूली नहीं समाती । कुछ महीनों पूर्व जिठानी के घर उसके भाइयों ने भात भरा था । उसकी तुलना वह अपने घर भरे गये भात से करती है -- और अपने भात को श्रेष्ठ सिद्ध करती है --

"मेरी जिठाणी के पांच भाई मेरे मेरी मां का जाया एक से
वे तो पांच आए पचास ल्याए मैंगी ते ल्याए चूंदड़ी
मेरा एक आया लाख ल्याया रेसम की ल्याया चूंदड़ी
वै तै भात भरके चाल्लण लागे ओढ़ दिखादे बेबे चूंदड़ी
मैं त कुंजे सराई जोहड़ सराई सारे तो सैहर सराही ओ राम"

भात की रस्म पूर्ण होने के उपरान्त भाई उन घरों में जाते हैं जहां उनकी बहन अथवा गोत्र की लड़की ब्याही होती है । सबको वे एक एक रूपया भेंट करते हैं । निकटस्थ बहनों को तील प्रदान की जाती है । कन्या विवाह के समय वही तील पहनती है जो उसके मामा लाते हैं ।

भात के अवसर पर अन्य कई प्रकार के गीत भी गाये जाते हैं । इनमें कुछ प्रबन्धात्मक हैं । एक गीत नरसी भगत का है जो समस्त हरियाणा में गाया जाता है । ईश्वर भक्त नरसी की इकलौती पुत्री हरनन्दी है । उसके यहां विवाह है । भात न्यौतने वह अपने पिता के घर सिरसागढ़ जाती है । बहन को भाई और पिता को पुत्र का अभाव सालता है । फिर भी पिता पुत्री से कहते हैं कि वे नियत समय पर भात भरने आएंगे । पुत्री जूनागढ़ अपनी ससुराल में आ जाती है । नरसी अपनी दयनीय अवस्था में भगवान का स्मरण करते हैं । भक्त के लिए भगवान् उनका पुत्र बनकर आते हैं और बहन का भात

खूब धूमधाम से भरते हैं । गीत प्रस्तुत है, जिसमें पर्याप्त मार्मिकता झलकती है--

"काली पोली रात अंधेरी चाल पड़ी दुखियारी ए
नरसी भगत का मैहल बता द्यो भात न्यूंतण नै आरी ए
खोल किवाड़ी आवो पिता जी बाहर खड़ी थारी जाई ए
गल कै लाग कै रोवण लागी बाबल नै धीर बंधायी हो
मत न्या रोवै ए हरनन्दी बीर कड़ै तैं त्यावूं ए
इसे इसबर नै लेख लिखे थे इननै कड़ै लुकावूं ए
आइयो री मेरी काकी ताइयो मनै घाल कै आइयो री
बिन भाइयां की बाहुण लुगाइयो भात्ती मेरै खंदाइयो री
इतणा जिकर सुण्या किरसन नै अपणा अरथ सजाया री
मत न्या रोवै ए हरनन्दी हम तेरै भात्ती आवां री ।
जब किरसन हो चढ़्या पाटड़ै मोर असरफी बरसी हो
पीसे का कोए घाटा कोन्या धन बतेरा ले र्‌या ए"

डॉ० शंकरलाल यादव ने अपने शोध प्रबन्ध में इस गीत को निम्न प्रकार से उद्धृत किया है, जिसमें भाव साम्य है, किन्तु शाब्दिक हेर-फेर पर्याप्त है ।

"ना मेरा सहा ना कोई सात्थी ना कोई बेट्टा मैं भात्ती हो राम
धूणी मैं पडूंगी बाबू जल के मरूंगी
मैं सिरसागढ़ नहीं ज्यांगी हो राम
दुराणी जिठाणी बाबुल बोल्ली हो मारैं
के नरसी पत्थर ल्यावैगा हो राम

सासु नणदी बोल्ली हो मारै

के नरसी तील पहरावै हो राम

देवर जेठ बोल्लो हो मारै

के नरसी मोहर ल्यावै हो राम

तेरा जमाई बोल्ली हो मारै

के नरसी आथा मैं आवै हो राम

काणी सी धोब्बण बोल्ली हो मारै

के नरसी सुरमा ल्यावै हो राम

भेल्ली कसार लै हरनन्दी चाल्ली

होली सिरसागढ़ की राई हो राम

ब्रज्जे सैं उसनै हाली-पाली

नरसी भगत कित पावै हो राम

काका ताऊ कै चाली हे जाइये,

नरसी भगत अस्तल मैं पावै हो राम

कूण किसै के काका ताऊ

नरसी के मैं ज्यागी हो राम

दूरे तैं हरनन्दी देखी आवती

नरसी भगत खड़े हो गे हो राम

दोन्नूं हात्थां सिर पुचकार्या

हे ईश्वर तेरी माया हो राम

बेटी तैं दई राम जी बेटा भी दिये

आज मनै बहुत रंज आया हो राम

बेबे भी दई भाई बी दिये

आज मनै भात्ती बी चाहिए हो राम

टूट्टी सी गाड्डी ब्धे से नारे

आप नरसी गढ़वाला हो राम

टूटगी गाड़ी बैठगे नारे,

खड़े लखावैं नरसी भगत हो राम

धौले-धौले नारे, बाजणा सा रथ

आप किरसनगढ़ वाले हो राम

कित गया रे हरनन्दी राजमाई

कड़े सी रथ डटावै हो राम

चार घड़ी लग तील बरसी

पैहुरी मेरी नणदी हो राम

चार घड़ी लग मौहुर बरसीं

बरतो मेरे देवर जेठ हो राम

चार घड़ी लग पत्थर बरसे

मैहुल बणाओ सारी दुनियां हो राम

चार घड़ी लग सुरमा बरस्या

सारो काणी धोब्बण हो राम

द्योराणी जिठाणी बूज्जण लागी

कुणसा हे हरनन्दी तेरा भाई हो राम

औरों के आवैं भाई भतीजे

मेरे कृष्ण जी आवैं हो राम ।[1]

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 169

भात्ती दूल्हे के लिए `मौड़` लाते हैं, जिसे वह घुड़चढ़ी, बारोठी और फेरों के अवसर पर धारण करता है ।

गोधूलि के समय घुड़चढ़ी होती है । स्नानोपरान्त वर मामा द्वारा लाये वस्त्र धारण करता है । भाभी उसके काजल डालती है और आरता करती है । ब्राह्मण मामा द्वारा लाया गया मौड़ वर के सिर पर बांधता है । घुड़चढ़ी के समय गाये जाने वाले गीतों को `घोड़ी` कहा जाता है । वर जब तैयार होता है, उसी समय से घोड़ी गाना आरम्भ हो जाता है --

"घोड़ी सोहवै दादा दरबार, बछेरी मेरे मन भावैगी
चर आवै खेड़े की दूब, पी आवै जमना जल नीर
चढ़ आवै समधी का है नन्द, चढ़ आवै भाइयां का है बीर"

घोड़ी के गीतों का बहुत महत्त्व है । घुड़चढ़ी में स्त्रियां सजधज कर जुलूस के रूप में चलती हैं । नाई दूल्हे को घोड़े पर बैठाता है । वर के पीछे घोड़ी पर उसका छोटा भाई अथवा भतीजा ~~पीछे~~ बैठता है । बहनोई घोड़े की रास पकड़कर राह-रूकाई का नेग श्वसुर से लेता है । घुड़चढ़ी का जुलूस स्त्रियों के मधुर गीतों के मध्य चलता है ।

घोड़ी के पीछे वर की बहन थाली में चावल लेकर उसके मौड़ पर छिड़कती चलती है । जुलूस में स्त्रियों के अतिरिक्त घर के पुरुष सदस्य और विवाह में सम्मिलित होने आए सगे-सम्बन्धी होते हैं । बैंड-बाजों के मध्य मधुर गीतों की ध्वनि सुनाई पड़ती है । सर्वप्रथम गांव की परिक्रमा की जाती है ।

"तूं तै चाल घोड़ी चाल मेरे दाद्दा के दरबार
मैं तो अभी चलूं म्हाराज
मन्नै बड़े घरां की ल्हाज

बन्ना जी ने बूरा भात,

घोड़ी चरै चण्यां की दाल ।"

विवाह में इतना उत्साह और उल्लास होता है कि कौन-सा मौसम है और कैसा है, इसकी किसी को चिन्ता नहीं रहती । इस अवसर विशेष पर गाये जाने वाले गीतों को 'घोड़ी' कहा जाता है । निम्न गीत में दादा वर से शाम को घुड़चढ़ी करने का आग्रह करता है, क्योंकि इस समय काफी धूप पड़ रही है । किन्तु वर मृगनैनी वधू के चाव में उनकी एक नहीं सुनता --

"तेरा दाद्दा रै बरजे बनड़े सांज्झे रै चढ़िये

धूप पड़ै धरती तपै ।

उस बनड़ी के चा मैं, मिरगनैणी के चा मैं

धूंप गिणै ना धरती गिणै ।"

गांव की परिक्रमा पूर्ण करने के उपरान्त घुड़चढ़ी का यह जुलूम 'भय्यां' (भूमियां) पहुंचता है । वर उनको प्रणाम करता है । स्त्रियां दीपक प्रज्वलित करती है और प्रशाद चढ़ाती हैं । यहां से जुलूस देवालय जाता है, जहां पूजन अर्चन होता है । जुलूस का समापन गृहद्वार पहुंचने पर होता है । घुड़चढ़ी के बाद वर घर में प्रवेश नहीं करता अपितु वहीं से वह बारात चढ़ जाता है । दादा अथवा पिता नाई, ब्राह्मण आदि को नेग देते हैं ।

बारात में कौन-कौन जायेगा इसकी सूचना नाई द्वारा सबको भिजवा दी जाती है । सब के एकत्रित होने पर बारात ~~बन्न~~ रवाना होती है।

वर के घर से बारात के प्रस्थान के उपरान्त रात्रि में घर की स्त्रियां अनेक-विध आचार सम्पन्न करती हैं । इनमें से एक आचार `खोड़िया` कहलाता है जिसमें स्त्रियां नाना प्रकार के गीत गाती हैं और नाटक करती हैं । इससे सबका मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही रात्रि भर जागरण होने से चोरी इत्यादि का भय भी नहीं रहता ।

एक स्त्री पुरुष का भेस बनाकर मटके में मुंह देकर बोलती है -- "हे मां ।"

"हां बेट्टा" अन्य स्त्री मां के रूप में प्रत्युत्तर देती है ।

"कै तो पीसा टका जोड़ के मेरा ब्या कर दे,
नां तै फलाणे की बू नै ले कै भाज ज्यांगा ।"

(या तो पैसे टके जोड़कर मेरा विवाह कर दे, अन्यथा अमुक की बहू को लेकर भाग जाऊँगा) ।

इतना सुनते ही स्त्रियां उस स्त्री के, जिसे वह ले जाने को कहता है किसी दुर्गुण का बखान करती हैं । जब गीत समाप्त होता है तो पुन: यही क्रम आरम्भ होता है । दूसरी स्त्री में भी कोई दुर्गुण निकाल दिया जाता है । इस प्रकार `खोड़िया` चलता रहता है ।

दूसरी तरफ बाराती गांव में पहुँच कर सरोवर के किनारे रूकते हैं । गांव में बारात पहुँचने की सूचना नाई द्वारा भेजी जाती है । वह हाथ में जाल वृक्ष की टहनी लेकर कन्या के पिता के यहां जाता है । इसे "हरी डाली ल्याणा" कहते हैं । कन्या के घर इस प्रसंग पर गीत गाये जाते हैं । कन्या वर को देखने को उतावली है । वह अपनी दादी से पूछती है कि क्या मिलने का कोई उपाय है ?

"मैं तन्नै पूछूं ए दाद्दी

मैं किस विध देखण जाऊँ रंगीले आ उतरे बागा मैं,

हाथ लेओ फूल छाबड़ी है लाड्डो, कोए माल्लण बण कै जाओ

रंगीले आ उतरे बाग्गां मैं ।

काच्ची पाक्की कलियां तोड़ रई बाग्गां मैं

कर घूंघट की ओट, मुखड़ा देख गये, दिखाय गये बाग्गां मैं ।

म्हारी साहे धरी लाड्डो कै नजर लगाय गया नाच्चण को"

कन्या पक्ष के बुजुर्ग बारात की आगवानी करने जाते हैं और उन्हें जनवासे मैं ठहराते हैं, जहां से नहा धोकर और तैयार होकर वे गांव के गणमान्य व्यक्तियों के बुलावे पर बारौठी के लिए आते हैं । नाई कन्या की तील, गहने, सिंगारदान और शुष्कमेवे तथा फलादि परात में लेकर आगे चलता है । वर घोड़ी पर विराजमान है । गृहद्वार पर वह अपनी छड़ी से तोरण पर लगी 5,7 चिड़ियों को छूता है, जिसे तोरण चटकाना कहते हैं ।
"यह एक युद्धस्थल का प्रतीक है । ऐसा माना जाता है कि एक पिता ने अपनी छोटी सी कन्या को बात-बात मैं चिड़ों से ब्याहने की बात कह दी । कन्या बड़ी हुई । कन्या ने पिता को पुरानी बात स्मरण कराई और आग्रह किया कि यह उन्हीं से विवाह करायेगी । चिड़े भी बारात लेकर आ पहुँचे । निर्णय हुआ कि जो शक्तिशाली हो वही कन्या ले जाये । अत: वर आज तक इन चिड़ियों से लड़ता दिखाया गया है ।"[1] वर के पीछे पैसे लुटाये जाते हैं । वर को पीढ़े पर खड़ा करके कन्या की बड़ी बहन आरता अथवा सेल करती है ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 145

वर के ऊपर से जल से भरा लोटा वारकर उसका थोड़ा-सा जल स्वयं पीती है । कन्या छज्जे पर खड़ी होकर चोरी से उसे देखती है । सहेली उससे इस ताक-झांक के विषय में पूछती है --

"है तूं बाप कै छज्जै लाडो क्यूं खड़ी"

कन्या उत्तर देती है --

"है मैं देखूं थी छैल बने की बाट
सांवरिया आया रंग भर्या
है वै आवैंगे तोरी के से फूल
सांवरिया आवै रंग भर्या ।"

इस रस्म की पूर्ति के उपरान्त बारात पुनः जनवासे में आ जाती है ।

तत्पश्चात् मुख्य आकर्षण फेरे होते हैं । पूर्व निश्चित समय पर इनका आयोजन होता है । वर को पुनः मौड़ बांधा जाता है । वह भातियों द्वारा लाये गये वस्त्र पहनता है । बैंड-बाजे के साथ नाचते-गाते बाराती वधू के घर पहुँचते हैं । कन्या के घर के आंगन में जहां मांडा रोपा गया था, बेदी बनाई जाती है । चंदोवा बांधा जाता है । मंगल कलशों से सजावट होती है । शुद्ध मिट्टी से हवन कुंड बनाया जाता है ।

वर पक्ष के लोग वेदी के उत्तर में और कन्या पक्ष के लोग दक्षिण में बैठते हैं । वर-वधू पश्चिम की ओर तथा पुरोहित पूर्व की ओर बैठते हैं । सर्वप्रथम वर आकर पीढ़े पर बैठता है । पुरोहित यज्ञ का शुभारम्भ करता है । हवन विषयक प्रार्थमिक कार्यों की पूर्ति के उपरान्त कन्या को बुलाया जाता है । लड़की का मामा लड़की को गोद में उठाकर लाता है और वर के दाहिनी ओर चौकी पर बैठा देता है । कन्या के माथे पर कागज की कटी मौड़ी पवित्र मौली में पिरोकर बांधी जाती है । स्त्रियां गीत गाती हैं जिसका विषय है कि वर कन्या को

बुलाता है किन्तु कन्या अपने पिता, दादा आदि के द्वार पर अड़े होने की बात कहती है । वर दादी का प्रलोभन दादा के लिए देता है । ताऊ के लिए ताई का प्रलोभन है । वर चतुर है ।

"थारा ताऊ नै अपणी ताई ब्विहाघा चौरी नै राखा जगमगी ।
गढ़ छोड़ रूक्मण बाहर आई, चौरी तो छाई तेरे बालमा
मैं क्यूक्कर आवूं बाबल हो मेरे बाहर बैठे मेरे साजन
तेरे साजण नै हम दान देंगे, मान देंगे, चौरी तो राखा तेरी ऊजली ।।"

पुरोहित मन्त्रोच्चार के साथ कन्या का दाहिना हाथ पिता के हाथ में देता है जिसमें पान, सुपारी, दूब, सवा रूपया, शंख और फूल होते हैं । पंडित कन्यादान का संकल्प पढ़ता है । पिता यह कहकर कि 'हे विष्णुरूपी वर, लक्ष्मी-रूपिणी यह कन्या तुझे भार्यास्वरूप देता हूँ ।' कन्या का हाथ वर के हाथों में पकड़ा देता है ।

हवन कुण्ड में ज्वाला प्रदीप्त की जाती है । ब्राह्मण कन्या की चूनर से खद्दर का पटका बांधता है जिसका दूसरा छोर वर को थमा देता है, और वर उसे कन्धे पर रख लेता है । वर अपनी दाहिनी ओर से आगे बढ़ता है । कन्या उसका अनुगमन करती है । वेदी की चार उल्टी और तीन सीधी परिक्रमा की जाती है । सीधी परिक्रमा में दुल्हन आगे चलती है और वर उसका अनुगमन करता है । इस रस्म को फेरों की रस्म कहा जाता है । स्त्रियां गीत गाती हैं--

"पैहला फेरा लीजिये दाद्दा की प्यारी
दूज्जा फेरा लजिये ताऊ की प्यारी
तीज्जा फेरा लीजिये बाबल की प्यारी
चौत्था फेरा लीजिये काका की प्यारी
पांचमा फेरा लीजिये भाई की प्यारी

छठ्ठा फेरा लीजिये मामा की प्यारी

सातमा फेरा लीजिये लाड्डो हुई पराई ।"

गृह्यसूत्रों में वधू के लिए इस प्रकार की उक्तियाँ सम्बोधित हैं -- ऐश्वर्य के लिए एकपदी हो, ऊर्ज्व के लिए द्विपदी हो । भूति के लिए त्रिपदी हो । सुखों के लिए चतुष्पदी हो । पशुओं के लिए पंचपदी हो । ऋतुओं के लिए षटपदी हो । हे सखी ! मुझसे सख्य के लिए सप्तपदी हो ।

पारस्कर, बौधायन §1/4/24§, हिरण्यकेशी §1/21/1§, आपस्तंब§11/4/16§, वैखानस §3/4/38§ आदि गृह्यसूत्रों में यह सप्तपदी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ सबमें मिलती है ।

फेरों के उपरान्त कन्या पराई हो गयी है । अनजाने लोगों को उसे अपना बनाना है । उसके मन में अनूठी कल्पनाएं सिर उठा रही हैं । वह अनमनी सी हो रही है । स्त्रियाँ गीतों में उसे सान्त्वना देती हैं कि उसके समर्थ परिवार जन उसके साथ हैं ।

"तूं क्यों लाड्डो डगमगी, तेरे समरथ बाबाजी साथ

रत्नागर चौरी चढ़े

तूं क्यों लाडो डगमगी तेरे समरथ भाई जी साथ

रत्नागर चौरी चढ़े

तूं क्यों लाडो डगमगी तेरे समरथ मामा जी साथ

रत्नागर चौरी चढ़े

तूं क्यों लाडो डगमगी तेरे समरथ काका जीसाथ

रत्नागर चौरी चढ़े ।

फेरों के उपरान्त पुरोहित वर से सात वचन लेता है और कन्या को उसके वामांग में बैठा देता है । इसी प्रकार कन्या भी सात वचन देती है । पुरोहित वर और वधू के कर्त्तव्यों का संक्षिप्त रूप से उल्लेख करता है और दोनों को गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक व्यतीत करने का उपदेश और आशीर्वाद देता है । वर-वधू जीवन संगी बन जाते हैं ।

स्त्रियां अब वहां पर उपस्थित बारातियों की ओर उन्मुख होती हैं । जी खोलकर मुक्त कण्ठ से वे उनका हास-परिहास करती हैं[1] --

"पसेरे छट्ठे आए री पसेरे ।
हम नै बुलाये गोरे गोरे, काले क्यूं ले आए री पसेरे ।
हमनै बुलाए छैल पतलिये, मोट्टे क्यूं ले आए री पसेरे ।
हम नै बुलाए लम्बे लम्बे, गुट्टे क्यूं ले आए री पसेरे ।
हमनै बुलाए थोड़ा खाऊ, पेट्ट क्यूं ले आए री पसेरे ।"

वे इसी से सन्तुष्ट नहीं होती अपितु एक-एक बराती का नाम ले लेकर परिहास करने से भी बाज नहीं आतीं[2] --

"तौं तै धरमचन्द पतला, तेरी जोरू मोट्टी
आप खावै घी चूरमा, तन्नै जौ की रोट्टी
आप सोवै सुख सेज पै, तन्नै टूटी खटोल्ली
ऐसा काला तौं बण्या रे धरमचन्द जिसी उड़द की दाल
दाल हो तो धोय ल्यां तेरा रंग ना धोया जाय ।"

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 30

2-वही, पृ0 31

वर एवं वधू को थापों के सामने ले जाया जाता है । दोनों वहां 'धोक' मारते हैं । वर का मुंह मीठा किया जाता है । सालियां मज़ाक करती हैं । 'छन' कहलवाकर वर की बुद्धि की परीक्षा की जाती है । वर के जूते उसकी सालियां छिपा लेती हैं । वर से नेग मिलने के उपरान्त ही वापिस लौटाती हैं ।

विवाह के दूसरे दिन कन्या को विदा कर दिया जाता है । आंगन में दूल्हे को पीढ़े पर बैठाया जाता है । वर का पिता मंदिर जोहड़, धर्मशाला ब्राह्मण और नाई को नेग देता है । कन्या के पिता वर की झोली में दान देते हैं --

"लाड्डो के बाबा जी दे रये दान
दादी राणी बरज रई
मत न्या बरजो तिरिया नार
लाड्डो कोए दिन की
लाग्गै गेंद उड़ जाय
कोयल बाग्गां की "[1]

कन्या का पूर्ण श्रृंगार किया जाता है । वर से भट्टी में लात मरवाई जाती है, जिसका उसे नेग मिलता है । कन्या विदा होती है । वातावरण अत्यन्त कारूणिक हो उठता है । कन्या सभी से मिलती है । सबकी आंखें रोती हैं । एक ओर सब कन्या के विवाह पर हर्षातिरेक से विभोर होते हैं तो दूसरी ओर कन्या के चले जाने के दुःख के कारण उनका हृदय व्याकुल हो उठता है । स्त्रियां गीत गाती हैं--[2]

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 31
2- वही, पृ0 33

"सात्थण चाल पड़ी मेरे डब डब भर आये नैण

अपणी सात्थण का मैं दाम्मण सिमा द्यूं

गोट्या की ला द्यूं लार

अपणी सात्थण का मैं कुर्ता सिमा द्यूं

बटणा की ला द्यूं लार

अपणी सात्थण नै मैं ताकली मंगा द्यूं

भाइया की ला द्यूं लार

अपणी सात्थण नै मैं बेहूल मैं बिठा द्यूं

गैल पति भरतार"

बिदाई के अवसर पर गाये जाने वाले गीत बहुधा करूण रस से ओत-प्रोत होते हैं ---

"मैं त बाबल तेरै झामै की चिड़िया मारै डला उड़ जाय

मैं त बाबल तेरै खूंटै की गइया जित बाधै बंध जाय"

कन्या के विदा होने पर सभी को उसके सकुशल ससुराल पहुँचने की चिन्ता होती है । प्रकृति के समस्त शुभ उपमानों से यह आशा की जाती है कि वे अपना कर्तव्य निभाएं । निम्न गीत इसी आशय को स्पष्ट करता है[1] --

"तीतर रै तूं वामै दाहिनै बोल

चढ़ते जमाई का सूण मनाइये जी मैं का राज

कोयल है तूं बागां मैं जा बोल, चढ़ते जमाई नै सबद

सुणाइये जी मैं का राज

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य; डा० शंकरलाल यादव, पृ० 195

सुरज है तूं बादल मैं बड़ ज्या

चढ़दे जमाई नै लागै घामड़ा जी मैं का राज

बादल रे तूं झीणा झीणा बरस

चढ़ती लाड्डो की भोज्जै नौरंग चूंदड़ी जी मैं का राज

आंधी ए तूं झीणी-झीणी चाल

चढ़ते जमाई का गरद भरै कापड़े जी मैं का राज

टीबी है तूं ऊंची नीची हो, चढ़ते जमाई की दीखै पंचरंग

पागड़ी जी मैं का राज।"

बांगरू भाषी प्रदेश मैं कन्या का कम उम्र मैं विवाह करने का अभी भी प्रचलन है। विवाह के तुरन्त बाद कन्या को ससुराल नहीं भेजा जाता अपितु जब वह उम्र लायक हो जाती है तब विवाह के चार पांच वर्ष के बाद उसका गौना किया जाता है। जिसे हरियाणा मैं 'मुकलावा' कहते हैं। हमारे पूर्वजों ने कन्या के शीघ्र विवाह को उचित माना था।

"अष्टावर्षा भवेत् गौरी नववर्षा च रोहिणी
दशवर्षा भवेत् कन्या तत् ऊर्ध्वं रजस्वला ।।
माता चैव पिता तस्या: ज्येष्ठो भ्राता: तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्टवा कन्या रजस्वलाम् ।।"[1]

(आठ वर्ष की कन्या गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या और उसके पश्चात् रजस्वला हो जाती है। दसवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को देखने से ही माता-पिता एवं बड़ा भाई सभी नरक को जाते हैं।)"

1- पाराशरी और शीघ्र बोध

समय के साथ-साथ इसमें कुरीतियाँ प्रविष्ट हो गई हैं । आज यह एक सामाजिक कुरीति के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है ।

कम वय में यदि कन्या का विवाह कर दिया जाता है तो चार अथवा पाँच वर्ष के उपरान्त 'मकलावा' भेजा जाता है । वर अपने चार या पाँच समव्यस्क साथियों सहित कन्या को लिवाने आता है कन्या अपनी संग सहेलियों के साथ खेली-कूदी है । किन्तु अब जब विदा-बेला निकट आती है तो सहेलियों के मन में टीस उठनी स्वाभाविक है । जिसके साथ खेले-कूदे, वह अब चली जायेगी । विदा-बेला के इस गीत का नाम "सात्थण" है ।

"साथण का चजा दिया ठीक मावस कै अड़कै
मैं मरूँ अब जीऊँ मेरी माय, साथण मेरी ज्यागी तड़कै
साथण का कर्‌या कसार कढ़ाई भरकै,
मैं मरूँ अक जीऊँ मेरी माय साथण मेरी ज्यागी तड़कै
साथण की दिखाई तील पलंग पै धरकै
मैं मरूँ अक जीऊँ मेरी माय, साथण मेरी ज्यागी तड़कै
साथण नै आई चाल पहर कै तड़कै
मैं मरूँ अक जीऊँ मेरी माय साथण मेरी ज्यागी तड़कै
मैं पड़ी खटोले कै बीच सबर सा करकै
मैं मरूँ अक जीऊँ मेरी माय साथण मेरी ज्यागी तड़कै"

माता-पिता, भाई-भाभी और अन्य परिवार जन इस आंशका से व्याकुल हैं कि कन्या उन अनजाने लोगों के बीच जा रही है, जो आज उसके अपने बन गये हैं । न जाने ये अपने कैसे हों--

"मनैं बेहली दोखी आंवती, साथण के आए लणिहार
साथण मेरी तड़कै डिगर ज्यागी

ए बीरा एक बै घेरा मैं जाइये, बाबल की धीर बंधाइये

रै उसनै रो रो सुजा लई आंख, बेट्टी तै मेरी तड़कै डिगर ज्यागी ।

ए बीरा एक बै साला मैं जाइये, माईड़ की धीर बंधाइये

रै उसनै रो रो सुजा लई आंख, बेट्टी तै मेरी तड़कै डिगर ज्यागी

मत रोवै मां मेरी बावली दुनिया का योहे व्यवहार

जगत् मैं होती आवै सै ।"

करूणा से भरे गीतों और अश्रुपूरित नेत्रों के बीच कन्या डोली मैं बैठकर ससुराल को ओर चल देती है ।

ससुराल मैं बारात के आगमन की सूचना मिलते ही कुटुम्ब की सभी स्त्रियां मंगल-कलश लेकर वर-वधू के स्वागतार्थ आती हैं । गीत गाती हैं --

"डोले तै तलै उतरिया ए बहुअड़ करके नीची नाड़

सासु जी के पांय लिये सैं लिये चरण चुचकार

जीओ ए तेरे भाई भतीजे बण्या रहो भरतार

मेरै बेट्टे की बेल बधायी जाम्मै हे राज कंवार ।"

स्त्रियां बहू को सास का अनुसरण करने का उपदेश देती हैं --

"आइये बहुअड़ इस घरां तेरी सास्सड़ आई ससुरधरां ।

आइये बहुअड़ इस घरां तेरी जिठाणी आई जेठघरां ।।"

गृहप्रवेश के समय वर की बहन द्वार रोकती है, जिसका उसे नेग मिलता है । गृह प्रवेश के उपरान्त देव पूजन होता है । वर-वधू देवालय जाते हैं । तत्पश्चात् कांगण-जुआ का खेल होता है । वर-वधू को पूर्वाभिमुख पटड़ों पर बैठा दिया जाता है ।

मिट्टी की परात में दूध, पानी, दूब और सवा रुपया डाला जाता है । वर की अंगूठी भी उसी पानी में डाल दी जाती है । दोनों ढूंढते हैं । यह खेल सात बार खेला जाता है जिसमें चार बार अंगूठी प्राप्त करने वाले की विजय घोषित होती है ।

हलदात-बान के अवसर पर बांधा गया कांगण-डोरा और राखड़ी अब एक दूसरे द्वारा खोली जाती है । स्त्रियां पर्याप्त हास-परिहास करती हैं --

"खोल उधली की कांगणा, तेरी माय बाहुण का भागणा ।
खोल राणी के डोरियां, तेरी माय बाहुण से गोरियां ।।"

पानी और राखड़ी को जोहड़ कुएं में सिला दिया जाता है । नाई-पुरोहित नेग पाते हैं ।

कन्या के घर वेदी की मिट्टी को घर की सुहागन स्त्री परात में डालकर जोहड़ में सिला देती है । मौड़ को वर्षभर घर में सुरक्षित रखा जाता है । इसके साथ ही विवाह का कृत्य प्राय: पूर्ण हो जाता है ।

गालियां -- बांगरू बोली में इन्हें 'सींटणे' कहा जाता है । इनके गाये जाने के अनेकों अवसर हैं, जैसे उबटन मलने के उपरान्त स्नान करते समय, खोड़िया के अवसर पर, बारात की दावत के समय वर पक्ष के पुरुषों को गालियां दी जाती हैं । इनका प्रचलन केवल हास-परिहास तक ही सीमित है । डॉ० सरोजिनी रोहतगी ने इन गालियों का मनोवैज्ञानिक मूल्य स्थापित करते हुए लिखा है कि "मानव की काम-प्रवृत्ति जो समाज में बहुत नियन्त्रित और संयमित रहती है, उसके दमन से अस्वस्थ मानसिक विकारों के पैदा होने की संभावना है । यह गालियां उस काम प्रवृत्ति के प्रगटन के लिए समाज-स्वीकृत मार्ग

प्रस्तुत करती है ।"[1]

राम विवाह के अवसर पर तुलसीदास जी ने भी गालियाँ गवाई हैं ---

"पंचकौर करि जेवन लागे गारिगान सुनि अति अनुरागे ।
जेंवत देहि मधुर ध्वनि गारी, लै लैं नाम पुरुष अरू नारी ।
समय सुहावनि गारि विराजा, हंसत राव सुनि सहित समाजा ।"

"विवाह के इन सीटणों में प्रेमातिरेक का प्रकाश होता है । इनकी यह विशेषता है कि जिसे गाली दी जाती है, उसे भी रूचती है और सुनने वाले को भी अच्छी लगती है । वस्तुत: विनोद की पूर्णता इसी का नाम है ।"[2] हिन्दी के कवि ने गाली की महत्ता निम्न प्रकार से प्रदर्शित की है---

"फीकी पै नीकी लगै कहिये समय विचारि ।
सबको मन हर्षित करे ज्यों विवाह में गारि ।।"

बारातियों पर दृष्टि पड़ते ही स्त्रियाँ उनका उपहास करने के भिन्न-भिन्न तरीके सोचने लगती हैं । सुन्दर वर के साथ में उन्होंने वैसे ही बारातियों की कल्पना की थी । लेकिन बाराती उनकी कल्पना के विपरीत काले-कलूटे और मोटे-नाटे आए हैं जिन्हें देखकर ये बोल उठती हैं --

"पसेरे डट्ठे आए री पसेरे "

वे उन पर व्यक्तिगत आक्षेप भी लगाती हैं ।

1- डॉ0 सरोजिनी रोहतगी - अवधी लोक साहित्य, पृ0 185

2- डॉ0 शंकर लाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ0 192

"तौ तै धरमचन्द पतला तेरी जोरू मोट्टी
आप खावै घी चूरमा तन्नै जौ की रोट्टी"

बाराती इन कटाक्षों को हंस-हंस कर झेलते हैं । स्त्रियां हैं कि सींटणे का कोई मौका हाथ से जाने नहीं देतीं--

"मुरकियां वारो आयो री उंके मरोड़ घणी
सुन्ने का बाप बणायो री मरोड़ घणी"

उबटन के उपरान्त स्नान के समय भी सींटणे गाने का रिवाज है --

"म्हारे आंगण चीकड़ बे
कित डोल्या पाणी ?
म्हारा हलताड़ा न्हाया बे
उन डोल्या पाणी ।
आई झण्डू की बूह दै पड़ी बे
उसकी टांग नताणी
पड़ी ए पड़ी ललकारै बे
जणु दल्लो राणी
मोरी मैं तै लिकड़्या बे
जणू साम्मण का पाणी
म्हेस्यां मैं तै लीकड़ बे
जणू ग्याभण झोट्टी

आरते के समय भी हास परिहास का अवसर निकाल लिया जाता है --

"एक हाथ ताक्कू गोद बाप्पू कर ए सुहागण आरता ।

एक हाथ बैंची गोद चाच्ची कर ए सुहागण आरता ।

एक हाथ जुआ गोद बूआ कर ए सुहागण आरता ।"

खोड़िया की रात गाया जाने वाला सींटणा गीत द्रष्टव्य है[1]--

"देखो देखो है इस टुंडलिये का काम

टुंडलिये के हात नां पां सिर धरके टुंडा ले गया

देखो देखो टुंडलिया पराई मा नै ले गया

बदड़ा गया सै बेरात मायड़ नै टुंडा लैं गया

देखो देखो है टुंडा पराई मा नै ले गया ।"

'छन' सींटणे का ही एक प्रकार है । आकार में ये लघु होते हैं । किन्तु घाव ये गंभीर करते हैं --

"टोपी ओढ़ो डगमगी बराती ओ उस पै रख ल्यो जी मोर

मोर बेचारा क्या करै थारी जोरू नै ले गे भड़वे चोर ।

जिस थाली मैं जीमदे बराती हो उस थाली मैं हों छेद

एक ज मोरा दै पड़्या जी तमनै रात्यों पीट्या ए ज्हान के पेट ।"

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 192

मृत्यु गीत --

मानव जीवन से सम्बन्धित अन्तिम संस्कार मृत्यु है। अन्त्येष्टि गीतों की संख्या अन्य संस्कारों के गीतों की अपेक्षा नगण्य सी है। संभवत: इसका कारण यह रहा होगा कि अन्त्येष्टि एक अशुभ संस्कार है। मृत्यु के उपरान्त मानव का नश्वर शरीर इस जगत् से मुक्ति पा जाता है। मृत्यु होने पर चारों ओर शोक की व्याप्ति हो जाती है। अत: इस अवसर विशेष के गीत कारूणिक होते हैं। उर्दू साहित्य में तो मरसिया नामक मृत्यु गीत का प्रचलन अत्यधिक है।[1]

मृत्यु के गीत अधिकतर उस समय गाये जाते हैं जब तेरह दिनों के शोक में स्त्रियां 'मूहकाण' आती हैं। वे विलाप के साथ-साथ गीत गाती हुई शोक प्रकट करने आती हैं। पुरुष की मृत्यु पर आमतौर पर यह गीत गाया जाता है --

"हाय हाय बनड़ा पेच्ची आला

हाय हाय बनड़ा सेहरे आला"

मृत्यु के अवसर पर भजन गाने का प्रचलन है। ऐसा सम्भत: मृतात्मा की शान्ति के लिए किया जाता है। शोक गीत दु:खपूर्ण वातावरण को और अधिक कारूणिक बना देते हैं। जमाता का हिन्दू परिवारों में सबसे महत्त्वपूर्ण रिश्ता है। उसकी मृत्यु का गीत कितना हृदय द्रावक है, यह निम्न गीत में प्रस्तुत है[2]--

---

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 198

2- डॉ० शंकर लाल यादव, हरियाणा का लोक साहित्य, पृ० 198

"जब तौं घर तै लीकड़्या गभरू सैर जुआन

हो गया सौण कसौण गभरू सैर, जुआन

हाय हाय गभरू सैर जुआन

बाम्मै बोल्ली कोतरी दहणैं बोल्या काग

गभरू सैर जुआन, हाय हाय गभरू सैर जुआन

मारी क्यों ना कोतरी तैंनै मारूया कोन्या काग

हाय हाय बनड़ा पेच्ची आला

किन्नैं तेरी बांधी पालकी किनैं तेरा करूया सिंगार

हार हाय गभरू सैर जुआन

भइया बांधी पालकी भइया नै करूया सिंगार

हार हाय गभरू सैर जुआन

सुसरा का प्यारा हाय, साला का प्यारा हाय-हाय

चुड़ला की सोभ्या हाय, नाथ की सोभ्या हाय हाय

मेरी बेस्सर टूटी हाय, सासड़ का प्यारा हाय हाय"[1]

पुरूष का तेरहवां मृत्यु के बारहवें दिन और स्त्री का तेरहवें दिन होता है । तेरहमी के दिन यज्ञ सम्पन्न किया जाता है । तेरह या अधिक ब्राह्मणों का भोज होता है, उन्हें दान-दक्षिणा प्रदान की जाती है । घर में बुजुर्ग की मृत्यु पर उसके श्वसुर गृह से पगड़ी आती है । वृद्धा के पीहर से उसकी मृत्यु के उपरान्त पगड़ी आती है । 'विधवा विलाप' नामक गीत प्रस्तुत है जिसमें स्त्री का कारूणिक विलाप है --

---

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 199

"अरे मेरे करम के धारे जल गये अरू मौभी दूदाभ ।
अरे री मेरी मत रोवै मुझे लगा री लाल का दाग
मा अरी धौले-धौले पहरा कापड़े रांडा भेष भरावे ।
अरी चले सुनरा के मेरी नाथ उतरवावै
अरी देही जले जैसे कांच की भट्टी पकावै
अरी बिच्छू नै मार्या डंक लहर क्यूं ना आवै ।
अरी अपणा मन समझावण लागी, दो नैणा मैं भर आया पाणी
ए सासड़ ज्यब धंसूं मैहल मैं दरी बिछौना सून्ना
कुछेक दिनांकी ना है मनै सारै जलम का रोणा
अरे याणी थी ज्यब रही बाप कै मनै सोच कुछ ना था
इब क्यूं कहै दिन रात मुझे कोय एक दिनां की ना सै"

जिस प्रकार पति के मरने पर विधवा के लिए जीवन निस्सार हो जाता है उसी प्रकार पत्नी के निधन पर विधुर की गृहस्थी चौपट हो जाती है । विधुर के जीवन में नीरसता छा जाती है । बागरू लोकगीत में इसकी बड़ी सटीक व्याख्या हुई है[1] --

"डाल खटोल्ला बगड़ बिच सोया,
एक बार सुपने में आइये, प्यारी ए ।"

माता-पिता ने अत्यन्त लाड़-दुलार से अपनी दुहिता को पाला-पोसा था । बड़े अरमानों से उसकी डोली सजाई थी । वही कन्या कुछ ही अर्से बाद जब संसार ही से विदा हो गई तो उनके दुःख का पारावार नहीं रहा । उनके कातर हृदय पर शोक के बादल छा जाते हैं ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 199

"हाय-हाय बागां की कोयल

किणै तेरी बांधी पालकी, बाग्गां की कोयल

किनै तेरा कर्‌या ए सिंगार, हाय हाय बागां की कोयल

देवर जेठां नै बांधी पालकी, हाय हाय बागां की कोयल

धोर जिठाण्यां नै कर्‌या ए सिंगार, हाय हाय बागां की कोयल

मार मंडास्सा ले गेय बाग्गां की कोयल

बिन्दरावन के पास, हाय हाय बागां की कोयल

बिन्दरावन की गोपनी न्यूं कह्वै या कुण राणी जाय

हाय हाय बाग्गां की कोयल

अपणा बाब्ल की धीयड़ी हाय हाय बागां की कोयल

अपणै भाइयां की बाहुण हाय हाय बागां की कोयल

बाब्ल की धीयड़ हाय, भाइयां की बाहुण हाय

भावजां की प्यारी हाय, परहण की प्यारी हाय

पीहर की प्यारी हाय, हाय हाय बागां की कोयल हाय

हाय हाय बागां की कोयल ।"

हरियाणा में पितरों की शान्ति के लिए सदैव श्राद्ध तर्पण को महत्त्व दिया गया है । बागरू भाषी प्रदेश में एक वर्ष तक प्रति मास मृत्यु वाले दिन यज्ञ का विधान होता है । छः मास के उपरान्त 'छमाही' और वर्ष भर पश्चात् 'बरसोधी' मनायी जाती है, जिसमें रिश्तेदारों को बुलाया जाता है, यज्ञ करवाया जाता है और ब्राह्मणों को भोज दिया जाता है । विधवा को यदि किसी का लत्ता उढ़ाना होता है, तो इसी दिन उढ़ाया जाता है । विधुर-विवाह और अनाथ बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध भी इसी दिन निश्चित किया जाता है ।

---

§3§

-: निष्कर्ष :-

भारतीय संस्कृति में संस्कार अतुलनीय महत्त्व रखते हैं । जीवन के प्राथमिक चरण से अन्तिम चरण तक कुछ विशेष स्थितियों अथवा पद्धतियों का पालन ही संस्कार है । मानव के स्वाभाविक दोषों को परिष्कृत कर उसे गुणों में परिवर्तित कर पूर्ण पवित्र एवं कीर्तिवान बनाना संस्कारों का काम है । ये संस्कार परम्परा से चले आ रहे हैं । वैयक्तिक और पारिवारिक निर्माण में इन संस्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । भारतीय समाज में इन संस्कारों की जीवन्तता का श्रेय परम्परा से चले आ रहे लोकगीतों को जाता है ।

प्राचीन वैदिक ग्रंथों में इन संस्कारों की संख्या सोलह मानी गई है । लेकिन हरियाणा में जन्म, विवाह व मृत्यु ही प्रधान संस्कार माने गये हैं। प्रत्येक संस्कार को दो प्रकार से सम्पन्न किया जाता है -- पौरोहित्य व लौकिक पद्धति से । लौकिक पद्धति से संस्कारों को स्त्रियाँ गीतों द्वारा सम्पन्न करती हैं, जिनका मांगलिक महत्त्व होता है । ये संस्कार मानव के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है ।

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत सोहर कहलाते हैं । इन गीतों में प्रधानतया स्त्री-पुरूष की रति क्रीड़ा,गर्भाधान,गर्भिणी की शरीर यष्टि,प्रसव पीड़ा, दोहद,धाय बुलाना, नेग देना और पुत्र जन्म आदि का वर्णन होता है । पुत्र जन्म को प्राचीन समय में भी नाच-गाकर मनाया जाता था । हरियाणा में पुत्र जन्म पर जहाँ उल्लास प्रकट किया जाता है, वहाँ कन्या

जन्म को इतना शुभ नहीं माना जाता ।

धार्मिक और सामाजिक नियमों से आबद्ध स्त्री-पुरुष का पारम्परिक सम्बन्ध विवाह कहलाता है । विश्व की समस्त सभ्य-असभ्य जातियों में यह अत्यन्त उल्लास और उत्साह से सम्पन्न किया जाता है । इसी के माध्यम से मनुष्य गृहस्थानश्रम में प्रवेश करता है । इससे मनुष्य की पशु वृत्तियों का नियमन और नियन्त्रण होता है । जिससे उसे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, इहलौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति द्वारा सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है । इससे सन्तानोत्पत्ति होती है, जिससे वंश वृद्धि के साथ पितृ ऋण से भी मुक्ति मिलती है । मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है, जिसमें से आर्ष और दैव विवाहों के अतिरिक्त ब्रह्म, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षसी और पैशाच-- ये वैवाहिक प्रथायें हरियाणा में किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं ।

बांगरू बोली के विवाह के गीतों का फलक अत्यन्त विस्तृत है क्योंकि यह कुटुम्ब अथवा जाति के आनन्द का अवसर होता है । इस संस्कार का शुभारंभ सगाई से होता है । बांगरू विवाह गीतों में सगाई के गीत, ब्याह भेजने के गीत, टेवे के बीत, भात न्योतने के गीत, बान उबटने के गीत, स्नान के गीत, आरता, रतजगे के गीत, दीवा, मेंहदी, जकड़ी, बन्ना, बन्नी, दातुन, भात भराई के गीत, घुड़चढ़ी, खोड़िया, फेरों के गीत, विदाई के गीत और गालियां मुख्य हैं ।

मानव जीवन से सम्बन्धित अन्तिम संस्कार मृत्यु है । हरियाणा में इन गीतों की संख्या अन्य संस्कार गीतों की अपेक्षा नगण्य है । संभवतः इसका कारण यह होता होगा कि यह अशुभ संस्कार है । इस अवसर के गीत कारुणिक होते हैं । इस अवसर पर भजन भी गाये जाते हैं ।

::::

Chapter-4

चतुर्थ-अध्याय

बांगरू लोकगीतों में धार्मिकता

समस्त भारतीय जीवन धर्म से अनुप्राणित है । धर्म शब्द अत्यन्त व्यापक एवं विराट है । इसे एक निश्चित परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता। विद्वानों ने फिर भी इसे परिभाषित करने के अनेक प्रयास किये हैं । मीमांसा शास्त्र के अनुसार सत्प्रेरणा प्रदान करने वाला तत्व धर्म कहलाता है । वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद् अभ्युदय एवं अखिल कल्याणकारक तत्व को धर्म मानते हैं ।

"यतोऽभ्युदयानि: श्रेयससिद्धि: स धर्म: ।[1]

"वास्तव में धर्म मनुष्य के अन्त:करण की भावना-प्रधान विश्वासमयी वह स्थिति है जो उसे जीवन धारण करने एवं निरन्तर विकसित होने में सहायता करती है ।"[2]

धर्म की रक्षा करने पर धर्म स्वयं हमारा रक्षक बन जाता है -- "धर्मो रक्षति रक्षित: ।" गीता में भी स्वधर्म पालन को आवश्यक और परधर्म को भयावह बताया गया है ।

"स्वधर्मे निधनं श्रे परधर्मो भयावह:

1- वैशेषिक 1/1/2

2- डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, अवधी लोकगीत, समीक्षात्मक अध्ययन पृ० 484

धर्म भावना पर केन्द्रित होता है, श्रद्धा से पलता है और विश्वास से परिपुष्ट होता है । धर्म अर्थात् धारण करना - धारणात् धर्म इत्याहु । विश्व में जो नियम अथवा विधान अनेक व्यक्तियों को एकसूत्र में बांधकर रखें उसे धर्म कहते हैं । "धर्म उन सिद्धान्तों तत्वों तथा जीवन पद्धति को कह सकते हैं जिससे मानव समाज ईश्वर प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना एहिक जीवन सुखी बना सके, साथ ही मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा-मरण के झंझटों में न पड़कर शान्ति एवं सुख का अनुभव कर सके ।"[1] महाभारत में उल्लिखित है कि धर्म ही सत्पुरुषों का हित है, धर्म ही सत्पुरुषों का आश्रय है और चराचर तोनों लोक धर्म से ही चलते हैं --

"धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रयः सताम् ।
धर्माल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः ।।

धर्म ही लोक का आधार और जीवन है । इसी से लोक संग्रह होता है । इस धर्म के लक्षण मनु-महाराज ने बताए हैं --

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् 16192

अर्थात् धृति, क्षमा, मन का निग्रह, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, सत्य, विद्या और अक्रोध, ये दस धर्म के लक्षण हैं ।

महाभारत के अनुशासन पर्व अध्याय 265 में लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाले धर्म का नियम लोक यात्रा के लिए ही निर्मित किया गया है ।

1- कनउजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब, डॉ० सुरेश चन्द्र त्रिपाठी, पृ० 35

"लोकयात्रार्थ मेवेह धर्मस्य नियम कृत: ।
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च ।।

समाज शास्त्रियों के अनुसार जिस धर्म को हम मानते हैं उस पर हमारा विश्वास होता है । उसे हम अपना पथ प्रदर्शक मानते हैं । आधुनिक युग में यद्यपि लोक धर्म निरपेक्षता की बात करते हैं किन्तु जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए आज भी धर्म की महत्ता अक्षुण्ण है । अतएव धर्म उन शाश्वत सिद्धान्तों के समुदाय को कह सकते हैं जिनके द्वारा मानव समाज सन्मार्ग में प्रवृत्त होकर तथा उन्नतिशील बनकर अपने अस्तित्व को धारण करता है ।[1] लोकगीतों में भावना का प्राबल्य होता है और धर्म भी भावना प्रधान होता है । अत: दोनों का तात्विक साम्य भावना पर आधारित है । "ज्ञान, विद्या और युग की वैभवमयी संस्कृति सेवंचित एवं तिरस्कृत जनता के लिए लोकगीतों के भाव-भजन ही आत्मतोष प्रदान करने के लिए पर्याप्त हैं ।"[2]

भारतीय समाज में लोकधर्म में अनेक प्रकार के वैषम्य और विविधता पाई जाती है । उनके कर्म के प्रत्येक अनुष्ठान में अनेकानेक तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है ।किसी भी प्रकार का अनुष्ठान,संस्कार, उत्सव हों, कोई न कोई टोने-टोटके का विधान वहां अवश्व मिलेगा । तत्पश्चात् देवी देवताओं में पितरों की मृतात्माएं, भूत, प्रेत, हवाएं, मसान, विविध देवियां एवं अन्य देवताओं की उपासना होगी । इनके ऊपर सामान्य धार्मिकता का वातावरण रहता है । तब शास्त्रीय धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न होते हैं ।

1- कनऊजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब- डॉ० सुरेशचन्द्र त्रिपाठी, पृ० 352

2- मालवी लोकगीत, डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 306

वैदिक काल के पश्चात् समय के व्यतीत होने के साथ-साथ धार्मिक जीवन में भी शनैः-शनैः परिवर्तन होने लगा । यद्यपि आज के प्रचलित मत-मतान्तरों का भी आरम्भ वेदों से ही माना जाता है, किन्तु कई ऐसी बातों का समावेश धर्म में हो गया जो पहले नहीं था । वैदिककाल में इन्द्र, वरूण, अग्नि आदि महत्वपूर्ण देवता थे । कालान्तर में इनका स्थान ब्रह्म, विष्णु, महेश ने ले लिया । ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया लोग गूढ़ धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त समझने में असमर्थ होने लगे जिससे भक्ति मार्ग का अभ्युदय हुआ । तीन देवताओं के अतिरिक्त और भी अनेक देवी-देवताओं की स्थापना हुई और उनकी भक्ति-पूजा आदि की विधियां भी अलग-अलग हुई । वैष्णव, शैव आदि विभिन्न सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ । लोगों की श्रद्धा मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि में अधिक होने लगी । इसके साथ ही स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म, कर्मफल, पितृश्राद्ध आदि प्राचीन वैदिक धर्म के ही विविध रूपों पर श्रद्धा रखी जाती थी ।

इसके समानान्तर अनेक अन्य धर्म भी प्रचलित हो गये, जैसे बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई, शैव, सिद्ध, नाथ आदि ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म शब्द अत्यन्त व्यापक है । ग्रामीण समाज की सहज-सरल बुद्धि धर्म की इस शास्त्रीय व्यापकता को सरलता से ग्रहण नहीं कर पाती । वह अपनी श्रद्धा एवं आस्था के द्वारा उस सब को जो उसे परम्परा से प्राप्त होता रहा है अपना लेती है । पूजन-अर्चन, व्रत-उपवास और नाम-स्मरण ही उनकी समझ में धर्म है । इसीलिए एक ही घर अथवा परिवार में एक ओर राम, कृष्ण, शिव के उपासक मिलेंगे तो दूसरी ओर हनुमान, भूमियां, शीतला-माता, गौरी-शंकर तथा विभिन्न ग्रामीण देवी

देवताओं के भक्त भी मिलेंगे । अनेकानेक लोक-विश्वास, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि भी उनके धर्म में ही सम्मिलित हैं । जैनियों की 'अनन्त पूजा' और बौद्धों की 'चैत्य पूजा' का समावेश भी इनके धर्म में हो गया है । बांगरू लोकसमाज में मुख्यत: पंचदेवोपासना का उल्लेख मिलता है जिसमें माता, देवी, पितर, हनुमान और सती ये पांच लोक प्रतिष्ठित देवी देवता हैं[1] --

"पांच बतास्से पाना का बिड़ला ले माता पै जाइयो जी
जिस डाली पै म्हारी माता बैट्ठी वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पान्ना का बिड़ला लै देब्बी पै जाइयो जी
जिस डाली म्हारी देब्बी बैट्ठी वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पान्ना का बिड़ला लै हनूमान पै जाइयो जी
जिस डाली म्हारे हनूमान जी बैट्ठे वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पान्ना का बिड़ला लै पितरां पै जाइयो जी
जिस डाली म्हारे पित्तर बैट्ठे वा डाली झुक जाइयो जी
पांच बतास्से पान्ना का बिड़ला लै सत्ती राणी पै जाइयो जी
जिस डाली म्हारी सत्ती राणी बैट्ठी वा डाली झुक जाइयो जी।"

उपर्युक्त गीत में सभी आवश्यक देवी देवताओं के नाम आ जाने से इसे **सबका** प्रतिनिधि गीत मान लिया जाता है :-

पंचदेवोपासना के अतिरिक्त राम, कृष्ण व शिव की पूजा का यहां सर्वत्र विधान है । अयोध्या, मथुरा एवं हरिद्वार आदि तीर्थ स्थानों के प्रति

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 10

भी लोक समाज की अखण्ड आस्था है । बांगरू भाषी प्रदेश में राम की उपासना का प्रचलन अत्यधिक है । भगवान् राम यहां शक्ति, शील और सौंदर्य के प्रतीक माने जाते हैं । यद्यपि राम यहां के लोकप्रिय इष्ट देवता हैं तथापि उनकी मूर्तियां कम मिलती हैं । माता-पिता अपनी संतान का नाम 'राम-युक्त रखते हैं । अभिवादन के लिए 'राम-राम' लोकप्रिय उच्चारण है। चैत्र मास के शुक्ल-पक्ष में नवमी के दिन राम-जन्म का उत्सव मनाया जाता है । लोग इस दिन व्रत रखते हैं । आश्विन मास के कृष्णपक्ष नवमी से लेकर सम्पूर्ण कार्तिक मास तक इस क्षेत्र में कहीं न कहीं रामलीला का उत्सव चलता रहता है । राम से सम्बन्धित अनेक लोकगीत यहां प्रचलित हैं । विवाह के लोकगीतों में राम-सीता को वर-वधू का आदर्श माना जाता है --

"तेरा ताऊ ए खड़्या हथ जोड़ लाड्डो है कुछ मांग लिए/
मेरी सीता सी ढूंढी सास ससुर मेरा जसरथ सा/मेरा बालम सिरी भगवान्
छोट्टा री देवर लिछमन सा/अजुध्या सी नगरी जै राज रजां ।"

किसी भी कार्य का शुभारम्भ राम-नाम के स्मरण से किया जाता है । चूंकि हरियाणा कृषि प्रधान प्रदेश है, इसलिए किसी भी कार्य का प्रारम्भ राम के आशीर्वाद से होता है । राम के अतिरिक्त लक्ष्मण-भरत लोक में आदर्श भाई के रूप में प्रचलित हैं । कौशल्या आदर्श सास और दशरथ आदर्श ससुर के रूप में स्थापित हैं । हनुमान वीरता एवं पराक्रम के प्रतीक के अतिरिक्त राम के अनन्य सेवक हैं । राम की स्थापना आदर्श देवता के रूप में हैं । दृष्टव्य है एक भजन जिसका प्रसंग सीता वनवास है । सीता पृथ्वी में समा जाती हैं। राम खड़े देखते रह जाते हैं । सीता के केशों की

'डाब' बनती है कालान्तर में जिसे सूर्य व चन्द्र ग्रहण के अवसर पर खाद्य पदार्थों में डाला जाता है, जिससे ग्रहण का दोष नहीं लगता ।

"राम र लछमन दशरथ के बेटे दोनों जै बनवास
ए जी सिया राम मिलो भगवान् ।
एक बण चाले दोय बण चाले तीजे लग आई प्यास
छोट्टा सा छोहरा गऊवां चरावै एक घूंट नीर पिलाय
ना मेरै पै लोट्टा ना मेरै पै झारी कैसे ल्यावूं जल नीर
छोट्टी सी बादली रिमझिम बरसै भर दिया जोहड़ अरक्यार
इब मेरै पै लोट्टा इब मेरै पै झारी इब पियो जल नीर
किसका तूं बेट्टा किसका तूं पोत्ता कोण तुम्हारी माय
बाप दादे का नायं न जाणूं सीता हमारी माय
चालो रै ले के आगै आग्गै हमनै दिखावो थारी माय
नहाय धोय सीता खड़ी खड़ी सुकावै केस
खड़ी ए कदम की छांय
ढक ले री माता केस तुम्हारे आगे सिरी भगवान्
इसे पति का मैं मुखड़ा नां देखूं जिसनै दिया बनवास
फट ज्या ए धरती समा ज्या ए सीता खड़े लखावै भगवान्
भाज लूज के चुड़्लो ए पकड़्यो चुड़लै की होगी डाब
चांद सुरज मैं भिखा पड़ैगी जिब चाहिएगी डाब
इस काया पर दूब जमैगी चरै राम की गाय
इस काया पै ताल खुदैगे, न्हावैं सिरी भगवान्
इस काया पै रसोई बणैगी जीम्मैं सिरी भगवान् ।"

हनुमान शक्ति वीरता एवं पराक्रम के देवता हैं ।

लोक मानस में वे भूत-प्रेत आदि को दूर करने वाले सर्वाधिक लोकप्रिय देवता हैं ।

"भूत पिसाच निकट नहिं आवै
महाबीर जब नाम सुनावैं"

हनुमान चालीसा सभी को कण्ठस्थ है । लोग बजरंगबली का नाम लेकर अपना कार्य आरम्भ करते हैं । पहलवान अखाड़ों में भगवान् हनुमान का स्मरण करके अपनी शक्ति वृद्धि की कामना करते हैं । अनेक तन्त्र-मन्त्रों के भी ये देवता हैं। मंगल का व्रत हनुमान की आराधना के निमित्त किया जाता है । हनुमान की मढ़ी प्रत्येक गांव में मिलती है । गांव का यह परमप्रिय देवता है । इनकी स्तुति में मनोवांछित की पूर्ति हेतु रात्रि जागरण होता है जिसमें अनेक कीर्तन भजन होते हैं[1] --

"किस नै जाए अरजन पाण्डे किस नै जाए हनुमान
हनुमान पियारे ये दल किधर समाय
कुन्ती जाए अरजन पाण्डे, अंजनी जाए हनूमान
हनुमान पियारे ये दल किधर समाय ।
क्या पै बैट्ठे अरजन पाण्डे क्या पै बैट्ठे हनूमान
चन्दन चौकी अरजन पाण्डे लाल पिलंग हनूमान ।
क्या पैहरेंगे अरजन पाण्डे क्या पैहरें हनूमान
खद्दर पहरें अरजन पाण्डे लाल लंगोटा हनूमान

1- हरयाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ08

के खावैंगे अरजन पाण्डे के खावैं हनूमान

शक्कर चावल अरजन पाण्डे सरस मलीदा हनूमान

क्या मैं सुमिरैं अरजन पाण्डे क्या मैं सुमिरैं हनुमान

सुख मै सुमिरैं अरजन पाण्डे, भीड़ पड़ी मैं हनूमान

जैसे कारज राजा राम चन्दर के सारे ऐसे म्हारे (घर वाले का नाम) के सार/हनूमान पियारे ये दल किधर समाय ।"

हरियाणा भगवान् कृष्ण की लीलाओं का प्रमुख स्थल रहा है । उनका बाल्यकाल यहीं बीता और फिर वे कुरूक्षेत्र में महाभारत के युद्ध में अवतरित हुए । अर्जुन को उन्होंने गीता का उपदेश दिया । भगवान् कृष्ण लोक के आराध्य देव हैं । भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन कृष्ण जन्मोत्सव समस्त हरियाणा प्रदेश में धूमधाम से मानाया जाता है । दीपावली के बाद गोवर्धन पूजा का सम्बन्ध कृष्ण से ही है । होली के गीतों में भी कृष्ण के रसिक रूप का उल्लेख गोपियों के साथ होता है । हरियाणवी लोकमानस में कृष्ण के पुरुषार्थ के प्रति गहन आस्था विद्यमान है । उनका रसिक रूप गौण है । कृष्ण भक्ति के अनेकों भजन यहां प्रचलित हैं --

यशोदा का सत् देखने भगवान् भेस बदलकर आए । किन्तु यशोदा को कंस के आने का भय था । वास्तविकता ज्ञात होने पर यशोदा कृष्ण को बाहर लाती है --

"कुण से देस तै आए जी बाबा

अलख जगाय दई मगरी मैं

कुण से देस के रैहणे वाले

हरसिवसंकर गोकल में

इतणी क सुण के आई जसोदा

आण खड़ी दरवाज्जे में

भर मोतियन का थाल वा ल्याई

लै बाबा तेरी झोली मैं

मेरी तो भिक्षा माता मन्नै ना चांदी

ले जाओ अपणे मंदिर मैं

च्यार खूंट का सुन्ना र चांदी

भर्या पड्या सै मेरी झोली मैं

जल्दी सी ल्यावो माता जल्दी सी ल्यावो

इस बालक नै बाहर ल्यावो

मेरा तो बालक बाबा कल जलम्या सै

होस नहीं जी अपणे तन की

तेरी नगरी मैं बालक बतेरे

समज करो जी अपणे मन की

जल्दी सी ------------------ ।

काला तो पीला बाबा रंग तुम्हारा

सकल बणी बादल जैसी

मेरा तै बालक देख डरैगा

निजर लगै किसी डाक्कण की ।

जल्दी ------------------ ।

च्यार खूंट नै योई डर्या दै

यो बालक नईं डरनै का

इतणी क सुण के आई जसोदा

मस्तक तिलक विराज रहे

भुजा तै भुजा मिलाई बाबा नै

चरणां सीस झुकाय रहे ।"

कृष्ण की आराधना में भक्त अपना शरीर अर्पण करने को तत्पर है --

"पत्थर हो तो टुकड़े च्यार बणा दूं

किरसन का मैहल चिणा दूं रे अणकारी मन

तनै मैं कैसे समझावूं रे अणकारी मन

काठ हो तो आरी बीच चिणा दूं

किरसन के किवाड़ लगा दूं रे अनकारी मन

फूल हो तो सूई बींच पड़्यो दूं

किरसन की माला बणा दूं रे अणकारी मन

माणस हो तो सन्तां बीच बैठा दूं रे अणकारी मन

चन्द्र रखी और बाल किरसन

हरी के चरणां मैं चित्त ला दूं रे अणकारी मन।"

कृष्ण अपने भक्तों की पुकार सुनकर अविलम्ब रक्षार्थ आते हैं । कृष्ण के अनन्य भक्त नरसी के पुत्र नहीं था । उसकी पुत्री हरनन्दी के घर पुत्र का विवाह था । हरनन्दी भात न्यौतने आती है लेकिन भाई की कमी उसे अखरती है । कृष्ण स्वयं नरसी के पुत्र के रूप में अवतरित होते हैं । तृतीय अध्याय में इस विषय का गीत उद्धृत किया गया है ।

हरियाणवी जनजीवन में भगवान् शिव की लोकप्रियता उनके भोलेपन और फक्कड़पन के कारण अधिक है । किसी भी गांव अथवा कस्बे में शिवमन्दिर अवश्य मिल जाएंगे । स्थाण्वीश्वर का स्थाणुशिव मन्दिर और रोहतक का गोकरण शिव-मन्दिर देश के प्राचीनतम शिवालयों में से एक हैं ।

माघ शुक्ल त्रयोदशी को शिवरात्रि का व्रत किया जाता है । इस पर्व को शिवतेरस कहते हैं । स्त्री-पुरुष समीपस्थ शिवालय में बिल्व-पत्र, बेर, दूध, नारियल, मिष्ठान्न मेवा आदि चढ़ाते हैं और दिनभर फलाहार करते हैं । सोमवार के व्रत शिव को प्रसन्न करने के लिए किये जाते हैं । सावन के महीने में भक्त प्रतिदिन शिव-लिंग पर बिल्व-पत्र अर्पित करते हैं । ऐसा विश्वास है कि भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेय का घर रोहतक ही है । शिव-पार्वती से सम्बन्धित अनेक कहानियां लोक में प्रचलित हैं । इनकी उदारता की द्योतक लोक में प्रचलित निम्न उक्ति है --

"जित महादेव पार्वती का जोड़ा
कदे ना आवै तोड़ा ।"

शिव जी का वर्णन लोकगीतों में भी हुआ है --

"शिव संकर तेरी आरती
मैं बार-बार गुण गांवती
ताता पाणी तेल उबटणा
हर नै मसल न्हुआवंती"

स्वामि कार्तिकेय की पूजा तेल और सिंदूर चढ़ाकर की जाती है । भारत में स्वामि कार्तिकेय का एकमात्र मंदिर इसी प्रदेश के पेहवा कस्बे में बताया जाता है । भैरव पूजा का प्रचलन भी कार्तिकेय के साथ है । भैरव शिव जी के गण थे और कार्तिकेय पुत्र ।

गणेश विघ्न विनाशक और मंगल की स्थापना करने वाला मुख्य देवता है । किसी भी अनुष्ठान का आरम्भ करने से पूर्व गणेश पूजन अनिवार्य होता है । 'आल्ह' खण्ड में भी कवि ने पहले गणेश की आरती की है --

"जयगणनायक जयति विनायक
जयसुखदायक लम्बोदर ।"

§आल्हखण्ड, संजोगिन का स्वयंवर पृ0 5§

गणेश जी के पृथक मन्दिर तो नहीं मिलते किन्तु शिवालयों एवं शिव मन्दिरों में शिव-पार्वती के साथ गणेश की मूर्ति स्थापित मिलती है । गणेश जी की आरती और भजन लोक में प्रचलित हैं --

"गौरी नन्द गणेस किरसन परनाम करो
माता जिनकी पारबती है जिनके पिता महेस
किरसन परणाम् करो
सीस गजानन्द मुकुट बिराजे
गल पुसपों का हार बी साजे
सुन्दर बदन सुरेस, किरसन,परनाम करो ।
मांगत मेवा भोग लगत है
भर लड्अन का थाल
बिघन हरण मंगल के दाता
काटो नाथ कलेस किरसन परनाम करो ।
सब संगतो यहियो अरजा
धरो सीस पर हात, किरसन परनाम करो ।"

भाद्रपद में गणेश चौथ तथा माघ में सकट चौथ का व्रत भी गणेश पूजन के लिए ही किया जाता है ।

बांगर प्रदेश के जन जीवन में शिव के साथ-साथ शक्ति की उपासना भी विभिन्न रूपों में प्रचलित है । देवी की पूजा चैत्र मास में अधिक होती है । आमतौर पर देवी के मन्दिर हर गांव में नहीं मिलते । ये मन्दिर केवल ऐसे स्थानों पर बने हैं जहां मेले लगते हैं । चैत्र मास माता धौकने का विशेष महीना माना जाता है । रोहतक जिले के बेरी कस्बे में 'बेरी वाली माता' जिसका नाम 'भीमेश्वरी' है का बड़ा भारी मेला लगता है 'माता भीमेश्वरी' के भजन गाये जाते हैं --

"मुझ सेवक की लाज राख जगदम्बा बेरी वाली है
मात संत हितकारी करी तन्नै सिंह सवारी ए 'हे'
छत्र सुवर्ण साजे नगरकोट तज मेले के दिन
बेरी आन बिराजे ।।"

अधिकतर देवियां रोग विषयक होती हैं । जैसे शीतलामाता अथवा गणवाली देवी, कण्ठीमाता और मसाणी । इनके विशेष दिन चैत में सोमवार और कहीं-कहीं मंगलवार है । जिला गुड़गांव के ग्राम कुतुबपुर में 'बुढ़ोमाता' का मेला बुद्धवार को भरता है जबकि गुड़गांव की 'ललिता माता' प्रति सोमवार पूजी जाती है ।

वैसे प्रत्येक गांव में पक्की ईंटों की छोटी सी मढ़ैया बना ली जाती है । जिसमें मूर्ति स्थापित नहीं होती अपितु दीपक रखने का स्थान होता है । वहीं जोत जलाकर स्त्रियां पूजा कर लेती हैं ।इसके अतिरिक्त वह मन्दिर सबसे शुभ माना जाता है जो चार रस्तों के बीच में स्थापित हो । ऐसे मन्दिर वाली माता को चौरस्ता माता कहते हैं । माता का गीत गाया जाता है[1] --

---

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 07

"माता कौं नै तेरा बाग लगाइया
कौं नै तेरा सींच्या सै पेड़ ।
सोवै सोवै हे मिजाजण माता नींद मैं ।
माली के नै बाग लगाइयां
माल्लण नै सींच्या सै पेड़
सोवै सोवै हे मिजाजण माता नींद मैं
माता कौं नै तेरी डाल निवाइया
कौं नै तोड़े सैं री फूल
सोवै सोवै हे मिजाजण माता नींद मैं
माली के नै डाल निवाइया
हेरी भिर माल्लण नै तौड्या सै फूल
सोवै सोवै हे मिजाजण मात्ता नींद मैं ।"

रोग सम्बन्धी देवी-देवताओं में प्रमुख शीतला माता है । शायद ही ऐसा कोई गांव हो, जहां कि स्त्रियां शीतला देवी के गीत न जानती हों । वस्तुत: स्त्रियों की भक्ति और श्रद्धा जितनी देवियों के प्रति है, उतनी देवताओं के प्रति नहीं है । रोग, अपशकुन, आपत्ति आदि के समय स्त्रियां भगवती, कालीमाई, देवीजी तथा कितनी ही अन्य देवियों की मनौती मानती जाती हैं । इन देवियों में शीतला माता की सर्वाधिक ख्याति इसलिए है कि वे रोगी को रोगमुक्त करती हैं । चेचक को लोकधर्म में शीतला कहा गया है, चेचक निकलने पर तीव्र ज्वर चढ़ता है, किन्तु इसका नाम इसके विपरीत 'शीतला' रखा गया है । डॉ० तारापुर वाला का मत है

कि मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयंकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है । जैसे रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को महाराजा कहकर पुकारते हैं । इसी प्रकार भयंकर बीमारी को शीतला कहने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं ।[1]

शीतला माता का वाहन गधा और कुम्हार परम भक्त माना गया है । एक गीत प्रचलित है जिसमें वर्णित है कि एक कुम्हार के सन्तान नहीं होती । वह देवी से प्रार्थना करता है कि उसके दो पुत्र हों, जिससे एक वह देवी को अर्पित कर सके । उसे देवी का वरदान मिलता है कि और वह पुत्रोत्पत्ति होने पर एक पुत्र देवी को अर्पित कर देता है । माता उसके बलिदान पर प्रसन्न होकर उसके पुत्र को पुनः जीवित कर देती है । गीत प्रस्तुत है --

"परजापत नै दे दी ध्याई
हो दरबारी जात कुम्हार भवन मैं टेया सीस
तेरे चूकै धरम कै न्याव मंदर कै बीच
दो पुत्तर दे जालामाई एक चढ़ाऊं तेरा भवन
  दो पुत्तर दिये जालामाई
जिब जाला की करी तियारी, घर मैं नाट गयी कुम्हारी
घर मैं नाट गई कुम्हारी दरबारी कुणबा सै पाटै
छः महीने पैहला पाट्या आया भवन मैं डाटया ना डाट्या

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 106

दुर्गे ले सीस मैं कोन्या नाट्या

धड़ तै सीस कर्या जिब न्यारा बही रकत की धार

पड़्या सबेरा हुआ उजाला आ पण्डो नै खोल्या ताला

पण्डे कैं बड़ा हो ग्या चाला

दिखा सकत ना मुंदर्या ताला

धौलागढ़ तै चली भवानी

अपणा भगत का सीस लगाया बांह पकड़ बैठ्या कर दीना

अरे भई भगतो यो तो जात कुम्हार और मत करियो रीस।"

माली और मालिन भी इनके भक्त माने गये हैं।

माता का निवास नीम के वृक्ष के नीचे होता है। यही कारण है कि नीम की टहनी से रोगी को झाड़ा जाता है। शीतला माता के प्रकोप वाले घर में तलना और छौंक देना निषिद्ध है। अधिक तड़क भड़क वाले कपड़े पहनना वर्जित है। देवी के गीत गाये जाते हैं --

"माता ! बालक छैल गाल मैं खेलैं चढ़गा ताप

माता ! लकड़ती माता न्यूं लकड़ जणों बाजरियां की हुणियार

माता ! भरदी माता न्यू भरै जणों पीलहां की हुणियार

माता ! ढलदी माता न्यूं ढल ज्णों पालै ज्यूं झड़ जाय।"

चैत मास के प्रथम पक्ष में प्रथमा से सप्तमी तक मातृ पूजन होता है। प्रतिदिन सन्ध्या समय मीठे चावल पकाकर अगले दिन के लिए रख दिया जाता है, जिसे 'बासिड़ा' कहा जाता है। दूसरे दिन प्रात: देवी की इससे धोक दी जाती है। पूड़े-गुलगुले बनाये जाते हैं। पूजन के सातवें दिन 'सीली सातम' मनाई जाती है --

"करूँ कढ़ाई गुलगुला सेढ़ल माता धोकण जाय
इब म्हारी सेढ़ल माता राज्जी होय
दाद्दा दाद्दी राज्जी होय ।"

स्त्रियाँ देवी के व्रत रखती हैं और देवी के गीत गाती हैं । गाँवों में देवी के अनेकों ऐसे भक्त होते हैं जिनपर देवी आती है । देवी को प्रसन्न करने के लिए रतजगे किये जाते हैं । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में देवी की महिमा, देवी के प्रति भक्ति, बलिदान आदि गीतों की प्रधानता होती है[1] --

"दैवी के पर्वत चढत्याँ चौला फाट्या है माय
कै गज फाट्या कै गज रह्या है माय
नौ गज फाट्या नौ गज रह्या है माय
काहे की सूई मँगाई काहे का धाग्गा री माय
सार की सूई मँगाई रेशम का धाग्गा री माय
सीम्मैगा दरजी का री लड़का बहुए बैनानी री माय
री पैहरैगी मेरी आज भवानी री माय
मिरगा नैणी धौलै गढ़ की राणी री माय
मेरी गढ़ डाटणी सुन्दर राणी है माय
देवी खात्तर पीले-पीले कर्णफूल ल्यावै
ल्यावैगा सुनरे का लड़का री माय
बहुए बैनानी पहरैगी री माय ।"

1- हरियाणा के लोक गीत; राजा राम शास्त्री, पृ0 8

देवी के धामों में 'ज्वाला जी' देवी के धाम 'नगरकोट' की विशेष मानता है। एक गीत प्रस्तुत है जिसमें ज्वाला देवी ने विधर्मी यवनों की सेना को परास्त किया है --

"नगरकोट में बासा राणी, तेरी कला कुल जग ने जाणी
कथा बखाणे बिरमा ज्ञानी, दुआरे तेरे पीपल री खड़्या
मुगला उतर्या सतलज नद्दी, सुत्ती हो उठ जाग री नन्दी
लौकड़ लही खड़्या है झंडो, जिब जाला ने चकर चलायी
फौज मुगल की काट बगाई, मुगल कहे मने बकसो माई
जिब जाला की करी चढ़ाई, खीर खांड के थाल भराई
धजा नारियल लेकर आए, मुगला भेंट ले कैरी आया
जिब लौकड़ ने कथा सुणाई, सुत्ती उठ जाग री माई
मुगल भेंट भवन तेरे में ल्हें री खड़्या
धजा नारियल भेंट चढ़ाई।
मुगल कहवे मने बकसो माई, लौकड़िया तेरी आग-वाणी खड़्या।"

बेरी वाली 'भीमेश्वरी जगदम्बा' देवी और 'ज्वाला जी' एक ही हैं। इनके दो सेवकों लौकड़िया और भैरों का वर्णन लोकगीतों में मिलता है--

"अजी सुन्दर गल माल मात.
तेरी सुन्दर सिंह सवारी है
सुन्दर लौकड़िया खड़्या तेरे
सुन्दर भैरों बलकारी है।"
सुन्दर चौरासी भवन तेरे
सुन्दर जगजोत बिहारी है
सुन्दर तेरे चरण निरख माता
दुरवासा रिसी बलिहारी है।"

'लौकड़िया' का वर्णन अन्य प्रदेशों में भी मिलता है । ब्रज प्रदेश में इसे लांगुर वीर के रूप में जाना जाता है । देवी का यह बांया हाथ है । किन्तु ब्रज में कहीं-कहीं इसका अन्य अर्थ पर पुरुष भी है ।

"अनोखी मालिनी मैना करै तौ डरपै का एकूं
तेरे हाथ को मूंदरा, लांगर दियौ गढ़ाई
सिर तेरे की चूंदरी, मैना लांगर दई रंगाई ।"[1]

अष्टमी के दिन देवी की धोक खीर से दी जाती है । देवी को धोकनेवाले घरों में इस दिन दही जमाना वर्जित है । लोक विश्वास है कि ऐसा करने से गाय-भैंसों का दूध सूख जाता है । कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मेले लगते हैं । गुड़गांव की 'काली' और बेरी की 'दुर्गा' देवी के मन्दिर में प्रत्येक पखवाड़े की अष्टमी तथा शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी व अमावस को पूजा का विधान है । कार्तिक मास में दशहरे से दो दिन पूर्व और चैत्र मास में नवमी से एक दिन पूर्व दुर्गाष्टमी मनाई जाती है । इन नवरात्रों को भक्तजन व्रत रखते हैं और पूजन अर्चन करते हैं । प्रथमा को जौ बोए जाते हैं जिसे अष्टमी तक बढ़ाया जाता है । हरियाणा के विभिन्न भागों में इस दिनमेले लगते हैं। और दुर्गा पूजा होती है । प्रस्तुत है माता की आरती --

"पहल सारदा तोहे मनाऊं तेरी पोथी अधक सुनावूं
इतना बूंटक सग्या भाई राजा चन्द भगत तेरे भाई
अधबिच गेरया भंग नीच घर नीच भरमाया

1- डॉ० सत्येन्द्र-ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० 258-59

अरे भगत नै बैकुंठों बढ़ाया

धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसै नै पाया

मोरधज सै राजा भारी लड़का लिया बला

सीस पर धरी करौती

अरे भगत नै हेल्ला दे बलवाया

धर रे दीनानाथ तेरा पार ना किसी नै पाया

धानूं बोया खेत बीज नै आधे चाब्या

लोग करैं गिल्लान अपरा तोता भाया

अरे भगत नै बिना बीज निपजाया

देण अवा लग्या आंच अवा मैं घाल्ली

मंझारी के बच्चे चण दिये च्यार कूंट के करै कुम्हारी

कुल कै लाग्या दाग आप उतरै गिरधारी

अरै भगत नै बच्चे का बरतण काच्चा पाया

धर रै दीनानाथ पार तेरा ना किसै नै पाया ।

तात्ता खम्ब करया राम तेरा कित ग्या भाई

देख खम्ब की राह खड्या तुरग बरहाई

अरै खम्ब पै कीड़ी नाल दरसाया

धर रै दीनानाथ पार तेरा किसी नै ना पाया

तुरकमान आथूणी गाज्जै नौबत झड़ै रात दिन आग्गै

लछमन कथै कुम्हार सकल पंचा कै आग्गै

धर रै दीनानाथ पार तेरा ना किसी नै पाया ।"

गौरा पार्वती ग्रामीण स्त्रियों की बड़ी अनुकूल, देवी हैं, दुखियों पर कृपा

करने के लिए ही वे अपने पति शिव के साथ मृत्युलोक का भ्रमण करने के लिए आती हैं। लोकगीतों में इनके अनेकों प्रसंग आते हैं। गौरा की पूजा शिव के साथ ही होती है। चैत्र मास के पहले नौ दिनों में देवी पूजन होता है। इनमें से तीसरा दिन गणगौर के रूप में मनाया जाता है। ऐसा लोक विश्वास है कि इस दिन गौरा का विवाह हुआ था। एक अन्य मत इस दिन उनके गौने की पुष्टि करता है। अविवाहित कन्याएं आदर्श पति पाने के लिए इस दिन उपवास करती हैं। गौरा कहीं 'पार्वती' के रूप में कहीं 'सती' के रूप में और कहीं 'दुर्गा' के रूप में लोकसाहित्य में अवतरित हुई हैं --

"हरा-भरा गोबर पीली-पीली माटी

लीप चलूं आंगणा

देबी के मट पै भीड़ हुई थी बिछड़ गै बलमा

सवा रिपिये की धजा चढ़ाऊँ जो घर आवै बलमा।"

उपर्युक्त देवी देवताओं के अतिरिक्त लोकसमाज अपने स्थानीय देवी देवताओं की प्रतीक पूजा करता है +- डॉ० सत्येन्द्र ने लिखा है कि ये व्रतानुष्ठान ही वास्तविक लोकतत्त्व से युक्त लोकमानस का रूप प्रस्तुत करते हैं। ये वस्तुतः हमारी संस्कृति की नींव है और इसमें अत्यन्त प्राचीन अवशेष आज भी विद्यमान है। लोक जीवन में इन सभी त्योहारों का विशेष स्थान है। भारतीय संस्कृति रूपी स्वास्तिक की एक भुजा यह लोक जीवन और आचार है जिसके अनुष्ठानों में मांगलिक भावनाओं से ओत-प्रोत समृद्धि की भावनाएं व्याप्त हैं। भैरों, भुंइया, क्षेत्रपाल, खेरापति आदि प्रमुख लोक-प्रतीक (देवता) हैं। मूर्तिपूजा यहां अपेक्षतया कम दृष्टिगोचर होती है।

प्रतीक पूजा के रूप में सर्वाधिक प्रचलित देवता 'भूमिया' अथवा {भुइंया} है, जिसे 'भूमिया' कहा जाता है । गांव में अन्य किसी देवी-देवता की स्थापना चाहे न हो, किन्तु भूमिया की मढ़ी अवश्य होगी । लोक प्रचलित विश्वास है कि गांव बसने के उपरान्त प्रथम स्वर्गवासी बुजुर्ग के स्मारक के रूप भूमिया की मढ़ी बनाई जाती थी । इसकी स्थापना गांव के बाहर ही होती थी । किन्तु चूंकि कालान्तर में ग्राम विस्तार होता गया है, इसलिए कई गांवों में यह गांव के मध्य आ गई ।

प्रत्येक तीज त्यौहार और शुभ कार्य के अवसर पर भूमिया पर दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं । पुत्र जन्म का अवसर हो या शादी ब्याह का भूमिया को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है । भूमिया का यह गीत गाया जाता है --

"ऊँची तेरी खाई ऊँचा नीचा कोट
ढाणा बसै बाबा भूमिया की ओट
काहे का घी बलै सारी रात
अगड़ चंदन का दिवला निर्मल बात
सुरही को घी बलै सारी रात
तेरी बाबा भोमिया उत्तम जात
तू जनमो छट्ट चौदस की रात
बेटियां को बाबा भाइ अर बाप
बहुआं को सै बाबा रिछपाल"

घुड़चढ़ी के अवसर पर वर गाँव की परिक्रमा करने के उपरान्त 'भूमिया' की धोक मारने आता है । शादी के पश्चात् भी वर-वधू यहाँ आशीर्वाद लेने आते हैं । इसके उपरान्त विवाह सम्बन्धी अन्य रस्में पूरी होती हैं । स्त्रियाँ गीत गाती हैं --

"सिर तेरै चीरा भैंसरू के भैयाँ
कोई जोड़ी रही झड़ लाग
गल तेरै कण्ठी भैंसरू के भैया
कोई जोड़ी रही झड़ लाग ।"

'भूमिया' की पूजा दीपक जलाकर और गोबर का साथिया बनाकर की जाती है । सन्ध्या समय इनका पूजन होता है । 'भूमिया' हरियाणा प्रदेश का सबसे अधिक माना जाने वाला देवता है । इसकी पूजा के बिना कोई कार्य पूर्ण नहीं होता । पाँच महत्त्वपूर्ण देवी-देवताओं में से एक बाबा भूमिया है --

"पाँच बतास्से पान्नाँ का बिड़ला
ले भैयाँ पै जाइयो जी
जिस डाली म्हारा भइयाँ बैठ्या
वा डाली झुक जाइयो जी ।"

भारतीय धर्म अत्यन्त प्राचीन है और उसी प्राचीन धार्मिक परम्परा का अनुसरण बाँगरू भाषी हरियाणा प्रदेश के लोग कर रहे हैं । प्राचीन आर्यों के अनुसार हरियाणा में सूर्य और चन्द्र की पूजा का प्रचलन आज भी विद्यमान है । सद्यः प्रातःकाल में सूर्य की उपासना उसे जल और अर्घ्य चढ़ाकर की जाती है --

"सूरज देवता जग्गम-जग्गा लीली के असवार
जल हमारे हाथ में धर्म-पुण्य तेरे पास"

रविवार का उपवास सूर्योपासना के उपलक्ष्य में ही किया जाता है । इसका उद्देश्य पतिव्रत धर्म की रक्षा करना है ।

सूर्य की तरह चन्द्र भी पूजा-प्रतीक के रूप में स्थापित है । चन्द्र के दर्शनोपरान्त जल का अर्ध्य देकर अनेकों व्रत खोले जाते हैं --

"मैं मन कोरी राणी
ले चन्दरमा पाणी"

इन व्रतों में श्रावण में तीज का व्रत, भाद्रपद में कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत, अश्विन पूर्णिमा कार्तिक में करवा चौथ एवं अहोई आठम् आदि आते हैं । सौभाग्य के लिए किये गये सभी व्रतों में चन्द्रमा का पूजन होता है । शुक्लपक्ष में चौथ के चन्द्रमा को देखना अशुभ माना जाता है । तुलसी ने मानस में इसका उल्लेख किया है --

"सो परनारि लिलार गुसाईं-तजउ चउथि चंदा की नाईं"

प्रकृति पूजा में सूर्य-चन्द्र के अतिरिक्त पृथ्वी, तुलसी, पीपल के वृक्ष की असीम महत्ता है । सभी हिन्दू शास्त्रों में पीपल को पवित्र वृक्ष मानकर उसकी पूजा का विधान है । पीपल के वृक्ष प्रत्येक मन्दिर के प्रांगण में अथवा उसके निकट होते हैं । स्त्रियां जल से उसे सींचती हैं और चावल, रोली, गुड़ आदि चढ़ाती हैं । हाथ से कते सूत को वृक्ष के तने पर लपेटते हुए उसकी परिक्रमा की जाती है । कच्चा दूध चढ़ाया जाता है । पीपल के वृक्ष की पूजा से मनवांछित वरदान की पूर्ति होती है । इससे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है और धन वृद्धि होती है । जहां सोमवार पीपल पूजन का विशेष दिन है वहीं रविवार को इसका पूजन-अर्चन वर्जित है । पीपल को साक्षात् भगवान् का शीश माना जाता है । पीपल की स्तुति में गीत गाये जाते हैं --

"पीपल ना काटियो रे सीस भगवान का
बीरा धरम कमाइयो रे भजन भगवान् का
केला ना काटियो रे भुजा भगवान् की"

पीपल के अतिरिक्त बांगरू भाषी प्रदेश में तुलसी की पूजा का प्रचलन है । इसे 'माता' की संज्ञा प्रदान की गई है । तुलसी-क्यारा प्रत्येक घर में मिलता है । स्त्रियां इस पर प्रतिदिन जल चढ़ाकर रोली से टीका करती हैं और दीपक प्रज्वलित करती हैं । तुलसी पत्र-दल को पवित्र मानकर इसे प्रसाद और चरणामृत में डाला जाता है । मरणासन्न व्यक्ति के मुख में तुलसीपत्र गंगाजल के साथ डाला जाता है । स्त्रियां इसकी स्तुति करती हैं --

"तुलसां म्हाराणी नमो नमो:।
हर की पटराणी नमो नमो:।।"

बिना फल-फूल की तुलसी को तोड़ना निषेध है --

"तुलसां ना कांटियो रे बिना फल फूल की"

प्रकृति पूजा धरती मां की पूजा के बिना अधूरी है । पृथ्वी पर मनुष्य रहता है, उस पर अन्न उपजाता है । यही कारण है कि प्रतीक पूजा के रूप में वह पृथ्वी की पूजा करता है । हरियाणावासी उठते ही सर्वप्रथम पृथ्वी को चुचकारेंगे और तभी चरण पृथ्वी पर रखेंगे --

"धरती माता तूं बड़ी
तेरै तै बड़े भगवान् "

प्रभु के बाद दूसरा स्थान पृथ्वी को मिला है । इसे 'माता' कहकर सम्बोधित किया गया है ।

गूगा की पूजा हरियाणा में सभी जगह समान रूप से प्रचलित है । हरियाणा के लोक-देवता के रूप में इसकी प्रतिष्ठा है । वैसे भी गूगा हरियाणवी गीतों में एक लोकप्रिय पात्र के रूप में चित्रित हुआ है । इसका विस्तृत वर्णन ऋतु परक गीतों के अन्तर्गत किया गया है ।

गूगा पीर के अतिरिक्त 'सादिक' और पंचपीरों की पूजा का विधान भी है । भक्तिकाल में हरियाणा में अनेक सूफी सन्तों का आविर्भाव हुआ । दिल्ली और पानीपत में सूफीमत पला और पनपा । अत: सूफियों की विचारधारा का भी इनके धर्म पर प्रभाव पड़ा । लोकगीतों में उनकी रहस्य भावना का वर्णन है --

"कब सै तो लिखमत चली कद सै रब की गैल
मैं पूछूं संतजी पैहुला गऊ हुई थी कि बैल
गऊ हुए थे के बैल जल सुन्नतै ऊपर कै नीचै
कहां टेके पैर धरती जब नहीं थी वहां कै
जल सून्न चीर वह बैल आया कहां कै
चार दिसा का बोझ धर्‌या सिर ऊप्पर वहां के
कहै पिरजो सुनो संत जी जइयो सबद का अर्थ लगा कै

हरियाणवी जनमानस इन सूफी सन्तों से प्रभावित हुआ और इसीलिए इनकी उपासना पीरों के रूप में की जाने लगी । किसी भी फकीर की समाधि या दरगाह को पीर का स्थान समझकर पंखे, मौली, मोर-पंख, लाल-चूनरी, नारियल, बतास्से, फूल और चावल-जौ से इनकी पूजा की जाने लगी । एक अन्य लोकगीत पर सन्तों की वाणी का प्रभाव लक्षित होता है --

"हरी ओम नाम सै बोल बाग की ए मैना
तेरा पिंजरा सै अणमोल सदा नई रैहुया

सब सबदों का गढ़्या पीजरा ए गढ़दिया कारीगर नै
पिंजरे की गढ़ाई देणी पड़ै आखर मैं ।
हरि ओम नाम सै बोल बाग की ए मैना --
तूं रैह् मैहूला के बीच राम नई भजदी
तौं थै मेवे मश्टोट चोचले करदी
तौं घर अपणे नै पूछ पूछ गोविन्द नै
तनै देंगे विधि बताय काट दें फंद नै ।
हरि ओम नाम सै बोल बाग की ए मैना ---
नौ दरबार जिन्हें तू घेरी
सिकरी मैं ड्योडेवान लगा र्या फेरी । हरि-------।"

ग्रामीण लोग अधिकतर अशिक्षित होते हैं । इसलिए वे लोग भूत-प्रेत और जादू-टोनों में विश्वास रखते हैं और इनसे भयभीत रहते हैं । पितरों की पूजा भी इसीलिए की जाती है । किसी भी शुभ अवसर पर पहले इनको प्रसन्न किया जाता है जिससे कि वह अवसर निर्विघ्न सम्पन्न हो ।

ग्रामीण स्त्रियों का जीवन व्रत-उपवासों से पूर्ण है । परिवारजनों की मंगल कामना के लिए वर्ष भर में वे अनेकों उपवास रखती हैं । छठी माता का व्रत पुत्र के लिए किया जाता है तो करवाचौथ और एकादशी का व्रत पति के सौभाग्य के लिए । वैशाख ज्येष्ठ में निर्जला एकादशी का बहुत महत्त्व माना गया है । निम्न गीत में व्रत करने की सम्पूर्ण विधि और उससे प्राप्त होने वाले फल का वर्णन है --

"ग्यारस के दिन ग्यारस राखै बारस सीदा देवै
धरमी के अवतार धरैंगे जलम-जलम सुख पावै

बैकुण्ठा तिर जावै सिया राम सै मिलागै
धन्धा पड़्या रैहण द्यो नै गोपीनाथ सै मिलागै
सास्सड़ केन्दी सुण मेरी बहुअड़ एक बात मेरी सुण ले
राम नाम तो पाच्छै लइये पैहला धन्दा कर लै
सिया राम सै मिलागै ।

धन्दा पड़्या रैहण द्यो जी गोपीनाथ से मिलागै
बहुअड़ बोल्ली सुण मेरी सास्सड़ इसी सीध मत दइये
राम नाम तो पैहला ल्यागै पीच्छै धन्दा कर ल्या
सीया राम सै मिलागै

सासु देन्दी दोय -दोय रोट्टी बहुअड़ आन्धी खांदी
ठेढ़ का तै वा पुन कर देती बैकुण्ठा तिर जाती
सास्सु बहुअड़ कात्तण बैठी सुरग पालकी आई
बहुअड़ तो बैकुण्ठा चाल्ली सास्सु खड़ी लखावै
सिया राम सै मिलागै

बहुअड़ बोल्ली सुण मेरी सास्सु झुल झांखै क्या हो सै
दान पुन्न जे तूं बी करदी बैकुण्ठा तिर जान्ती
ग्यारस के दिन मात्था धोवै बारस तेल रमावै
बेस्सा पै उतार धरैगी जलम जलम दुख पावै
ग्यारस के दिन कपड़े धोवै जलम का मैल गुमावै
धोब्बी के औतार धरैगी जलमा कपड़ा धोवै
ग्यारस के दिन जाला झाड़ै सूत्या जीव जगावै
पाणी पै औतार धरैगी जलम जलम दुःख पावै।"

एकादशी के व्रत को सब व्रतों में बड़ा माना गया है --

"सब बरतां में कादसी बड़ी है

बरत बण्या रे बड़ा चंगा"

एकादशी का उपवास बड़े नेम-धरम वाला होता है । निम्न गीत में इसका वर्णन किया गया है --

"सासु जी नै पूछण मैं गई सूआ रे

हो सासु जी ग्यारस का नेम बताय

ग्यारस राखां नेम की ओ राम

तम पै तो ग्यारस ना रहवै राधा ए

ए राधा रसोई बणावैगा कौण,

ग्यारस बड़े नेम की ओ राम

नणदी नै पूछण मैं गई सूआ रे

ओ नणदी जी ग्यारस का नेम बताय

ग्यारस राखां नेम की ओ राम

तम पै तो ग्यारस ना रहवै राधा ए

ए राधा टाका करैगा कौण, ग्यारस राखां -

जिठाणी नै पूछण मैं गई सूवा रे

ओ जिठाणी जी ग्यारस का नेम बताए

ग्यारस राखां नेम की ओ राम

थारै पै तो ग्यारस ना रहवै राधा ए

ग्यरस बड़े नेम की ओ राम

ए राधा सेज बिछावैगा कौण

ए राधा पगले दाब्बैगा कौण, ग्यारस----

गुरू जी नै पूछण मैं गई सूवा रे

ओ गुरू जी ग्यारस का नेम बताए

दसमी नै एकर खाइयां राधा ए

ए राधा ग्यारस करो ए निगोड़

ए राधा ए ग्यारस करो ए निगोड़

बारस खोलो पालणा हरे राम

तेरस नै जौवां री खाइयां राधा ए

ए राधा चौदस जल के बीच

हरी जी आवैं पावणे हरे राम

जै कोई ग्यारस गाइयां राधा ए

ए राधा जलम मरण छुट जाय

राधा ए हरी जी आवैं पावणे ।"

कई गांवों में 'सत्ती' की पूजा होती है । जिस स्थान पर कोई स्त्री अपने पति के साथ सती हुई हो वहां 'सती' की मढ़ी बना दी जाती है । मढ़ी पर दीपक जलाया जाता है । स्त्रियां वहां पक्षियों के लिए अन्न बिखेरती हैं । सती राणी का गीत द्रष्टव्य है --

"बड़ ए बगड़ तैं सत्ती राणी निसरी

भर गोब्बर की हेल

गोब्बर छिड़क्या भोली राणी भों पड़ी

धरती मैं हुआए लिपाव

बड़ ए बगड़ तै सत्ती राणी नीसरी

भर गिवृहा को हेल

गीहूं छिड़क्या भोली राणी भौं पड़ी

धरती मैं राख्या ए बीज

वह ए बाड़ तैं सत्ती राणी नीसरी

भर लोट्टा भर नीर

गड़वा तो छिड़क्या भौं पड़ी

धरती हुआ ए सिलाव ।"

सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर भी लोग अनुष्ठानों का पालन करते हैं । हरियाणा में कुरूक्षेत्र मैं लगने - वाला सूर्यग्रहण का मेला अति प्रसिद्ध है । कुरूक्षेत्र के ब्रह्मसर और सन्निहित सरोवरों में लाखों की संख्या में लोग स्नानार्थ आते हैं ।

हरियाणा प्रदेश में चन्द्र ग्रहण के अवसर पर भी स्नान की महत्ता है । ग्रहण के अवसर पर कोई कार्य नहीं किया जाता । कुछ भी खाना पीना निषेध है । स्त्रियां भजन कीर्तन करती हैं । निम्न जाति के लोगों को 'सतनजा' दान किया जाता है । लोग थाली में पानी डालकर सूर्य चन्द्र का प्रतिबिम्ब उसमें देखते हैं । आतशी शीशे से भी ग्रहण देखा जाता है ।

भारतीय मनुष्य की श्रद्धा यात्राओं में है । सभी तीर्थों की यात्रा करने और पवित्र नदियों में स्नान को मोक्ष प्राप्ति का सरलतम साधन माना जाता है । इसी क्रम में गंगा-यमुना की महत्ता प्रतिपादित की गई है --

"सब तीरथां मैं हरद्वार जी बड़े हैं

न्हाण आया रे बड़ा चंगा

भजो रे मन गोविन्दा

नटवर नागर नन्दा भजो रे मन गोविन्दा

सांवली सूरत मुख चन्दा

भजो रे मन गोविन्दा॥

हरियाणवी नारी चारों धामों की यात्रा करने को उत्सुक है --

"कहवै तो गंगा न्हावूं

कहो तो जमना न्हावूं

कहो तो न्हावूं च्यारूं धाम

दरसन के लिए ।"

इन दोनों नदियों के प्रति लोगों में गहन धार्मिक आस्था है । हरियाणवी क्षेत्र का सबसे बड़ा स्नान पर्व कार्तिक पूर्णिमा पर गंगा के किनारे गढ़मुक्तेश्वर में होता है । प्रतीक पूजा में कुएं और जोहड़ का भी स्थान है । संस्कारों का समावेश हरियाणा प्रदेश में धर्म में ही होता है । प्रत्येक संस्कार पर कूए और जोहड़ की पूजा की जाती है । पुत्र जन्म के सवा मास उपरान्त जच्चा सिर पर कलश रखकर पीला ओढ़कर कुवा पूजने जाती हैं । कूएं की सात बार परिक्रमा करके कूए पर धोक मारी जाती है, जिसे 'आखद घालणा' कहते हैं । कार्तिक स्नान के अवसर पर स्त्रियां पूरे महीने जोहड़ पर स्नानार्थ जाती हैं । स्नान से पूर्व वे सरोवर से मिट्टी निकालकर ढेर लगाती हैं, जिसे 'पथवारी' कहते हैं । प्रतिदिन सायंकाल को 'पथवारी' पर जोत लगाई जाती है और जौ की भेंट चढ़ाई जाती है । लोक विश्वास है कि कार्तिक स्नान से मनोकामना की पूर्ति होती है । स्त्रियां गीत गाती हैं --

"पथवारी खोल किवाड़ी

बाहर खड़ी तेरी सींचण आली

के ले री सै सींचण आली

के मांगै सै सींचण आली

अन धन मांगै सींचण आली

गोद भतीज्जा कन्हवा जिसा "

भारतीय संस्कृति में पुनर्जन्म में गम्भीर आस्था मानी गई है । मनुष्य इसी पुनर्जन्म के भय से इस जन्म में सत्कर्म करने को प्रेरित होता है । पुनर्जन्म की इस मान्यता के पीछे धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता है । चौरासी लक्ष्य योनियों में भटकने के उपरान्त दुर्लभ मानव देह की प्राप्ति होती है । मनुष्य इसे सहेज कर रखना चाहता है । वह नहीं चाहता कि फिर से किसी निकृष्ट योनि में अपने कर्मों के कारण उसे चला जाना पड़े । अतः वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सत्कर्मों और भगवद्-भक्ति में लीन रहना चाहता है --

"तेरी मेरी करदी का जलम गया रे

जलम गया हर क्यूं ना भज्या रे

हर भज ले रे बन्दे मुक्ती हो ज्यागी

मुक्ती हो जै हर का नाम बढ़ा रे

भावों की ईंट चौबारे का चिणणा

ओछे की प्रीत कटारी का मरणा । तेरी ------

लीला सा हस्ती ए पांच हजारी

चढ़ गे हंस चढ़ी असवारी

पाप, धरम की बणी रे गठरिया

या तेरी कौण निभावैगा रे । तेरी --------

त्यावो रै फूस बंधावो रै टाटी

ना जाणै राम कहां गिरै माटी

तात्तै खम्बा कै बांधै मार पड़ैगी

जिब तन्नै कुण छुड़ावैगा रै

धरमराज तेरा लेखा बी लेगा

जब तूं कै बतलावैगा- रे । तेरी----------।"

मोक्ष प्राप्ति के लिए जहां भगवान् के नाम स्मरण की महत्ता है वहीं सास-ससुर की सेवा, पीपल की पूजा, तुलसी की सेवा आदि भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इसी प्रसंग का निम्न गीत द्रष्टव्य है --

"मेरै तो घर मैं राम जी बुढली सी सास्सड़ राम

कदे ना मस्सल-दुवाई ओ राम

ओ लोबी जिवड़ा धन्दे मैं जलम गंवाया

मेरै घर मैं राम जी छोटी सी नणदल

कदे ना तील पहराई ओ लोबी ------

मेरै तो घर मैं राम जी तुलसी का बिड़ला

कदे ना घी भर दिवला चास्या ओ लोबी --

मेरै तो घरमैं राम जी पीपल का पेड्डा राम

कदे ना लोट्टा भर सींच्चा ओ लोबी ---

छोट्टा सा बीरा मन्नै लेवण तै आया राम

मेरा तो आवाज नई ओ लोबी जिवड़ा

राम का घर का आग्या बलावा हो राम

असर्या का पसर्या छोड्या ओ लोबी जिवड़ा ।"

पुण्य करने से मुक्ति मिलती है । कौन सा कर्म करने पर किस फल की प्राप्ति होती है यह निम्न राजस्थानी गीत में बड़ी दक्षता से बताया गया है --

"गोड़डे बांध पंचां में बैठे
चुगली चांट्टी वो करसी
ऐसी ऐसी करणी में बण गंडकी
रातूं गलियां में वो फरसी
सास नणद की चोरी करसी
चोर चोर कूंचा बाई भरसी
ऐसी ऐसी करणी में बण सिपकली
भितां पर वा फिरसी
अपणे खेत में काकड़ी
दूसरां के खेत स्यूं ल्यासी
ऐसी ऐसी करणी में वो
गाद्दड़ बण खेत्तां में फिरसी ।"

उदाहरण द्वारा लोक कवि ने निरूपित किया है कि एक ही घर में पांच बहुओं ने क्या-क्या दान पुण्य किये और उसके अनुरूप उन्हें क्या फल मिला -

"मेरे सुसरे के पांच बहू थी, पांचवां की न्यारी बाणी हो राम
पैहली कहवै मैं सुसरा न्हुवा द्यूं
पोकर में धोत्ती धुवा द्यूं ओ राम
दूजी कहवै मैं सास न्हुवा द्यूं
सास्सड़ नै तील पैहरा द्यूं ओ राम

तीजी कहुवै मैं कूदा खूदा द्यूं

कूवै पै झीमर बठा द्यूं ओ राम

चौथी कहुवै मैं बाग लुवा द्यूं

बागां मैं माली बठ्या द्यूं ओ राम

पांचमी कहुवै मैं करणे नां छागी

अनकरणी मैं राणी हो राम

च्यारवां की तो आई ए पिलंगिया

पांचवी खड़ी लखावै हो राम

करणी ए बेबे पार उतरणी

करणी के फल न्यारे हो राम ।"

लोकगीतों में अनेक आध्यात्मिक संदर्भ मिलते हैं । परमात्मा की अलौकिक सत्ता के प्रति लोक मानस में सहज विश्वास है । इनके लोकगीतों में ईश्वर की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता के प्रति दृढ़ आस्था और विश्वास प्रकट होता है । ऐसा माना गया है कि मानव जीवन तभी सफल है जब उसे ईश्वर की अनुकम्पा और प्रेम प्राप्त हो । यही पाने के लिए उसके गीतों में भक्ति भावना का प्राचुर्य है । मानव जीवन की सार्थकता ईश्वर की भक्ति, जन-जन की सेवा, कीर्तन और भजन तथा लोक-कल्याण करने में है ।

"जो नर भगति करें दिन रात

वे नर नहीं गये खाली

भगति कर गया सरवण साद

कांदे धर लिये माइ अर बाब्ल

सारे तीरथ दिये करवाय

पी ग्या अमरत की प्याली । जो नर------ ।

भगति कर ग्या मोरधज प्यारा

जिनै धर्या कंवर सिर आरा

तीनों प्राणी दीनैं त्याग

दरसन इसबर के पाये । जो नर------- ।

भगति कर ग्या हरीचन्द दानी

जिसनै भर्या नीच धर पाणी

बेच्या लड़का और राणी

मरणी बालक की जाणी । जो नर -------- ।

भगति कर ग्या नरसी प्यारा

जिसनै लाया अरथां का लारा

हरनन्दी कै भर दिया भात

इसबर नै राखी लाली । जो नर----------- ।"

लोकगीतों में इस संसार को और उसके सम्बन्धों को मिथ्या माना गया है । मानव शरीर नश्वर होते हुए भी ईश्वर प्राप्ति पर सहज विश्वास है । मोरध्वज राजा साधुओं की इच्छा-पूर्ति हेतु अपने पुत्र को अर्पित कर देता है । भगवान् अपने भक्त की भक्ति पर प्रसन्न होकर उसके पुत्र को पुन: जीवित कर देते हैं --

"नाम तेरा हम सुन के आए मोरधन बड़ा दानी है

एक बात हम होर सुणी है पतिबरता तेरी राणी है

पति पतनी मैं गुण नाना दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

राज्जा कर भोजन की त्यारी पल पल हो रई देर है

पीच्छे हम भोजन जीम्मागे पैह्ला जीम्मै सेर है

पुत्तर की भेंट चढ़ाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

राज्जा के राणी से पूंछूं जो उसको मैहतारी है

उसका बी हक है पुत्तर पै पैद्दा करनै वाली है

दोन्नां की सलाह मिलाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

राज्जा राणी धरम समज कै दोन्नूं सलाह मिलाते हैं

धरम की खात्तर सरबस दे दें नहीं मन मैं घबराते हैं

तुम भोजन ल्यो मनमाना दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

राजकंवर और राज्जा राणी एक साथ उठ बोले हैं

तीनों तुले धरम के कांट्टे नई मरणे से डोले हैं

तीन्नों का दिल मरदाना दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नई ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मै

राज्जा राणी आरा चीरैं सुत अपणे नै चीरो जी

पीच्छे हम भोजन जीम्मागे पैह्ला सेर नै नीरो जी

तुम मन मैं मत घबराना दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मै

राज्जा राणी आरा चीरैं सुत अपणे का मांस चिरै

बज्जर का हिया करलीन्या सिर ऊप्पर के खून जलै

इक अंग दो जुदा बणाना दो सन्त खड़े दरबार मैं

राजकंवर जो खुसी मनाते इसबर आज्जे सुब घड़ी

पिता की आग्या सन्तों की सेवा फेर बी बड़ी है आज घड़ी
मैं मगन करूँ असनाना दो सन्त खड़े दरबार मैं
आनन्द का नईं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
दाँया अंग सेर नै खाया बाँया पड़्या सरीर जी
राणी का हीया भर आया बहृया नैण सै नीर जी
साद का होया लखाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
सिंग साद का एक मता है जीवित ही सो खाते हैं
करके दान तुम्ही पछताते तुम्हरा अन नईं खाते हैं
हम होते बेघरवाना दो सन्त खड़े दरबार मैं
आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
हात जोड़ कै राणी बोल्ली मैं पुत्तर को रोत्ती ना
दाया अंग काम नईं आया मन मैं धीरज होती ना
मुजे सच्ची बात बताणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
आनन्द का नईं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
ल्यावो पत्तल भोजन जीम्मां खुसी साथ हम जीम्मांगे
राज्जा राणी होर लड़के को भोजन साथ जिमांवांगे
इन बिन भोजन नईं खाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
आनन्द का नईं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
राजकंवर और राज्जा राणी भोजन साथ जिमांणा है
राज्जा राणी सोच्चण लाग्गे अब नईं कोई ठिकाणा है ।
मुरदे का कठिन जिलाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
आनन्द का नईं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं
राज कंवर को बेग बलावो साद थे फरमाते हैं

राज्जा राणी टेरण लागे राजकंवर आ जाते हैं

दुनिया नै अचरज मान्या दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नई ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

धन-धन राजा तेरी भगति नै पूरन भगति थारी है

मांगो मांगो के ए मातमा फल मांगण की बारी है

थारा पूरा यज्ञ कराया दो संत खड़े दरबार मैं

आनन्द का नहीं ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

धन-धन राजा तेरी भगति नै पूरण तेरे काज हुए

सब धनियां मैं मोरधज राज्जा भगतों के सरताज हुए

यो मंगलानन्द का गाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

आनन्द का नई ठिकाणा दो सन्त खड़े दरबार मैं

हरियाणा में सभी देवी-देवताओं, प्रकृति आदि की उपासना का प्रचलन है । समय और त्यौहार के अनुरूप क्रमशः सभी देवी देवताओं की आराधना होती है ।

0""""""0

(4)

-: निष्कर्ष :-

समस्त भारतीय जीवन धर्म से अनुप्राणित है । यह शब्द अत्यन्त व्यापक एवं विराट है । विश्व में जो नियम अथवा विधान अनेक व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधकर रखें, उसे धर्म कहते हैं । धर्म उन शाश्वत सिद्धान्तों के समुदाय को भी कह सकते हैं, जिनके द्वारा मानव समाज सन्मार्ग में प्रवृत होकर तथा उन्नतिशील बनकर अपने अस्तित्व को धारण करता है । लोकगीत भावनाप्र-धान होते हैं और धर्म भी भावना पर आधारित होता है, दोनों का तात्त्विक साम्य भावना पर आधारित है । बांगरू भाषी समाज में लोकधर्म में अनेकानेक तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है । किसी भी प्रकार का अनुष्ठान, संस्कार या उत्सव हो, कोई न कोई टोने-टोटके का विधान अवश्य मिलेगा । तत्पश्चात् देवी-देवताओं में पितरों की मृतात्मारं, भूत,प्रेत,हवायें,मसान आदि की पूजा होगी । इनके ऊपर सामान्य धार्मिकता का वातावरण रहता है । तब शास्त्रीय धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न होते हैं ।

धर्म शब्द अत्यन्त व्यापक है । हरियाणा के ग्रामीण समाज की सहज, सरल बुद्धि धर्म की इस शास्त्रीय व्यापकता को सरलता से ग्रहण नहीं कर पाती, अपनी आस्था एवं श्रद्धा से वह सब जो उसे परम्परा से प्राप्त होता है, अपना लेती है । पूजन अर्चन, व्रत उपवास और नाम स्मरण ही उसकी समझ में धर्म है । इसलिए एक ही परिवार में एक ओर राम,कृष्ण, शिव के उपासक मिलेंगे तो दूसरी ओर हनुमान,भूमिया,शीतला माता तथा विभिन्न देवी देवताओं के भक्त भी मिलेंगे । भूत-प्रेत आदि भी उनके धर्म में सम्मिलित हैं ।

बांगरू लोकगीतों में मुख्यत: पंचदेवोपासना का उल्लेख मिलता है, जिसमें माता, देवी, पितर, हनुमान और सती ये पांच लोक प्रतिष्ठित देवी देवता हैं । इसके अतिरिक्त राम, कृष्ण व शिव पूजा का यहां सर्वत्र विधान है । अयोध्या मथुरा एवं हरिद्वार आदि तीर्थ स्थानों के प्रति गहरी आस्था है । राम यहां के आदर्श हैं । हनुमान वीरता एवं पराक्रम के प्रतीक हैं । हनुमान चालीसा सभी को कण्ठस्थ है और इनकी मढ़ी प्रत्येक गांव में मिलती है । हरियाणा भगवान् कृष्ण की लीलाओं का प्रमुख केन्द्र रहा है । होली के गीतों में इनके रसिक रूप का उल्लेख मिलता है, जो गौण है । मुख्य रूप से लोकमानस में इनके पुरुषार्थ के प्रति गहन आस्था है । यहां भगवान् शिव की लोकप्रियता उनके भोलेपन और फक्कड़पन के कारण अधिक है । किसी भी गांव अथवा कस्बे में शिव मन्दिर अवश्य मिल जायेंगे । स्वामि कीर्तिकेय की पूजा तेल व सिंदूर चढ़ाकर की जाती है । गणेश विघ्न विनाशक व मंगल स्थापना करने वाला मुख्य देवता है । किसी भी कार्य का शुभारम्भ गणेश पूजा से होता है ।

बांगरू लोकगीतों में अनेक देवियों के पूजन का उल्लेख मिलता है । चैत्र मास में देवी के मेलों का आयोजन होता है । रोग विषयक देवी-देवताओं में शीतला माता प्रमुख है । इसके अतिरिक्त भगवती, कालीमाई आदि विपत्ति विनाशक देवियां हैं ।

'हरियाणा में स्थानीय देवी-देवताओं की प्रतीक पूजा की जाती है । भैरों, भुइयां, क्षेत्रपाल, खेरापति आदि प्रमुख लोक प्रतीक (देवता) हैं । प्रत्येक ग्राम का अपना लोक देवता होता है, जिसे भुइयां कहते हैं । हर गांव मेंइसकी मढ़ी स्थापित होती है । लोक प्रचलित विश्वास है कि गांव बसने के उपरान्त प्रथम स्वर्गवासी बुजुर्ग के स्मारक के रूप में यह बनाई जाती थी ।

प्राचीन आर्यों के अनुसार हरियाणा में सूर्य-चन्द्र की पूजा का प्रचलन है । पीपल व तुलसी का भी पूजन-अर्चन होता है । लोक देवता के रूप में यहां गूगा की अत्यन्त प्रतिष्ठा है । वैसे भी यह बांगरू लोकगीतों में लोकप्रिय पात्र के रूप में चित्रित हुआ है । इसके अतिरिक्त सादिक व पंचपीरों की पूजा का विधान भी है । ग्रामीण क्षेत्र अधिकतर निरक्षर होते हैं, इसलिए वे लोग जादू टोनों व भूत-प्रेतों में विश्वास रखते हैं । पितरों की आराधना की जाती है । कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए इन्हें पहले प्रसन्न किया जाता है । सूर्य व चन्द्र ग्रहण पर लोग अनुष्ठानों का पालन करते हैं । कुरूक्षेत्र के ब्रह्मसर व सन्निहित सरोवरों में लाखों की संख्या में लोग स्नानार्थ आते हैं । पुनर्जन्म में यहां के लोगों की आस्था है और वे मोक्ष प्राप्ति के लिए सत्कर्मों व भगवद्भक्ति में लीन रहना चाहते हैं । दान-पुण्य को मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन माना गया है ।समय व त्यौहार के अनुरूप यहां क्रमशः सभी देवी-देवताओं की आराधना होती है, जिसका वर्णन विविध-वर्णी बांगरू लोकगीतों में मुखर हुआ है ।

::::   ::::   ::::

Chapter 5

पंचम अध्याय

ऋतु गीत

भारत में प्रकृति की पूजा होती है । प्रकृति मनुष्य के लिए सदा से रहस्यात्मक वस्तु बनी हुई है । प्रकृति का तात्पर्य दृश्य जगत से है, जो अनन्य सौंदर्यात्मक होता है । प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में लोकमानस स्वतन्त्र रूप से राज्य करता है । सूर्य की किरणें उनमें भावना के फूल खिलाती हैं । चन्द्र की चाँदनी उसमें कल्पना का माधुर्य बिखेरती है और मन्द गति से चलने वाला समीर नवीन कामनाओं की तरंगें पैदा करता है । लोकमानस प्रकृति के मादक रूप को देखकर आह्लादित होता है और उसके कंठ पर अन्तर्तम की भावनाएँ मधुर गीतों के रूप में फूट पड़ती हैं । मनुष्य ने एक ओर तो प्रकृति के सौम्य, सुखद एवं असंहारी रूप को देखा और दूसरी ओर इसके विपरीत उसके संहारकारी, भयावह एवं रौद्र रूप को देखा, इससे उसके अन्त: करण में विराट प्रकृति को देखकर भयमिश्रित कौतूहल हुआ । उसने इसकी सर्वशक्तिमत्ता के सम्मुख स्वयं को सामर्थ्यहीन समझा । यही मानव मन प्रकृति के सुन्दर रूप को देखकर अभिभूत हुआ । इसके परिवर्तनशील स्वरूप से प्रभावित होकर मनुष्य ने इसमें देवत्व की कल्पना की । अपनी भरसक चेष्टा से मनुष्य ने इसे समझने की कोशिश की । प्रकृति के विभिन्न कार्यव्यापार और अनेकानेक रूपों में मनुष्य ने स्वयं को देखा और इसी आधार पर प्रकृति को मानवी रूप भी प्रदान किया । उसमें अपने भावों का आरोप किया, उससे प्रभावित हुआ । समस्त प्रकृति में निरन्तर कभी न रुकने वाला परिवर्तन होता रहता है, जिससे

वह नित नवीन रूप धारण करती रहती है । प्रकृति की ओर मानव का आकर्षित होना स्वाभाविक ही है । जन मानस का प्रकृति से तादात्म्य होता है, इसका यही तात्पर्य है कि प्रकृति जहाँ कहीं अपनी उच्चतम आकांक्षाओं को साधना के उच्चतम सौंदर्यमय रूप में प्राप्त कर रही होगी, वहाँ जन मानस का तादात्म्य होगा ही । मनुष्य अपनी भावनाओं का प्रस्फुटन जब प्रकृति में देखता है, तब उसे एकात्मकता का अनुभव होना स्वाभाविक है । झरनों का कल-कल नाद, पक्षियों का कलरव, चातक व कोकिल के कण्ठ की मधुर वाणी, मयूर का रूप सौंदर्य व नृत्य आदि मनुष्य के लिए प्रेरणा का विषय बन गये । मनुष्य जड़-चेतन में आदान-प्रदान कर प्रकृति को सुख-दु:ख में अपने साथ हंसाता व रूलाता भी है । इस भावना का प्रारम्भिक रूप हमें लोकगीतों में मिलता है । विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले गीत ऋतुगीत कहलाते हैं । ऋतुगीतों के अनेक प्रकार होते हैं, जिनमें ऋतु विशेष में आने वाले त्यौहार, उत्सव, पर्व आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं । ऋतुएँ बदलती हैं तो प्रकृति का श्रृंगार होता है । आरम्भ में नूतन पत्र, पुष्प, फल आदि से वसन्त नववर्ष का स्वागत करता है । वर्षा की अपनी छटा होती है । शरद् ऋतु में अनेक पर्व-त्यौहार आकर इस ऋतु की पावनता बढ़ाते हैं । भारत में क्रमश: छ: ऋतुओं का आगमन होता है - ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, हेमन्त और वसन्त । लोकगीतों में इनका उल्लेख मिलता है । इन गीतों में स्त्री पुरुष की आन्तरिक और बाह्य स्थितियों का सांगोपांग निरूपण हुआ है । उनमें जहाँ मन की अनेकानेक रागानुरागम भावनाएँ मुखरित हुई हैं वहीं जीवन की सामान्य क्रियाओं का भी निरूपण हुआ है ।

बांगरू लोकगीतों में वर्षा और बसन्त ऋतु का जितना वर्णन प्राप्त होता है । उतना ग्रीष्म और शिशिर का नहीं । हेमन्त और शरद् ऋतुओं पर लोकगीत नाममात्र को प्राप्त होते हैं । लोकगीतों के रचयिताओं ने प्रत्येक ऋतु पर अलग-अलग ऋतुगीतों की रचना की है । एक ही ऋतु में अनेक प्रकार के गीत मिलते हैं ।

वैसे तो भारत में प्रत्येक ऋतु और मास में किसी न किसी व्रत-त्यौहार का आना-जाना लगा रहता है, लेकिन श्रावण और फागुन मास की तो बहार ही अलग है ।

श्रावण के गीत --

वर्षा ऋतु सबसे सुहानी और मनोरम ऋतु होती है । ग्रीष्म ऋतु की असहनीय तपन से संतप्त प्राणियों के लिए यह वरदान सदृश आती है । अतः इसका अतुलनीय महत्त्व माना गया है ।

जब ज्येष्ठ मास की धधकती धूप और लपलपाती लूओं से चराचर जगत् संत्रस्त हो जाता है, लोग पसीने-पसीने होकर अकुला उठते हैं तो आखिरकार प्रतीक्षा की लम्बी घड़ियों के उपरान्त आकाश में मेघ खण्ड दिखाई पड़ते हैं और अल्प समय में ही ग्रीष्म कालीन दुःखद रात्रि की समाप्ति होकर पावस के सुखद प्रभात का आगमन होता है । वर्षा के जल से नदी- पोखर खार-खड्ड तालादि भर जाते हैं । प्रतिदिन आकाश में छाये बादलों को पवन के प्रबल थपेड़े यहाँ से वहाँ लिये फिरते हैं। कभी बारीक बूंदे पड़ती हैं तो कभी मूसलाधार मेह । गहन अंधकार में बिजली की चमक एक अभिनव दृश्य उपस्थित करती है। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की चमक से ऐसा भासमान होता है मानो नभ रूपी नाट्यशाला में नगाड़ों की थाप पर कदम मिलाती हुई कोई निपुण नर्तकी

घूम-घूमकर थिरक रही हो । लोकमानस का हृदय ऐसे वातावरण में उल्लासमय गीत गाने लगता है --

रे गगन गरजै, झिमालें बिजली,
पड़ै बूँदिया, भरै क्यारी,
समै बिरखा लगै प्यारी ।

गाँवों में सावन मास की छटा तो निराली ही होती है । बादलों की गर्जन सुनकर मोर नाच उठते हैं, कोयल कूक उठती है, मेंढ़क अपना अलग राग अलापते हैं और झिल्ली अपनी झनकार सुनाना आरम्भ कर देती है । चारों ओर हरितिमा के दर्शन होते हैं । वन-उपवन बाग-बगीचे की छटा मन को मोह लेती है । चराचर जगत् प्रसन्नता से नाच उठता है । हरियाणा कृषि प्रधान प्रदेश है । यहाँ के पुरुषों के साथ स्त्रियाँ वर्ष भर खेती के कार्य में संलग्न रहती हैं । सावन आने पर उनका मन मयूर भी नाच उठता है । प्रकृति की मनोरम पृष्ठभूमि में उनके कोमल हृदय से कर्णप्रिय गीत फूट पड़ते हैं । स्त्रियाँ मोरों की कूक, पपीहे की पी-पी और कोयल की कुहू-कुहू से कंठ मिलाती गा उठती हैं --

"रूत आई रे पपीहा तेरे बोल्लण की रूत आई,
जेठ मास की लूँवा रे बीती इब सुरंगी रूत आई रे ।
साढ़ उतरग्या साम्मण लाग्या काली घटा फिर आई रे,।
रिमझिम रिमझिम मेहड़ा बरसै श्याम बदली फिर आई रे ।"

इस मास में हरियाणा के गाँवों में स्वर्ग उतर आता है । इस मास में विविधलक्षी गीत मिलते हैं । बांगरू बोली में यहाँ के गीत अपनी मधुर

संगीतमय झंकार, लोकरागोन्मुख मनोरंजन (रंजनाशक्ति) और नाटकीय लोच-लचक के कारण अत्यन्त लुभावने बन पड़ते हैं।

इस मास में झूलों का अत्यन्त महत्त्व होता है। "छोहरिया तत्ते पूड़ों से उसका स्वागत करती हैं और व्यस्काएँ रेशम डोर और चंदन डाल से।"[1] क्या बालिकायें और क्या महिलायें, सभी झूला झूलने को लालायित रहती हैं। झूले झूलने का दृश्य मन को मोहित कर लेता है। नव विवाहिता स्त्री को इतने ज़ोर से झूटे दिये जाते हैं कि वह डर से घबरा जाती है। सखियाँ उसे पति का नाम लेने को कहती हैं और तब तक नहीं छोड़ती जब तक वह पति का नाम नहीं ले देती। पींग पर दो युवतियाँ बैठ जाती हैं और उन्हें लंगर से लम्बे झूटे दिये जाते हैं। कोकिल कण्ठों से अनायास गीत फूट पड़ते हैं --

बड़-बड़ डाहला झूलती ए मेरी सासड़ राणी
सात जणी का साथ,
राह मुसाफिर मिल गया ए मेरी सासड़ राणी
करै था मीठी मीठी बात,
कौण मुसाफिर मिल गया ए मेरी बहुअड़ राणी
किस का था उणिहार,
अंग गोरे मुख पातले ए मेरी सासड़ राणी
जेठा की उणिहार,
कोटठे चढ़ कै देख ले ए मेरी बहुअड़ राणी
वो है तेरा भरतार,

1- डॉ0 शंकर लाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ0 214

पाड्या मैं छाले पड़ गये ए मेरी सासड़ राणी

अँख्या बी हो गई लाल,

पाड्या मैं मैदा ला लिये ए मेरी बहुअड़ राणी

आंख्या मैं सुरमा सार,

बरगद के पेड़ पर झूल पड़ी है। देवर लंगर थामे खड़े हैं। भाभियों के बैठने पर लंगर दोनों ओर से खिंचना शुरू हो जाता है और साथ ही गीत भी, जिसका विषय कृषि से सम्बन्धित है --

आठ बुलदां का रे हालिड़े नीरणा च्यार हालियां की धाक,

बरसण लागी रे हालिड़े बादली।

डोलैं ते डोलैं हालिड़े मैं फिरी हम ने ना पाया थारा खेत,

बरसण लागी रे हालिड़े बादली।

ऊँचे ते चढ़ के गोरी देख ल्यो, गोरे बुलद कै बंध री राल,

बरसण लागी रै गोरी बादली।

कित सी अक बोवां रै गोरी बाजरा, कित सी अक बोयां जुवार,

बरसण लागी रै गोरी बादली।

थलियां मै बोइये बाजरा डहरां मैं बोइये जवार,

बरसण लागी रै गोरी बादली।

कितणां बध्या रे बाजरा कितणी बधी सै जुवार,

बरसण लागी रै गोरी बादली।

छोट्टी रै पोरी गोरी बाजरा, लाम्बी रै पोरी जुवार,

बरसण लागी रै गोरी बादली।

सावन का महीना संयोग कराने वाला माना जाता है । पति विदेश से आता है और कन्यायें पीहर आती हैं । 'सावन' में ससुराल मे रहने वाली कन्यायें अपने पीहर आ जाती हैं । इसका पहला कारण है कि इस मास मे रक्षाबन्धन का त्यौहार आता है जिसमें बहनें अपने भाइयों को राखी बांधती हैं । सावन का महीना स्त्रियों के लिए हर्षोल्लास और क्रीड़ा-विनोद का महीना है । सहेलियों के समूह मे झूला-झूलना, हंसना-खेलना, गीत गाना जितनी स्वच्छन्दता से मायके में हो सकता है, ससुराल में नहीं हो सकता। इसलिये प्रत्येक कन्या सावन के महीने शैशव की मधुर स्मृतियों के देश मे अपने मायके मे आने की तीव्र उत्कण्ठा रखती हैं ।

यही कारण है कि कन्या और विरहिणी स्त्रियां आतुरता से इस मास के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं । "इस मास के गीत संयोग और वियोग के दो झोटों मे आन्दोलित होते हैं । दोनों पक्षों का हृदयहारी वर्णन इन झूले के गीतों मे आया है, परन्तु विप्रलम्भ की जो मार्मिकता बन पड़ती है, वह संयोग की नहीं । वियुक्तावस्था की कारुणिक स्थिति श्रावण की सरसता एवं उन्मत्तकारिता से मिलकर द्विगुणित हो जाती है । मयूर, मंजीर, पपीहा सभी कामियों के हृदय को सालते हैं ।"[1]

एक गीत मे नवविवाहिता बाला पीहर और ससुराल की मार्मिक और रहस्यमयी तुलना करती हुई मां की ममता और सास के व्यंग्यपूर्ण बाणों की चर्चा करती है । दोनों जगहों से उसे 'सवान तीज' के अवसर पर चूंदड़ी मिली है । यद्यपि दोनों समान हैं किन्तु "जा की रही भावना जैसी

प्रभु मूरत देखी तिन तैसी" के अनुरूप बाला को अपनी मां

1- डॉ० शंकर लाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 214

की चूंदड़ी में घुंघरू जड़े नज़र आते हैं जो उसके ओढ़ते समय बजते है और माँ के मधुर बोल सदृश लगते हैं जबकि सास की चूंदड़ीके घुंघरू कड़वे बोल के सामान लगते हैं । इस भाव को गीत में पिरोया गया है --

हरी ए जरी की हे मां मेरी चूंदड़ी जी
हे जी कोय दे भेज्जी, मेरी माय, इन्द राजा नै झड़ी ए लगाय दई जी।
अल्लै तो पल्लै हे मां मेरी घुंघरू जी
ए जी कोय बिच मायड़ के लाड
इन्द राजा नै झड़ी ए लगाय दई ।
बैट्ठू तो बाज्जै हे मां मेरी चूंदड़ी जी
ऐ जी कोय प्यारे मायड़ के बोल, इन्द राजा----- ।
पीहर मैं बैट्टी हे मां मेरी न्यूं रहै जी
ए जी कोय ज्यूं घिलड़ी बिच घी, इन्द्र -------- ।
सासड़ नै भेजी हे मां मेरी चूंदड़ी जी
ए जी कोय दे भेज्जी मेरी सास, इन्द राजा ------ ।
अल्लै तो पल्लै हे मां मेरी धेकले जी
ए जी कोय बिच सास्सड़ के बोल, इन्द-------- ।
ओढ़ूं तो दीखै हे मां मेरी धेकले जी
ए जी कोय रड़कैं सासड़ के बोल, इन्द -------- ।
सासरै मैं बैट्टी हे मां न्यूं रहै जी
ए जी ज्यूं रै कढ़ाई बिच तेल, इन्द राजा -------- ।

एक अन्य स्थल पर इसी भाव को उपमा सहित व्यक्त किया गया है --

1- डॉ0 शंकर लाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ0 215

"कड़वी कचरी कचकची जी,

कड़वे सासड़ तेरे बोल

बहुत दुहेला हे माँ मेरी सासरा

मीठी कचरी हे माँ मेरी मीठे मतीरे जी

मीठे मायड़ तेरे बोल

बहुत दुहेला हे माँ मेरी सासरा ।"

चारों ओर के मनोरम वातावरण और पड़े झूलों को देखकर ससुराल में युवती का मन झूलने को लालायित हो उठता है । वह सास से झूला डालने का आग्रह करती है, किन्तु वह मना कर देती है । पीहर जाने की इच्छा व्यक्त करती है, तो सास घर के कामों की याद दिलाती है । बहू के विद्रोह करने पर वह अपने लड़के से कहती है । परिणामस्वरूप उसे डाँट पड़ती है । येन केन प्रकारेण अन्त में सुलह हो जाती है । द्रष्टव्य है गीत --

"आया री सासड़ सामण मास पाटड़ी घड़ा दे चंदन रूंख की।

सास-म्हारे तै बहुअड़ चंदन न रूंख जाय धड़ाइयो अपणे बाप कै।

बहू- आया री सासड़ सामण मास, झूल बटा दे पीले पाट की।

सास-म्हारे तै बहुअड़ पीला न पाट जाये बटाइयो अपणे बाप कै।

बहू-अपणा नैं देदी पाटी झूल, म्हारी तै आगै घर दिया पीसणा।

"फोड़ूं री सासड़ चाकी का पाट बगड़ बखेरूं थारा पीसणा।"

आवै री सासड़ माई जाया बीर हमनै खंदा दे माई बाप कै।

सास-इब के बहुअड़ ~~ना ले जाणा~~ का है नाम ,

कातक पाछै जाइये अपणे बाप कै।

बहू- कात्तक पीछै मेरे बीरे का ब्याह इतणे तै ज्यागी बैरण दूसरे।

सास-सुणले रे बेट्टा बहुड़ के बोल ओछे धरां की बोलणी।

बेटा - कहो तो मां मेरी दिया बढ़ार कहो तो घाला धन के बाप के।
कहो तो मां मेरी जोगी हो जायें, कहो तै कालर मेरा झूपड़ी।
सास-क्यां न तै बेटा मेरे जोगी हो जावो,
क्यां न तै कालर गेरो झूंपड़ी।
क्यां नै तै बेटे मेरे दियो रे बढ़ार,
क्यां नै तै घालो धन के बाप के।
बेटा - तेरे दुख मैं मां मेरी दिया बढ़ार धन घाला धन के बाप कै।
सास-या धन बेटा जन्मैगी पूत बेल बधैगी तेरे बाप की।
या धन बेटा कूए पणिहार शोभा लदैगी तेरे बाप की।
या धन बेटा जलमैगी धीय रतन जमाई तेरे बारणै।"

श्रावण शुक्ला तृतीया को 'सावन तीज' का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन सब लोगों में उल्लास छाया रहता है। इस दिन कन्याएँ साथ बैठकर मेंहदी रचाती हैं। प्रस्तुत गीत में भावज अपनी ननद से मेंहदी रचाने का आग्रह करती है।

"वोलो री नणदल मैंहदे के पात,
रगड़ रचाओ मैंहदा रैचणा जी राज।
नणद रचाए हाथ और पांय,
हमने रचाई चिटली आंगली जी राज।
झूठे रचे सैं हाथ और पायं,
जुलम रची सै चिटली आंगली जी राज।"

सावन तीज के अवसर पर जो कन्याएँ अपने पीहर नहीं जा पाती, उनको 'सिंधारा' भेजा जाता है । सिंधारे में कन्या के कपड़े, मिठाई, फलादि होते हैं । भाई बहन के घर सिंधारा लेकर आया है । बहन की कृशकाय काया को देखकर उसे दु:ख होता है । कारण पूछने पर बहन सास, ननद, ससुर, जेठ, देवर सभी के स्वभाव का मार्मिक चित्रण करती है --

ए सासु रै बीरा चूल्हे की आग, चूल्हे की आग,
नणद घेर घुमान्नण बीजली।
ए सुसरा मेरा रे बीरा बम्बी का नाग,
देवर सांपां का सपलोटिया।
जेठ बीरा रे मेरा आंगण का खूंटा आंगण का खूंटा,
आंदी जांदी की पाड़ै घाघरी ।
कंथा रे बीरा मैंदी का पेड़, कदे रचै कदे ना रचै ।"

समाज में दहेज के कारण या अनमेल विवाह के कारण कन्या को असीम दु:खों का सामना करना पड़ता है । ससुराल में सभी उसे कष्ट देते हैं, उसकी उपेक्षा करते हैं, किन्तु यदि पति का जरा सा स्नेह उसे मिल जाय तो वह इन कष्टों को झेल ले । किन्तु वह आत्मीय जन भी मेंहदी की तरह कभी रचता है, कभी नहीं । इसमें अत्यन्त मार्मिकता व्यंजित है ।

पावस ऋतु के आते ही प्रेमी - प्रेमिकाओं की दुनियां में हलचल मच जाती है । यह ऋतु जहां संयोगी युग्मों को सुख प्रदान करती है, वहां वियोगियों की व्यथा का कारण बनती है । एक विरहिणी नायिका सखियों के साथ झूला झूल रही है । एक बटोही आता है और उसे झूले देता है । उससे वह बातें

करने लगता है, इसी क्रम में उसे घर लौटने में देर हो जाती है । घर पर सास उससे देरी का कारण जानना चाहती है । बटोही का हुलिया बताने पर सास कहती है कि वह तेरा पति था । लेकिन अब क्या किया जा सकता है? बटोही तो जा चुका है । नायिका हाथ मलती पछताती रह जाती है । प्रस्तुत है गीत[1] --

अडबड़ डाले झूलती बटेऊ ढोल्ला झूटे देत्ता जा,
और सखी सब ऊजली है मेरी मिरगा नैनी तै क्यूं मैले भेस?
औरां के परणे घर भले बटेऊ ढोल्ला म्हारा गया परदेस।
गेरो पुराणे ल्यो नये है मेरी मिरगा नैणीं चलो हमारे साथ।
सोन्नै मैं पीली करूं है मेरी मिरगा नैणी चांदी मैं धुंए मंडवाय।
डाढी तो पाडूं तेरे बाप की बटेऊ ढोल्ला मूंछें तो छाल्लूं हाथ।
और सीधी सब बाहुवड़ी है मेरी बहुअड़ राणी तैं कित ला दई वार।
एक बटेऊड़ा जांदड़ा मेरी सासड़ राणी झगड़्यां मैं ला दई वार ।
किसा एक गोरा गाभरू है मेरी बहुअड़ राणी किसीयां की उणिहार।
अंग गोरा मुख पातला मेरी सासड़ राणी जेठ बड़े उनिहार।
जा रे नगोड़डे की बावली म्हारी बहुअड़ राणी वा थारा भरतार।
भाज्या जा तो भाज ले है बहुअड़ राणी हेल्ला देय बुलाय।
भाज्यूं तो मैं ढह पडूं है मेरी सासड़ राणी हेल्ला दिया ना जाय।
वै बणजारे लद गये है मेरी सासड़ राणी जा उतरे किसीयां खूंट।

1- हरियाणा के लोकगीत - राजा राम शास्त्री, पृ0 41

एक सावन के गीत में पौराणिक चित्र खींचा गया है । राधा ने मान किया है, क्योंकि कृष्ण ने पुष्प गोपियों में बाँट दिये और राधा के लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखे । राधा ने इसपर मान किया है --

"ए जी जित बाँटे झोली भर फूल,
उत पड़े रहो जी भगवान् ।"

~~राधा ने मान किया है~~ । इसे कृष्ण उसे मनाने की चेष्टा करते हैं । लेकिन असफल होते हैं और स्वयं भी मानकरके बैठ जाते हैं । अब राधा को पश्चात्ताप होता है । वह एक राजा को बिचौलिये के रूप में लेकर कृष्ण के पास जाती है । दोनों अपनी-अपनी सफाई पेश करते हैं[1] --

"ए जी एक चणा दोय दाल,
दले पीछै ना मिलै भगवान् ।
ए जी एक दही दूजे दूध,
पटे पीछे ना मिले भगवान् ।
ए जी एक पुरुष दूजी नार,
लड़े पीछे ना मिले भगवान् ।"

अर्थात् चना दो दालों में विभक्त होकर, दूध दही बनकर और पुरुष-नारी झगड़कर फिर आपस में नहीं मिलते । राजा इस पर तर्क प्रस्तुत करता है --

"ए जी एक चणा दोय दाल,
पिसे पीछै रल मिलै भगवान् ।
ए जी एक दही दूजे दूध,
बिलोये पाछे रल मिलै भगवान् ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 219

ए जी एक पुरुष दूजी नार,

मनाये पीछे मन जै ए भगवान् । "

अर्थात् चना दालों में विभक्त होकर जुड़ नहीं सकता किन्तु पिसकर आटे के रूप में एक हो सकता है । दूध और दही बिलोने पर एक होजाते हैं और इसी प्रकार यदि पुरुष और नारी को मनाया जाय तो वे भी रूठे नहीं रहते । सामान्य जीवन में ऐसे गीतों से बड़ा सामंजस्य पैदा होता है । कृष्ण के अलौकिक पात्रों के द्वारा इस गीत में सामान्य नर-नारी के प्रसंग को चित्रित किया गया है । अन्ततः पश्चात्ताप के आंसू निकालती राधा के मुख से स्वतः निकल जाता है --

"ए जी रोबै राधे जार बेजार,

आंसू गैरे मोर ज्यूं भगवान् ।

ए जी राधे रूसै बारम्बार,

किसन रूसै ना सरै भगवान् ।"

चन्द्रावल और निहालदे के साहस, वीरता और ओज से भरे गीत इस अवसर पर गाये जाते हैं । प्रस्तुत है निहालदे विषयक गीत[1] --

"मायड़ बरजै कंवर निहाल दे जी,

ए बेट्टी बाग झूलण मत जाय,

बागां में कहिये बेट्टा साहूकार का जी ।

थारी तो बरजी मां मेरी ना रहूँ-जी,

ए जी कोई बाग झूलण इब जाय,

के ए करैगा बेट्टा साहूकार का जी।

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 43

एक हस झूलैं बाह्मण बाणिये जी,

ए जी कोय एक हस मुगल पठाण,

बिचलै हिंडोलै कंवर निहालदे जी।

रिमझिम रिमझिम अम्मां मेरी मीहं पड़ै जी,

ए जी कोय बरसै मूसलधार,

पड़ी ए पंजाली चम्पा बाग मैं जी।

होर सखी अम्मां मेरी भाज गई जी,

ए जी कोय हम से तो भाज्या ए ना जाय,

पड़ी ए पंजाली चम्पा बाग मैं जी।"

चन्दरावल उन वीरांगनाओं की प्रतीक है, जिन्होंने विधर्मियों के कब्जे में रहकर भी अपना बलिदान देकर सतीत्व रक्षा की।

सावन के महीने में चन्दावल अपनी ननद के साथ पनघट पर जाती है। बीच में मुगलों की सेना अपना पड़ाव डाले पड़ी है। चन्दरावल के अनिंद्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वे उसका अपहरण कर लेते हैं। चन्दरावल पशु-पक्षियों द्वारा यह समाचार अपने ससुर, जेठ, देवर व पति को पहुँचाती है। वे आते हैं लेकिन उसे स्वतन्त्र नहीं करा पाते। अन्तत: वह आत्म दाह कर सती हो जाती है। इस विषय का गीत सभी बोलियों में मिलता है। बुन्देलखण्डी में 'मनोगूजरी' बिहारी में 'भगवती का गीत', पंजाबी में 'सुन्दर पनिहारिन' इसी भाव को लेकर गाये गये हैं। द्रष्टव्य है गीत[1]:

"नणद भौजाई दोन्नों जणी दोन्नों पाणी नै जाय,

फौज पड़ी थी नवाब कोजामैं मुगल पठान।

सुण आगली सुण पाछली ए सुण ले मेरा जुवाब,

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 227

या तो गोरी म्हारै मनबसी इसनै छोड़ैगे नाव,
सुण रे मुंगल का छोहरा सुण ले मेरी रे बात।
बाई जी के बदले में रहूँ बाई जी नै जाण ना द्युयां,
उड़ती जाती कोयली एक संड्डेस्सो ले जाय;
मेरा सुसरै नै न्यूं कहो बहुअड़ पकड़ी जाय,
उड़ती जाती कोयली एक संईस्सो ले जाय,
मेरा जेठ नै न्यो कहो बौहोड़िया पकड़ी जाय,
उड़ती जाती कोयली एक संड्डेस्सो लै जाय,
मेरा बालम नै न्यों कहो गोरी पकड़ी जाय,
सुसरा भी सुणकै रो पड़्या जेठ जी ने खाई सै पछाड़,
आप हजारी ढोलो हंस पड़्या ब्याहुवै दोए च्यार,
सुसरा हस्ती चढ़्या जेठ जी घोड़े असवार,
आप हजारी ढोला अरथ मैं अरथ हांके बी जाय,
सुसरा उतर्‌या बड़ तलै जेठा बड़लां की छांय,
आप हजारी ढोला बाग मैं, चाब्बै नागर पान,
जाओ ससुर घर आपणै राखूं पगड़ी की लाज,
खाणा ना खावूं इस तुरक का बाई राजकंवार,
जाओ जेठ घर आपणै राक्खूं पंचां की लाज,
खाणा ना खावूं इस तुरक का बाई राजकंवार,
जाओ बालम घर आपणै राक्खूं सैजां की लाज,
सेज नां पोड़्डै इस तुरक की बाई राजकंवार,
जारै मुगलां का छोहरा जल भर झारी ल्या,

बहुत तिसाई चन्दरावली बाई राजकँवार,
मुगलै ने पीठ फिराई ओ तम्बू के लादई आग,
खड़ी जलै चन्दरावली बाई राजकंवार,
हाय-हाय मुगला करै तौबा करै से पठान,
पकड़ी थी बिलसी नहीं बाई राजकंवार,
मेरा रे भाई ढोलिया गहरो ढोल बजाय,
पीहर सुणिये सासरै लाडलड़ी नंदलाल,
सुसरा जी मुंड्डी धुणै जेठ जी नै खाई से पछाड़,
आप हजारी ढोला रो पड़या इसी दुनियां में ना।"

श्रावण के गीतों में 'बारहमास', 'छैमासा' और 'चौमासा' का भी वर्णन होता है।

भारतीय कवियों ने प्रकृति का चित्रण अधिकतर उद्दीपन रूप में ही किया है। सूर आदि हिन्दी कवियों ने संयोग और वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत षट्ऋतु वर्णन एवं बारहमासा की प्रकृति का वर्णन करने में भेद उत्पन्न नहीं किया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने नागमति के विरह वर्णन में बारहमासे द्वारा उसकी वेदना को अत्यन्त कोमल व निर्मल रूप में अभिव्यक्त किया है। बारहमासे की परम्परा लोकगीतों से आई है। जन मानस की इसी परम्परा को साहित्य में स्थान मिला जिसका रूप जायसी के पद्मावत में अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में देखने को मिलता है। रीतिकाल में ईश्वर प्रेम व भक्ति भावना के प्रकटीकरण के लिए इनका सहारा कुछ कवियों ने लिया। कबीर ने लोकगीतों की इसी

पद्धति के आधार पर ज्ञान व भक्ति भावना को प्रकट किया ।[1]
बारहमासा में प्रकृति का मानव हृदय के भावों से स्वच्छन्द व उन्मुक्त सम्बन्ध स्थापित होता है । जिस प्रकार लोकगीतों में बारहमासा का प्रचलन होता है उसी प्रकार नरपति नाल्ह ने बीसलदेव रासो में राजमती के वियोग का वर्णन बारहमासा शैली में किया है । यद्यपि बीसलदेव रासो की रचना गाने के लिए की गई थी, वह ग्रंथ नहीं है ।[2] इस ग्रंथ में लोक तत्वों का समावेश मिलता है । इसका प्रारम्भ विवाह गीतों से होता है । बांगरू लोकगीतों में और अन्य बोलियों में बारहमासा का आरम्भ मुख्त: आषाढ़ मास से होता है लेकिन

1- (क) गुलाल साहब (सं0 1750) ने बारहमासा लिखा । देखे - डॉ0 रामकुमार वर्मा कृत हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 404

ख) सर्वसुख शरण (सं0 1857) बारहमासा विनय देखे -- डॉ0रामकुमार वर्मा कृत हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 686

ग) रामरूप (सं0 1807) बारहमासा, देखें-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 413

घ) बख्शी हंसराज (1811) बारहमासी, देखें- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ॰ रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 353

ङ॰) सुन्दर(1689) बारहमासी, देखें - हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ॰रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 229

-कबीर --- बारहमासा - 50 पद्य, विनय ज्ञान पृ0 363

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ0 रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 36

बीसलदेव रासो के कवि ने बारहमासा का प्रारम्भ कार्तिक मास से किया है । यह सटीक भी लगता है । आषाढ़ मास में वर्षा के कारण प्रवास पर निकलना कठिन होता है । अतः वर्षोपरान्त बीसलदेव प्रवास पर निकलता है, यही कारण है कि बारहमासे का प्रारम्भ कार्तिक मास से हुआ है । इसमें स्वाभाविकता का पुट है । आभासित होता है कि कवि की लोक रूचि में गहरी पैठ थी । किन्तु जायसी ने पद्मावत में बारहमासे का आरम्भ लोक प्रचलित परम्परा के आधार पर आषाढ़ मास से ही किया है --

"चढ़ा आसाढ़ गगन घन गाजा ।
साजा बिरह दुन्द दल बाजा ।।"[1]

आषाढ़ मास से बारहमासे के आरम्भ की पृष्ठभूमि में वैज्ञानिक कारण निहित है । आषाढ़ मास वर्षा का प्रारम्भिक मास है । इसमें सामीप्य भावना तीव्रतम हो उठती है । वर्षा काल में गगन बिहारी पक्षी गण भी अपने नीड़ों में विश्राम करते हैं । मिलन ऋतु में कोई भी मानव किस प्रकार एकाकी रह सकता है? आषाढ़ मास की प्रथम बौछार विरही हृदय को व्याकुल कर देती है । कालिदास का महाकाव्य मेघदूत वर्षा ऋतु से उत्पन्न विरह की व्याकुलता का परिणाम ही है ।

मानव मन प्रकृति में अपने भावों का तादात्म्य करता है अथवा अपने भावों को प्रकृति पर आरोपित करता है । अपनी खुशी में उसे प्रकृति आह्लादित दिखाई देती है, जबकि अपनी उदासी में मुरझाई हुई, निस्तेज ।

1- पद्मावत, नागमती वियोग खण्ड, पृ0 152, जायसी

बांगरू बोली के बारहमासी गीतों में वर्षभर होने वाली विरह-व्यथा का निरूपण होता है । इनमें करूणा का पर्याप्त सामंजस्य होता है । वियोग से व्याकुल रमणियाँ इन्हें मेघावलियों के स्वर में स्वर मिलाकर गाती हैं । बारहमासा में हृदय के भावों की सच्ची, सरल एवं सहज अभिव्यक्ति होती है। डॉ० उपाध्याय ने इन गीतों की विरहप्रधानता के आधार पर इनका नामकरण 'विरहमासा' किया है । बारहमासे में भावों की मार्मिक व्यंजना एवं प्राकृतिक सौंदर्य का सूक्ष्म विवेचन मिलता है । इनमें लोक में व्याप्त त्यौहार उत्सव, ऋतु-वर्णन आदि के उल्लेख के साथ प्रियतम से बिछोह की पीड़ा का वर्णन होता है ।

हरियाणा में प्रचलित बारहमासों के अनेक प्रकार हैं । एक बारहमासे में राधा की विरह-व्यथा का चित्रण है । किस प्रकार एक तोता राधा को प्रिय के आने की सूचना देता है और उनके ना आने पर राधा तोते को दण्डित करने को तत्पर होती है । तोता चूंकि दैवज्ञ है अत: वह राधा को सांत्वना देता है - गीत के बोल इस प्रकार हैं --[1]

"साढ जे मास सुहावणा सुआ रे ।
जै घर होता हर को लाल, मैं हाली हंदावती ।
सामण जे मास सुहावणा सुआ रे ।
जै घर होता हर को लाल, मैं हिंडो घलांवती ।
भादूड़ा जे मास सुहावणा सुआ रे ।
जै घर होता हर का लाल मैं गूगा मनावती ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 230

आसोज जे मास सुहावना सुआ रे ।

जे घर होता हर का लाल मैं पित्तर संमोखती ।

कातक जे मास सुहावणा सुआ रे ।

जै घर होता हर का लाल मैं दीवाली मनावती ।

मंगसर जे मास सुहावणा सुआ रे,

जै घर होता हर का लाल, मैं सौड़ भरावती ।

पौह जे मास सुहावणा सुआ रे

जै घर होता हर का लाल मैं संकरांत मनावती ।

माह जे मास सुहावणा सुआ रे,

जै घर होता हर का लाल मैं बसन्त मनावती ।

फागण जे मास सुहावणा सुआ रे,

जै घर होता हर का लाल मैं धुहलैंडी खेलती ।

चैत जे मास सुहावणा सुआ रे

जै घर होता हर का लाल मैं गणगौर पूजती ।

वैषाख जे मास सुहावणा सुआ रे ।

जै घर होता हर का लाल मैं पंखा मंगावती ।

जेठ जे मास सुहावणा सुआ रे,

जै घर होता हर का लाल मैं जेठड़ा मनावती ।

बारहए महीना होलिया सुआरे ।

तोड़ूं मरोड़ूं तेरा पींजड़ा ।

जल में दूंगी बहाय तेरी सेवा न करूं सुआरे ।

म्हारी तो सेवा वै करैं राधा ए जो हर आवैंगा आज ।

जोड़ूं जगोड़ूं तेरा पींजड़ा सुआरे । और चुगावूं पीली दाल ।

तेरी सेवा मैं करूँ ।"

विरह व्यथा के अतिरिक्त बारहमासों में बारहों महीनों के मौसम का, कृषि का, कृषक की दिनचर्या का वर्णन भी होता है । राजस्थानी बारहमासे में कृषक के दैनिक जीवन का वर्णन है । कार्य ही उसके लिए सब कुछ है । गीत प्रस्तुत है --[1]

साढ़ महीने बिरखा लागी, बाजरियां री वाह ।
माऊ जी म्हारे भात्तो ल्यावै, वाहरे सांई वाह ।।
सावण महीने बाजर लागी, नीनाणां री नाह ।
काचरियां री बेलां टालां, वाह रे सांई वाह ।
भाद्रू महीने गूगा होसी, तोवणियां री ताह ।
बाजरियां री रोटी खावां, वाह रे सांई वाह ।
आसोजां मैं आसा लागी, हक्कालां री हाह ।
राती बासे रोही रहस्यां, वाह रे सांई वाह ।
कात्ती महीने करड़ा सिट्टा, भावै इत्ता खाह ।
कात्ती महीने सिट्टा कीना, वाह रे सांई वाह ।।
मिगसर महीने मोका महत्ता, लेखो लेसी साह ।
लेम 'र देय' दूर रा होस्यां, वाह रे सांई वाह ।।
पोह महीने पालो पाड़सी, खालड़ी रो खाह ।
खालड़ी रो खाहे कीनो, वाह रे सांई वाह ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 231

माह महीने पालो पड़सी, पाणी पत्थर खाह ।
पाणीरो तो पत्थर कीनो, वाह रे साँई वाह ।।
फागण महीने फाग खेलें, गोपियां रो नाह ।
महूडे रो मद्द पीयो, वाह रे साँई वाह ।।
चैत महीने चंपा मोरी, चर्चल मोरवा साह।
बिन क्षेठां ही हरिया होसी, वाह रे साँई वाह।।
वैसाखा मैं धूप पड़सी, ता बड़िये री छाह ।
पड़ छायां मैं पड़िया रहस्यां वाह रे साँई वाह ।।
जेठ महीने धूप पड़सी, ता बड़िये री ताह ।।
खेजड़ चढ़ र खोखा खास्यां, वाह रे साँई वाह ।"[1]

सावन मास कृषकों के लिए वैसे ही महत्वपूर्ण पर्व है । बल्कि स्रष्टा पर्व है । सावन तीज पर फसलों की बुवाई होती है और होली पर अनाज निकाला जाता है --

"आई तीज बो गई बीज
आई होली भर ले गई झोली ।"

तीज पर्वों का आरम्भ है तो होलिकोत्सव में उनका अवसान होता है । इस प्रकार सावन मास में हरियाणवी नर-नार के मन में हरे वृक्षों के नये पत्तों की भांति नई ताज़गी और उल्लास छा जाता है ।

1- राजस्थानी लोकगीत में बारहमासा, पृ0 91-92
प्रो0 सूर्यकरण पारीक, एम॰ए॰

अनेक ऐसे भी परिवार होते हैं जो गरीबी के बोझ तले दबे हैं । व्रत-त्यौहार पर उनका उल्लास अत्यल्प होता है । इसी भाव को इस गीत में ढाला गया है --

"सामण आया है सखी सामण के दिन च्यार,
उनके तै सामण के करै जिनके दुब्लद न बीज,
तड़के तै ज्यांगी लखी बाप कै ल्याऊँगी ब्लद अर बीज,
बूढ़ा दे दीन्हा बाब्ल ढौढिया, बौदी तो दे दी जुवार,
हांक्या ना चाल्या बाब्ल ढांढ़िया बोई ना जामी जुवार,
खूंटी तै बांधो बेटी ढांढ्या कोठी तो घालो जुवार,
टग-टग तै चाल्या बेटी ढांढिया सण ज्यू जामी जुवार॥"

इस मासके गीतों का कोई अन्त नहीं । विरह-मिलन, राधा-कृष्ण, दैनिक जीवन, सभी प्रसंगों के गीत उपलब्ध होते हैं ।

सावन के उपरान्त भादों मास आता है, इस मास में अनेक व्रत त्यौहार आते हैं । भादों बदी अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा जाता है । इस दिन कृष्ण जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में धार्मिक गीत(भजन) गाये जाते हैं । इनके प्रसंग कृष्ण जन्म और उनकी लीलाओं से सम्बन्धित होते हैं--

"जलभरण देवकी जाय दशोदा रस्ते में मिली हरे ।
के दुखड़ा बेबेसास नणद का, के बाले भरतार बेबे,
के बाले भरतार, दशोदा रस्ते में मिली हरे ।
ना दुखड़ा बेबे सास नणद का ना बाले भरतार बेबे
ना बाले भरतार दशोदा ~~रस्ते में मिली हरे~~ ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 233

एक दुखड़ा बेबे कौरव जली का, जिण मेरा मारा से मान,

जिन मेरा मारा से मान, दशोदा रस्ते में मिली हरे।

जे बेबे तेरे छोरा होजा गोकल दिये पुचाय बेबे गोकल,

दिये पुचाय, दशोदा रस्ते में मिली हरे --- ।

जे बेबे मेरे छोरी होगी पुत्र का बदला चुकाय,

बेबे पुत्र का बदला चुकाय दसोदा रस्ते में मिली हरे।"

कृष्ण जन्माष्टमी के अगले दिन गूगा नवमी का त्यौहार मनाया जाता है। गूगा राजस्थान का वीर पुरुष था, जिसे पीर, जाहरपीर, गूंगा बीर अथवा गुरू गूगा कहा जाता है। गूगा को सर्पों का देवता माना जाता है। इसीलिए गूगानवमी के दिन जल में दूध डालकर घर में सर्वत्र इस कामना से छींटा दिया जाता है कि सर्प कहीं दिखाई न दे।

गूगा की मान्यता हिन्दू और मुसलमान दोनों में समान है। मुसलमान इसे गूगापीर कहते हैं। गूगा का इतिहास अन्धकारमय है। विभिन्न विद्वानों के मतों का निष्कर्ष निकालने पर ज्ञात होता है कि गूगा राजपूत थे। सर आर॰सी॰टैम्पल के मत में "गूगा एक हिन्दू है और चौहान राजपूतों का नेता है, जिसने 1000 ईस्वी में महमूद गज़नी से रोका था।"[1] गूगा के काल निर्णय के विषय में विभिन्न मत हैं। उनके अनुसार गूगा की ख्याति मुगल सम्राट औरंगजेब के समय 1658-1707 में व्याप्त थी।[2]

एक अन्य प्रचलित मत के अनुसार गूगा हरियाणा के चौहान राजपूत थे। सन् 1353 में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह द्वितीय के सेनापति

1- दी लीजैन्डस आफ दी पंजाब, प्रथम खण्ड, पृ0 121, सर आर॰सी॰टैम्पल

2- ग्लौसरी आव दी पंजाब एण्ड एन॰डब्ल्यू॰एफ॰पी॰ट्राइब्स, प्रथम भाग, पृ0 178

अबूबकर से युद्ध करके वीर गति को प्राप्त हुए ।

इनसे इस मत की पुष्टि होती है कि गूगा राजपूत थे, लेकिन यह मिथ्या प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु युद्ध में हुई । लोक में प्रचलित मतों के अनुसार यह युक्ति संगत प्रतीत होता है कि गूगा ने भू-समाधि ली थी ।

लोक देवता गूगा का जन्म बीकानेर के 'ददरेड़ा' नामक स्थान में 'जेवर' नामक राजपूत के घर हुआ था । उसकी माता का नाम बाछल रानी था ।[1]

गूगा की कथा लोक में प्रचलित है जिसके अनुसार गूगा ने अपने दो मौसेरे भाइयों का वध उसकी पत्नी सिरियल को कुदृष्टि से देखने के कारण कर दिया था ।[2]

"अरजन नै मार्या जाल तलै,
सरजन नै सखरियै की पाल।"

इस कृत्य पर माता बाछल ने गूगा को लताड़ा था -[3]

"जुल्म करया रे मेरा लाड्ला,
मार्या रे मौस्सी का पूत"

माता की लताड़ से क्षुब्ध गूगा धरती माता से प्रार्थना करता है कि वे उसे अपने में लीन कर लें । धरती माता उससे पूछती हैं कि तू हिन्दू है या मुसलमान, क्योंकि भू-समाधि उसी दशा में गूगा ले सकता है जबकि वह मुसलमान हो --

---

1- हरियाणा के लोक गीत - एम॰एस॰रन्धावा, पृ0 60

2- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 235

3- वही, पृ0 235

"धरती माता लेखा मांगे ,

के हिन्दू के मुसलमान"

गूगा मुस्लिम धर्म की दीक्षा लेता है और फिर धरती से कहता है --

"आज लग तो मेरा हिन्दू जनम था,

आज हुआ मुसलमान ।"

गूगा भू-समाधि ले लेता है । गूगा ने दोनों धर्मों का पालन किया था, यही कारण है कि उसे दोनों धर्मों के लोग मानते हैं ।

सरियल और उसकी माता बाछल को गूगा के भू-समाधि लेने का बहुत खेद होता है । प्रार्थना करने पर गूगा स्वीकार करता है कि वह प्रति वर्ष भाद्रपद कृष्ण नौमी को आएगा । इस आशय का गीत लोक में प्रचलित है[1] --

"लीला सा घोड़ा गोरा गाबरू धरती मैं गया समाय,

जा राणां एक बर घर आ

धरती माता लेखा मांगे के हिन्दू के मुसलमान

जा राणां ----------- ।

आज लग तो मेरा हिन्दु जनम था आज हुआ मुसलमान

जा ---------- ।

परसों मैं तेरा बाबल जिबै कित गया बैठणहार

जा--------------- ।

तो मत जिबै बाबल मेरा मैं आऊँगा बैठणहार

जा राणां------------ ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 237

रसोई मैं तेरी माता जिखै कित ग्या जीमणहार

जा राणा एक बर घर आ ।

तूँ मत जिखै मायड़ मेरी मैं आऊँगा जीमणहार

जा राणा ---------------

सासरिये तेरी बाह्रण जिखै देख जैठाणी का बीर

जा------------- ।

तूँ मत जिखै बाह्रण मेरी आऊँगा तेरी लेनीहार

जा------------ ।

पीहरिये तेरी गौरी जिखै देख बाह्रण का निसाव

जा ------------ ।

तूँ मत जिखै गौरी मेरी मैं आऊँगा तेरी लेनीहार

जा राणा ---------- ।

साढ़ न आऊँ सामण न आऊँ आऊँ भादूड़े मास

सातम ना आऊँ आठ्यम न आऊँ, आऊँगा नौमी की रात ।

लोक में प्रचलित वह गीत प्रस्तुत है जिसके अनुसार अरजन-सरजन ने सिरियल को कुदृष्टि से देखा था । गूगा जाल के वृक्ष के नीचे सोया है । उसे जगाने को घर की सभी स्त्रियां क्रमशः आती हैं लेकिन गूगा उसकी पत्नी सिरियल के जगाने पर ही उठता है । पाँचों हथियार लेकर मौसेरे भाइयों की हत्या कर देता है । द्रष्टव्य है इस आशय का लोक गीत[1] --

---

1- हरियाणा प्रदेश के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 45

और जाल सब भिनभिनी तैं क्यूं ए हरियाल्ली जाल,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

के तनै माली सींचियां के तेरी जड़ पैताल,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

ना मनै माली सींचिया, ना मेरी ए जड़ पैताल,

वारी मेरा गूगा भलरह्या।

मेरे नीचै सोवै गूगा है, सौवै है वा चादर ताण,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

गूगे की मायड़ आई जगावण नै उट्ठो रे मायड़ के पूत,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

जाओ मायड़ घर आपणै, हम हां ए बागड़ के लोग,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

गूगे की ताई आई जगावण नै, उट्ठो रे ताई के पूत,

वारी मेरी गूगा भल रह्या।

जाओ ताई ए घर आपणै, हम हां ए बागड़ के लोग,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

गूगे की चाच्ची आवी जगावण नै, उट्ठो रे चाची के पूत,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

जाओ चाच्ची घर आपणै, हम हां ए बागड़ के लोग,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

गूगे की बूआ आई जगावण नै, उट्ठोरे बुआ के पूत,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

जाओ बूआ घर आपणै, हम हां ए बागड़ के लोग,

वारी मेरा गूगा भल रह्या।

गूगै की बाहृण आवी जगावण नै उठो रे ब्राहृण के बीर,

वारी ---------------।

जाओ ब्राहृण घर आपणै हम हाँ ए बागड़ के लोग,

वारी-------------- ।

गूगै की मोस्सी आई जगावण नै, उट्ठो रे मोस्सी के पूत,

वारी -------------।

जाओ मोस्सी घर आपणै हम हाँ ए बागड़ के लोग,

वारी----------------।

गूगै की गोरी आई जगावण नै, उट्ठो रे गोरी के भरतार,

वारी मैरा ---------------।

सरियल निकली पाणी नै लैगी दोफड़ वाली माटी,

वारी----------------।

अरजन सूतो जाल तलै सरजन सखरियै की पाल,

वारी --------------- ।

अरजन पकड़यो गूंगहो, सरजन मैरी छल्लैआरी नाथ

वारी ---------------

थम लागो मैरे देवर जेठ, राखो ए बहू की ल्हाज,

वारी -------------- ।

थम सूत्य गोगा नीदेडल्यां, लूटी लै री छल्लैआरी नार,

वारी----------------- ।

खूंट्टे राभैं बाछड़ू, रोवैं रे जार बेजार,

वारी -------------- ।

गूँगा उठ्या री मड़कै तान, ऊठ्या री वो चादर तार,

वारी मेरा ------------ ।

देओ अम्मा मेरे पाँचूं कपड़े, दे ओ री पाँचूं हथियार,

वारी ------------ ।

के करैगा पाँचूं कपड़े, के करैगा पाँचूं हथियार,

वारी ------------ ।

के तूं मारै मिरगला, के तूं मारै मिरगला की डार,

वारी ------------ ।

मन्नै मारे री अरजन सरजन बीर, मारे री मोस्सी के पूत,

वारी ------------ ।

मोस्सी कर दी ऊतणी, कर दी रे पूतां बिना,

वारी मेरा------------ ।"

गूगा हरियाणा एवं राजस्थान का अत्यन्त लोकप्रिय देवता है ।

एक अन्य गीत प्रचलित है जिसमें सरियल को दिया वचन निभाने के लिये गूगा प्रति दिन रात्रि में उससे मिलने आता है । किन्तु श्रावण तीज के दिन वह यह रहस्योद्घाटन अपनी सास पर प्रकट कर देती है । परिणामस्वरूप वह गूगा को सदा के लिए खो देती है । प्रस्तुत है गीत के बोल[1] -

"आम की डाली पड़ी ए पंजाली,

झूलन आवै रनवास मियां ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 237

सासू तो झूलै री वाकी बहुए लखावै,

लोग करै चरचाव मिया'।

उठ-उठ् मूंगा बांदी महला' मैं जइये,

सिरयल हाल कुलाय मिया'।

बांगा तै उठके बांदी मैहुला' मैं आई,

उठो उठो राणी बांगा' मै चालिओ।

बाछल रही ए कुलाय मिया'।

कहो तो बांदी मेरी सब रंग पैहरूं, पंचरंग पहरूं,

कहो तो चलूं मैले भेस मिया'।

हमके जाणै राणी पंचरंग पैहरो, सब संग पैहरो,

हम के जाणै मैले भेस मिया'।

बाल बाल तै मूंगा मोती पिरोवै, माथै मैं बिंदा,

नैना' मैं स्याही मुखड़े मैं बिड़ला लाय मिया'।

हरी हरी चूड़िया' अनबट बिछुंया,

भर लिया सोलह सिंगार मिया'।

मैहुला' से चली राणी बांगा मैं आई,

फ्छवाते पखा सासू पवन चलै ही,

मुखतै तो उड्यो है रूमाल मिया'।

वा रनवासै मैं चरचा चली है,

यो कैसो रांडा का भेस मिया'।

बाग्गा' मैं जाओ बांदी सटी ल्यावो,

मार उधेड़ या की खाल मिया'।

चढ़ती पंजाली सासू कुछ मत कहिये,

मैहलों में लीजे समझाय मियां।

वहां की तो चली राणी मैहलां में आई,

खुट्टी धरो तो राणी चाबक उतारो,

मार उधेड़ी तन की खाल मियां।

तेरे तो लेखे सासू मर बी गये हैं, चले बी गये हैं,

मेरे तो आवै नित रोज मियां।

अबके तो आवै बहू हमें री बताओ,

कोई तनक सूरत दिखाय मियां।

आदी सी रात अर झुकी है अंधेरी,

कोई जाहर आए हैं मठार मियां।

और दिनां तो गोरी दिबला बले हैं,

आज कैसे घोर अंधेर मियां।

और दिनां तो राणी हंसी बी खुसी ही न्हाई धोई,

आज कैसो मैलो भेस मियां।

अम्मां तुम्हारी रे सास हमारी,

मार उधेड़ी तन की खाल मियां।

दिन निकला जब चिड़ियां चौकी,

कोई जाहर हुए छोड़े असवार मियां।

सोवै के जागै री मेरी बैरण सासू,

मैहलां के चोर भागे जाय मियां।

खइया तो रहिये रे मेरे दूधां ते पाले, गोद खिलाये,

कोई तनक सुरत दिखाय मियां।

पीछे तो फिरके देख मेरी माता,

मैहला मैं लग रही आग मियां।

मैह्ला की आग बेटा जल सूं बुझैगी,

मायड़ की लोभण आग मियां।

सासू मुड़ के देखण लागी,

कोई घोड़े सेती गये हैं समाय्य मियां।

हम सूं बी खोया सासू आप सूं बी खोया,

चले गये हैं हाय मियां। "

गूगा नवमी के दिन हरियाणा में छड़िया निकलती हैं। गूगा भक्तों में आवेश बनकर आता है। गूगा का प्रिय वृक्ष जाल है, जहां छड़ी को खड़ा कर दिया जाता है। उसकी पूजा करने नर-नारी वहां जाते हैं। शक्कर और बताशों की भेंट चढ़ाई जाती है। इस दिन मेलों का आयोजन होता है।

0-------0

(साँझी पूजन)

अश्विन शुक्ला प्रतिपदा को नवरात्रों का आरम्भ होता है । दुर्गा माता की उपासना होती है । घर घर में देवी का पूजन होता है । साँझी बिठाई जाती है । साँझी मिट्टी की बनाई जाती है और इसे भित्ति पर गोबर से चिपका दिया जाता है । इस देवी-प्रतिमा को मिट्टी के आभूषण पहनाये जाते हैं । साँझी बालिकाओं को अत्यन्त प्रिय हैं । प्रातः और सन्ध्या दोनों समय साँझी की आरती की जाती है और नैवेद्य धराया जाता है[1] --

"आरता है आरता, संझा माई आरता,
आरता के फूल चमेल्ले के बेल्ले,
इतणे से भाइयाँ में कुण सा गोरा,
चन्दा गोरा सूरज गोरा, आरता है आरता ।"

साँझी माता के साथ उसकी नायन भी रहती है । नायन लोक में 'धूंधा' के नाम से प्रसिद्ध है । साँझी माता के साथ गीतों में धूंधा माई को भी स्थान मिला है[2] --

"म्हारी साँझी ए, के ओढ्ढैगी, के पैह्रैगी
क्याँ है की माँग भरावैगी, क्याँ है की पट्टी झुकावैगी,
चूंदड़ ओढूंगी, दाम्मण पैह्रूगी, रोली की माँग भराऊँगी,
मोत्तियाँ की पट्टी ए झुकाऊँगी ।
म्हारी धोंधा ए, के ओढढैगी, के पहरैगी,
क्याँ है की माँग भरावैगी, क्याँ है की पट्टी झुकावैगी,
गूद्दड़ ओढ्ढूंगी, खाँदड़ पैहरूंगी, ढेर्‍याँ की माँग भराऊँगी,

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 238

2- वही,

लीख्यां की पट्टी ऐ झुकाऊँगी।

जीम ले हे जीम ले,

संझा माई जीम ले,

के जीम्मैगी, के झूठैगी, क्यां हे की चलू भरावैगी?

लाड्ड जीमूंगी पेड़े झूढ़गी, इमरित की चलू भराऊँगी।

भूखी हो तो होर ले, धापी हो तो चलू ले,

जीम ले हे जीम ले धोंधां माई, जीम ले,

के जीम्मैगी, के जूठैगी क्यां हे की चलू भरावैगी?

पूरी जीमूंगी, सब्जी जूढ़गी पाणी की चलू भराऊँगी।

भूखी हो तो होर ले, धापी हो तो चलू ले।"

बालिकाऐं संझा माता से सखी का सा व्यवहार करती हैं। लोक में प्रचलित गीत इसी भाव को व्यक्त करते हैं --

"मेरी सांझी के ओरै धोरै फूल रही कव्वाई,

बाहूण मैं तन्नै बूझूं संझा के तेरे भाई,

मेरे पांच पचास भतीजे नौ दस भाई

बाहूण केयां का ब्याह रचाया कितणे की करी सगाई,

पांच्यां का तो ब्याह रचाया दसां की करी सगाई।"

नवरात्रि तक यह आयोजन चलता है। आरती के उपरान्त लड़कियां गीत गाती हैं --[1]

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 48

"ऊँची टिबरिया चलावे तीर कमान,

देखण चाल्लो है बाहूण संझा के लणिहार।

के देखोगी ए के चन्दा नाम धड़ाम,

के देखोगी है के सूरज नाम धड़ाम्। ऊँची ------- ।

देखण चालो है बाहूण मनोरमा के लणिहार,

देखण चालो है बाहूण ऊषा के लणिहार,

के देखोगी है के सुधीर नाम धड़ाम्,

के देखोगी है के सुनील नाम धड़ाम्। ऊँची ------- ।

है वे आवें थे चार जणे संझा तेरे बीर,

है वे आवें थे च्यार जणे धोंधा तेरे बीर,

है मैं भाज्जी थी बीर मिलण मेरा टूट्या नौलड़ हार,

है वे चुग ज्यागे चिड़ी चिड़कले, पो ज्यागे बणजोर,

है कित सें वे चिड़ी चिड़कले कित का से बणजारा,

है आगम के चिड़ी चिड़कले पाछम का बणजारा।"

(संझा और धोंधा के नाम पर लड़कियों के नाम लिए जाते हैं)

दशहरे के दिन सांझी को ससम्मान जल में विसर्जित कर दिया जाता है।

"जगो म्हारा पैतला,

म्हारी सांझी बहुआइये हो राम।"

विसर्जन के उपरान्त महिलायें सांझी मांगती हैं --

"सांझी देइ री सांझी देइ,

तेरा बेट्टा जीवे सांझी देइ।"

{कार्त्तिक}

श्रावण मास जहाँ मस्त महीना होता है, वहाँ कार्तिक में शान्ति और धार्मिकता की अधिकता रहती है । लौकिक आचार विधानों की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण मास है । इस मास में प्रातः स्नान को विशेष महत्त्व दिया जाता है । मुँह अँधेरे स्त्रियाँ नदी तालाब पर स्नानार्थ जाती हैं । भोर का शान्त वातावरण गीतों से गुंजरित हो उठता है --

"खिल रहा चाँद लटक रहे तारे, चल चन्द्रावल पाणी,
कैसे भर लाऊँ जमना जल झारी?
सासड़ की जोई मेरी नणद हठोली रात नै खंदाई पाणी,
कैसे भर ल्यावूं जमना जल झारी?
उरलै घाट मेरा घड़ा ना डूबै, परलै कृष्ण मुरारी,
कैसे भर ल्यावूं जमना जल झारी?
क्यांहे की तेरी ईंढली गुजरिया प्यारी क्यांहे की जल झारी,
कैसे भर ल्याऊँ जमना जल झारी?
अदंन चंदन की ईंढली कन्हैया प्यारे सौने की जल झारी,
कैसे भर ल्याऊँ जमना जल झारी?"

कार्तिक के गीतों के अनेक विषय होते हैं । जैसे राधा-कृष्ण शिव-पार्वती आदि । कार्तिक स्नान दुहेला माना जाता है । शीत में घर से निकलकर नदी-तालाब पर जाना और उसमें शीतल जल से स्नान करना, आसान नहीं है । यही कारण है कि कार्तिक स्नान का पुण्य अधिक मिलता है । स्त्री पुरूष अनगिनत संख्या में स्नानार्थ जाते हैं । एक गीत में हरियाणवी कृषक बाला परिवारजनों से कार्तिक स्नान की आज्ञा माँगती है । प्रस्तुत है गीत[1] --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 239

"परस बठन्ता अपणा बाबल बूझा

कहो तो कात्तक न्हाल्यूं हो राम ।

कात्तक न्हाणा बेट्टी बड़ा ए दुहेल्ला

लाइयो बाग बगीचे हो राम ।

दूध धमोड़ती अपणी मायड़ बूज्झी

कहो तो कात्तक न्हा ल्यूं हो राम ।

कात्तक न्हाणा बेट्टी बड़ा ए दुहेल्ला

सिंच्चो धरम की क्यारी हो राम ।

धार कढ़न्ता अपणा बीरण बुज्झा

कहो तो कात्तक न्हाल्यूं हो राम ।

कात्तक न्हाणा बेब्बे बड़ा ए दुहेल्ला

लेल्ले न गोद भतीज्जा हो राम ।

पीसणा पीसती अपणी भावज ओ बूज्झी

कहो तो कात्तक न्हा ल्यूं हो राम।

कात्तक न्हाणा नणदल बड़ाए दुहेल्ला

काढो हो ना कसीदा हो राम ।

कार्त्तिक मास में तुलसी पूजन का विशेष महत्त्व होता है । तुलसी ने एक दीर्घ एवं अनन्य भक्ति के उपरान्त विष्णु जैसा वर प्राप्त किया था ।" कन्याएँ तुलसी की भक्ति में गीत गाती हैं[2] --

---

1- हरियाणा का लोक साहित्य, पृ0 239, डॉ0 शंकर लाल यादव
2- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 50.

"सात सहेल्ली न्हाण नै चाल्ली तुलसां कूक बलाई हो राम।
लोट्टा भी ले लिया झारी भी ले ली, तुलसां न्हाण नै चाल्ली हो राम।
सात सहेल्ली न्यूं उठ बोल्ली तुलसां ओड कंवारी हो राम।
लोट्टा भी पटक्या झारी भी पटकी रोंवदड़ी घर आई हो राम।
के बेट्टी तुलसां भूतां डराई के भाइयां नै दुत्कारी हो राम।
न हो मेरा बाबल भूतों डराई, ना भाइयां नै दुदकारी हो राम।
सात सहेल्ली न्यूं उठ बोली तुलसां ओड कंवारी हो राम।
के बेट्टी चांद वर ढूंढो के बेट्टी सूरज वर ढूंढो हो राम।
सूरज हो बाबल तपै घनेरा चंदा की रैन अंधेरी हो राम।
हम नै बाबल ऐसा वर ढूंढो सीस उपावै धंधा ल्यावै हो राम।
ब्याहो नै बाबल आप कृष्ण कै, ज्यूं काया सुख पावै हो राम।"

कार्तिक के गीतों में हरजस, प्रभाती और भजन भी गाये जाते हैं। गंगा स्नान का बड़ा महात्म्य होता है - कार्तिक पूर्णिमा के दिन। इसे एक पवित्र और पावन पर्व के रूप में मनाया जाता है। वैसे तो सारा महीना ही धार्मिक एवं आध्यात्मिक कृत्यों का महीना है। गंगा-स्नान का निम्न गीत विरहिणी सीता की विरह-वेदना को व्यक्त करता है -

"आया सै गंगा जी का नहाण,
के हम तुम संग चलैं मेरे राम।
आप उतर गये पार,
राधे झ्योला दूर रहा मेरे राम।
ज्यों रे घीलड़ी में घीय,

कि रहड़ती ने छोड़ गये मैरे राम।

ज्यों रे कढ़ाही में तेल,

कि रंधती ने छोड़ गये मैरे राम ।

ज्यों रे गलियारे की गींड़,

गिरड़ती नै छोड़ गये मैरे राम।

ज्यों रे कुए बीच डोल,

लटकती नै छोड़ गये मैरे राम ।

ज्यों रे गड़वाले की आग,

सिलगती नै छोड़ गये मैरे राम ।

आप उतर गये पार,

राधे झ्योला दूर रहा मैरे राम ।"

कार्तिक पूर्णिमा को गढ़मुक्तेश्वर में मेला लगता है । इस मास में त्यौहारों की बाढ़-सी आ जाती है । दीपावली, करवा चौथ, अहोई आठें, भैया दूज व गोपाष्टमी इनमें से मुख्य हैं । दीपावली भारतीयों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण त्यौहार है । घरों में दीपक जलाकर व अनेक पकवान बनाकर दीपावली का स्वागत किया जाता है । इस दिन धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी और देवता कुबेर का पूजन होता है । देवउठनी ग्यारस पर्व के रूप में मनाई जाती है । मन्त्रपाठ की तरह देवजागरण का निम्न गीत गाया जाता है [1] --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 24।

"हे दे । सुत्तीड़ा साढ मास, हे दे उट्ठीड़ा का कात्तण मास,

उठूं सूं रे उठावा सा, छीकै हाथ चलावा सा,

छीकै धरी चार कचौरी, आप खा कै, ब्राह्मण दीजै,

आप खा लाहा हो, ब्राह्मण दीजै कहा हो।"

कार्तिक मास की देवउठनी ग्यारस को उठने वाला देव समाज आषाढ़ शुक्ल एकादशी को सोता है । स्त्रियां दीवार पर देवमूर्ति अंकित करती हैं। फल व अनाज भेंट रखकर दीपक प्रज्वल्लित करती हैं । इस अवसर पर गीत गाये जाते हैं[1] --

"उट्ठो नराण, बैट्ठो नराण, काट्टो चण्या की खेत्ती नराण,

औलैं कौले धरे जमेट्टे ये बहुए द्रौपदी तेरे बेट्टे ।

औलैं कौले धरे जमेट्टे, ये बहु दुलारी तेरे बेट्टे ।"

तत्पश्चात् दुलारी और द्रौपदी के स्थान पर परिवार के बहु-बेटों के नाम लिये जाते हैं । गीत आगे बढ़ता है[2] --

"आओ छोहरियो दाभ कटाओ ए,

दाभ कटा के रस्सी बटाओ ए,

रस्सी बटा के मंजोभराओ ए,

मंजा भरा के बुड्डे नै लिटाओ ए,

बुड्डे नै लिटा के गंगा जी पहुँचाओ ए।"

परात के नीचे रखे फल और अनाज कन्याओं में बांट दिया जाता है । लड़के सायंकाल घरों में 'गोई' मांगने जाते हैं[3] --

---

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 51

2- वही, पृ० 52

3- वही, पृ० 52

"गाई दे री गोई दे, तेरे बच्चे जीवैं गोई दे,

चणे दे री चणे दे, तेरे घणे होवैं चणे दे,

गेहूं दे री गेहूं दे, तेरे मीहूं होवै गेहूं दे,

मक्का दे री मक्का दे, तेरे आवै बेहाड़िया धक्का दे,

ज़ौ दे री जौ दे, तेरे सौ हों जौं दे,

बाजरा दे री बाजरा दे, तेरे बारा हो बाजरा दे।"

कार्तिक के उपरान्त अगहन-पूस में कोई पर्व नहीं होता। माघ शुक्ल चतुर्थी को सकटचौथ का व्रत होता है। इसी महीने में संक्रान्ति का पवित्र पर्व आता है जिसे हरियाणा में अत्यन्त धूमधाम से मानाया जाता है। इस पर्व की अत्यन्त महत्ता है। संक्रान्ति के उपलक्ष्य में खुले हाथों दान दिया जाता है। पशुओं को (दान) चराया जाता है और ब्राह्मण दक्षिणा पाते हैं।

माघ शुक्ल की पंचमी को वसन्त पंचमी का त्यौहार मनाया जाता है। वसन्त पंचमी के उपरान्त त्यौहारों की बाढ़ सी आ जाती है। गीतों - त्यौहारों का यह सिलसिला फाल्गुन पूर्णिमा तक चलता है।

फाल्गुन के गीत :

फाल्गुन मस्ती और मादकता से पूर्ण महीना माना जाता है । शीत ऋतु की समाप्ति के उपरान्त वसन्त ऋतु का आगमन होता है । आम बौरा जाते हैं । कोयल कुहुक-कुहुक की गुंजार से वातावरण में संगीत भर देती है । मानव मन उल्लसित होकर गा उठता है । कदम गीतों के साथ ताल मिलाने लगते हैं । फाल्गुन के गीतों का वर्ण्य विषय विस्तृत होता है । स्त्री अपनी जीवनगत भावनाओं को इसमें अभिव्यक्त करती है ।

"वसन्त जब यौवन पर होता है, प्रकृति नवोढ़ा के सदृश स्वर्णाभ दुकुल से सुसज्जित हो जाती है । किसान के खेत सरसों के उत्फुल्ल वासन्ती पुष्पों से भरेहोते हैं, तथा गेहूं और जौ की फसलें हरी साड़ी पहने होती हैं। ऐसी मादक बेला में फाग की बहार आती है ।"[1]

फाल्गुन के गीत मस्ती से भरे हैं । एक बाला बारह गज का घाघरा और चूनर ओढ़कर कुंए पर जल भरने को गई । "छैल-गाभरू" ने किस प्रकार उसे भीगने से तो बचा लिया पर साथ ही प्रेम के रंग में सराबोर कर दिया, इस गीत में प्रस्तुत है --

"बावन गज की लहर सिमाई चावल चीण बंधाई हो,
मनै तेरी सौं हो मनै तेरी सौं,
मोटी मोटी बूंद कुए पर आई ,
गाभरू नै चादर ताणी हो मनै तेरी सौं ।
चाद्दर मैं को भीजण लागी ,
गाबरू नै छत्री ताणी हो मनै तेरी सौं,

1- डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 243, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य

छत्री मैं को भीजण लागी गाबरू नै गोद्दी ठाई,

हो मनै तेरी सौं,

गोदी मैं को भीजण लागी,

गाबरू नै पधिया बिठाई हो मनै तेरी सौं,

पधिया मैं को भीजण लागी,

गाबरू नै अरथ जड़ाया हो मनै तेरी सौं।"

कन्या को बचपन में पिता ने सुन्दर वर से ब्याहने को कहा था। कालोपरान्त जब उसका विवाह काले कलूटे, बेहूदा और गंवार पुरुष से होता है तो वास्तविकता को देखकर उसका सिर चकरा जाता है। वह अनेक बहाने उसके साथ न जाने के लिए बनाती है। किन्तु वह सहचर उसे किसी भी प्रकार ले जाना चाहता है, उसकी प्रत्येक फरमाइश पूर्ण करने को उत्सुक है[1] -

"कैसा बहुदा सांवरिया, तेरे संग ना जाऊँगी रे,

चल तो सही मेरी प्यारिये चल तो सही।

तेरे संग ना जाऊँगी मैं न्हाए बिन रहूँगी,

मेरे पीहर मैं फुहारिया, तेरे संग ना जाऊँगी।

चल तो सही मेरी प्यारिये चल तो सही,

तेरी खातिर बणवा द्यूं, फुहारिया चल तो सही।

तेरे संग जाऊँगी मैं भूखी मर जाऊँगी,

मेरे पीहर मैं क्यौरिया तेरे संग ना जाऊँगी।

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 54

चल तो सही मेरी प्यारिये चल तो सही,

तेरी खातिर बणवां द्यूं कचौरिया चल तो सही,

तेरे संग ना जाऊँगी मैं झूंपड़ी मैं रहूँगी,

मेरे पीहर मैं अटारियां, तेरे संग ना जाऊँगी।

तेरे संग जाऊँगी तो नींदी मर जाऊँगी,

मेरे पीहर मैं पिलैंगिया तेरे संग ना जाऊँगी,

तेरे संग जाऊँगी मैं कल्ली मर जाऊँगी,

मेरे पीहर मैं सहेलिया तेरे संग ना जाऊँगी।

तेरे संग जाऊँगी मैं बिन खेले रहूँगी ,

मेरे पीहर मैं शतरंजिया तेरे संग ना जाऊँगी,

चल तो सही मेरी प्यारिये चल तो सही,

तेरी खातिर बणवा द्यूं अटारिया, चल तो सही।"

युवती फिर भी 'कालिये' के साथ नहीं जाती। उसकी अनुपस्थिति में घर-भर के पुरुष कुपथगामी हो जाते हैं। युवती को घर की अस्त-व्यस्त स्थिति का जब पता चलता है तो वह तुरन्त मान छोड़कर ससुराल आ जाती है। पुन: घर की व्यवस्था को किस प्रकार स्थापित करती है - निम्न गीत से इसका भली प्रकार पता लग सकेगा[1] --

"देखो म्हारे बांगा की कलिया कैसी अजब मीठी,

सुसरा हमारा दफ्तर का मुंशी, हम नै बिछाई कुर्सी।

जेठ हमारा कबूतर उड़ावै, हमनै बजाई सीटी।

देवर हमारा पतंग उड़ावै, हमनै उसकी डोर लूटी।

कान्ता हमारा ~~रंडियां~~ रण्डियां कै जावै, हमने उसकी रण्डी पीटी।

देखो म्हारै ------------ ।"

1- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 55

फाल्गुन के गीतों में विषय की विविधता होती है । किसी गीत में प्रेमी-प्रेमिका की नोंक-झोंक का वर्णन है तो किसी में घरेलू समस्याओं का विवरण । कहीं यह मास संयोगियों के लिए मिलन का संदेश लेकर आया है तो कहीं वियोगियों के लिए बिछोह की पीड़ा । कोई तरूणी पीहर में बैठी फाल्गुन की मादकता से प्रेरित पति को संदेश भेजती है कि वे उसे लिवा ले जाएं --

"काच्ची आम्बी गदराई सावण में बुढ़िया लुगाई मस्ताई फागुण में ।
बहू- कहिये री उस जेठ मेरे नै,
बिन घाल्ली ले जा फाग्गण मैं ।
जेठ - कहिये री उस बहू म्हारी नै,
च्यार साल गाम था पीहर मैं ।
बहू - कहिये री उस सुसरे मैरे नै,
बिन घाल्ली ले ज्या फाग्गण मैं ।
सुसर - कहिये रै उस बहू मिरी नै,
च्यार साल गम था पीहर मैं ।
बहू - कहिये री उस कंथा मैर नै,
बिना घाल्ली ले ज्या फाग्गण मैं ।
पति - कहिये रै उस गोरी म्हारी नै,
च्यार साल गम था पीहर मैं ।"

विरहोत्कंठिता नायिका के पति परदेश गये हैं । फाल्गुन के सुहावने समय में जब कि न अधिक शीत है और नअधिक गर्मी,पति की अनुपस्थिति के कारण वह इस मास को धिक्कार रही है । प्रकृति में चहूं

और उल्लास, उमंग और मादकता छाई है । चन्द्र-ज्योत्सना सर्वत्र छिटकी है । नायिका की आँखों में इनसे चुभन होती है --

उसके मन की व्यथा होंठों से गीत बनकर फूट पड़ती है [1]

" ज्यब साजण गये परदेश तो मस्ताना फाग्गण क्यूं आया/जब सारा फाग्गण बीत गया तो घर मैं साजम क्यूं आया/छम छम नाच्चैं सब नर नारी/ मैं बैठ्ठी दुखां की मारी/मेरे मन मैं ज्यब अँधेर मच्चा/ है चाँद का चाँदण क्यूं आया/
इब पी आया जी खिल्याना, जब जी आया पी मिल्या ना।
साजन बिन जोबन क्यूं आया, जोबन बिन साजन क्यूं आया?
मन की तै अर्थी बंधी पड़ी, ओख्यां मैं लागी हाय झड़ी,
जब फूल मेरे मन का सूक्या, लजमारा फाग्गण क्यूं आया?"

एक अन्य गीत में नायक दूसरा विवाह कर लेता है । सौतन का आगमन पत्नी को एक आँख नहीं सुहाता । पति उस कांटेदार झाड़ी के समान उसे प्रतीत होता है जिसकी न तो छाया है और न फल है । हां कांटे अवश्य हैं जो दु:खदायी हैं । गीत पर्याप्त मार्मिक बन पड़ा है --

"के तूं कैर कटीलड़ा १ के तेरी गहरी छां१
बिरजो एक जोबन झूरै एकला ।
पति - ना मैं कैर कटीलड़ा न मेरी गहरी छाँ,
बिरजो एक जोबन झूरै एकला।
पत्नी - सखर पाणी मैं गई सुण आई नई बात,
बिरजो इक जोबन झिरै एकला।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डाॅ० शंकर लाल यादव, पृ० 247

एक लुगाई न्यूं कहै तेरे हाकिम का ब्याह,

बिरजो -------------- ।

किस गुण ब्याही दूसरी मेरे औगुण दो न बताय,

बिरजो -------------- ।

पति - औगुण थोड़े गुण घणे छोटी बनड़ी को चा,

बिरजो ------------ ।

पत्नी - किसकी लोगे कांगणी किसके लोगे बाजूचौंक,

बिरजो --------------- ।

पति -- थारी ल्यागे कांगणी थारी ल्यागे बाजूचौंक,

बिरजो ------------- ।

पत्नी - कौण करैगी आरता कौण न गावै गीत,

बिरजो -------------- ।

पति - बाहुण करैगी आरता भावज गावै गीत,

बिरजो -------------- ।

पत्नी - कौणज खरचै दामड़े कौणज चढैगे बारा-त?

बिरजो -------------- ।

पति - बाबल खरचै दामड़े भाई चढैगे बारात।

बिरजो ------------- ।

पत्नी - ऊँचे चढ़कर देख ल्यूं किसी सजी से बारात,

बिरजो ------------- ।

लंगड़े लूले डेढ़ सौ काण्या का ओढ़ न छोड़,

बिरजो -------------- ।

सौकण आई मैं सुणी हलहल चढ़ गया ताप,

बिरजो --------------- ।

सौकण तारण मैं गई मार चौपट ईंट ,

बिरजो ------------ ।

सौकण रोवैं तेरे छोहरे अणियां तणियां तोड़,

बिरजो -------------- ।

सौकण रोवै तेरी छोहरी औलां कौलां लाग,

बिरजो ---------------- ।

सौकण दूखवै मेरी आंगली सौकण की दूखै आंख ,

बिरजो --------------- ।

आच्छी हो गई आंगली सौकण की फूट गयी आंख ,

बिरजो --------------- ।

सौकण मरी मैं सुणी हलहल उतरा सै ताप ,

बिरजो ---------- ।

घूंघट रोवै मन हँसै हिया हिलोड़े लेय ,

बिरजो --------------- ।"

संयोगी युग्मों के लिए यह मास श्रावण की तरह वरदान सदृश आता है । प्रकृति सोलहों श्रृंगार करके आई है । चराचरजगत् आह्लादित हो उठा है । हरियाणा में प्रचलित लोकोक्ति के अनुसार इस मास में युवा तो क्या वृद्धों में भी मस्ती छा जाती है --

"काच्ची आम्बली गदराई साम्मण मैं

बूढ़ी री लुगाई मस्ताई फागण मैं "

सौभाग्य वती स्त्रियों के लिए यह मास आनन्दोपभोग का संदेश लेकर आता है[1] --

"फागण के दिन च्यार री सजनी फागण के --- (टेक)

मघ जोबन आया फागण मैं,

फागण भी आया जोबण मैं,

झाल उठै सैं मेरे मन मैं,

जिनका बार न पार री सजनी, फागण के दिन च्यार (टेक)

प्यार का चन्दन महकण लाग्या,

गात का जोबन लचकण लाग्या,

मस्ताना मन बहकण लाग्या,

प्यार करण नै त्यार री सजनी, फागन के दिन च्यार।

गाओ गीत मस्ती मैं भर कै,

जी जाओ सारी मर मर कै,

नाचण लागो छम छम कर कै,

उट्ठण द्यो झणकार री सजनी, फागण के दिन च्यार।

चंदा प्होंच्चा आन सिखर मैं,

हिरणी जा पंहोंची अम्बर मैं,

सूनी सेज पड़ी सै घर मैं,

साजण करैं तकरार री सजनी, फाग्गण के दिन च्यार।"

1- हरियाणाप्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 246

नायिका ने अपने सांवरिया को मेले में मिलने का संकेत किया है । सास उसेघर के कार्य करने को कहती है किन्तु वह इन्कार कर देती है । मस्ताना मास फाल्गुन आ चुका है । पांव नृत्य के लिए थिरकते रहते हैं । मेले में जाने का उत्साह ऐसे वातावरण में द्विगुणित हो गया है । इस आशय का गीत दृष्टव्य है --

"अरी, ए री, मैं तो ओढ़ चुनरिया, जांगी मेल्ले में,
अजी, ए जी, बांके सांवरिया मिलियो अकेल्ले मैं,
सास मेरी त्यौहार के दिन गीला गोबर पथवावै,
बरतन भाण्डे चौका चूल्हा, हरि जी गोबर पथवावै ।
अजी, ए जी, मेरा जी घबरावै, इस घर के झमेले में । मैं ----
च्यार पीसे की मनै बिंदिया लगाई, दो पीसे का सुरमा,
~~च्यार पीसे~~ की ~~मनै~~ खाई, मुफ्त में खाया चुरमा ।
हलवा पूरी मुफ्त मैं
अजी, ए जी मनै पान चबाया खोट्टे अधेल्ले का । मैं --- ।
रथ मैं ना बैठूं राजा, मझोल्ली ना बैठूं
अजी, ए जी, मैं तो सैर करूंगी बैठ के ठेल्ले मैं । मैं ----- ।"

फाग गीतों में घरेलू प्रसंगों की तो बहार है । प्रातः सास बहू को पीसने के लिए उठाती है, किन्तु पति उसे इशारे से मनाकर देता है कि इससे वह दुबली हो जाएगी । इसी प्रकार घर के अन्य कार्यों में वह हस्तक्षेप करता है । युवती को सास की बात जहर और पति की बात मिश्री सी प्रतीत होती है । रात्रि में सास बहू को सोने के लिए पति के पास भेजती है, लेकिन पति कुटुम्ब बढ़ जाने के भय से उसे पास नहीं आने देता । अब बहू को सास की बात मिश्री और पति की कड़वे ज़हर सी लगती है । प्रस्तुत है गीत --

"सास्सड़ कहैं उठ पीस ले ना बहुअड़ मेरी,

राजा कहै माड्डी हो ज्यागी सुण मान कहे की।

सास्सड़ के बोल मनैं कड़वे री जहर लागैं,

सैंया के बोल मन्नैं मीठे री मिसरी से लागैं।

सास्सड़ कहै उठ पाणी ले आ बहुअड़ मेरी,

राजा कहै हार ज्यागी सुण मान कहे की।

सास्सड़ कहै उठ रोट्टी पो ले न बहुअड़ मेरी,

राजा कहै छाल्ले पड़ ज्यागै सुण मान कहे की।

सास्सड़ कहै कास्सण मांज ले री, बहुअड़ मेरी,

राजा कहै काली हो ज्यागी, सुण मान कहे की।

सास्सड़ के बोल मनैं कड़वे री जहर लागै

राजा के बोल मनै मीठे री मिसरी से लागै।

सास्सड़ कहै उठ सो जा ना बहुअड़ मेरी,

राजा कहै कुणबा बध ज्यागा सुण मान कहे की।

सास्सड़ के बोल मन्नै मीठे री मिसरी से लागै,

राजा के बोल मन्नै कड़वे री जहर लागै।"

लोक में प्रचलित है कि दो बरतन तो आवाज करेंगे ही और इसी प्रकार परिवार में जहां दो-चार लोग होंगें वहां छोटी मोटी नोंक झोंक चलती ही रहती है। दो बैंगनों की सब्जी पर घर रूपी कुरूक्षेत्र में किस प्रकार का महाभारत लड़ा गया, इस गीत के बोलों से प्रकट है[1]--

---

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 58

"दो एक बैंगणा के उधर घर मैं होई ए लड़ाई,

नणदी नै जा मायड़ सिखाई,

थारे घर मैं बहू चटोर भला जी ।

सास्सड़ नै सुसरा सिखाया, थारे घर मैं बहू चटोर भला जी,

सुसरै नै जेट्ठा सिखाया, थारी बहू चटोर भला जी,

जेट्टै नै देवर सिखाया, थारी बहू चटोर भला जी,

देवर नै कन्था सिखाया, थारी गोरी चटोर भला जी,

कन्था आया हल नै छोड़ कै, आ कै सूड़ सड़ाई भला जी,

मार मूर कै पीसण लाग्या, चौड़ी हो गी टांग भला जी,

पीस पास कै छाणन लाग्या, धोली हो गी मूंछ भला जी,

छाण छूण कै पोवण लाग्या, डाढ़ढी लाग्गी आग भला जी,

पोय पाय कै खावणै लाग्या, सारे झड़गे दांत भला जी,

खाय खूय कै पाणी नै चाल्या, बो गध कुएं कै मांय भला जी,

काढ कूढ कै घर नै ल्याये, तो बिल्ली आकै कूदी भला जी,

वा जाण्या कै गोरी आई मार्या हाथ तो भाज्जी बिलाई,

उप्पर चढ़ कै हेल्ला मार्या, कोय मत मान्नो सीख भला जी ।"

जहां मन-मुटाव होता है वहां हास-परिहास भी परिवारजनों में होता है । पति-पत्नी को चुपके से कुछ कहकर कोठे पर चढ़ गया है । परिवार की अन्य स्त्रियों को 'क्या कह गया है' यह जानने की तीव्र लालसा है । पत्नी सबके कान में अलग-अलग उत्तर देकर हंसती है । गीत के बोल इस प्रकार हैं --

"झटक कोट्ठे जा चढ़्या म्हारा री सांवरिया ।

सास मेरी बूझै बहू री के कह गया तेरा सांवरिया,

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 59

छाणन की हम तैं कह गया, पीसण की नाट ग्या म्हारा री सांवरिया,

जिठाणी मेरी बूझै बहुअड़ राणी,

तैरे तैं के कह ग्या मेरा देवरिया,

धोवण की हम तैं कह ग्या,

मांजण की हम ते ताट ग्या म्हारा री सांवरिया,

घोराणी मेरी बूझै जिठाणी जी,

चुपकै सी के कह ग्या थारा सांवरिया,

खाण की हम ते कह ग्या,

पोवण की नाट ग्या म्हारा री सांवरिया,

नणद मेरी बूझै भाभी री,

धीरे सी के कह ग्या थारा री सांवरिया,

भेज्जण की हम तैं कह गया, बुलावण की नाहीं कर ग्या,

म्हारा री सांवरिया ।"

गीतों के साथ साथ फाल्गुन मास में कदम नृत्य की ताल पर थिरकने लगते हैं । उल्लासजनक गीत प्रस्तुत है --[1]

"ऊँचा रेड़ा काकर हेड़ा बिच बिच बोंदी केसर,

ब्याहे-ब्याहे राज करैंगे रांडां का पणमेसर ।

छोटे- छोरे के ना ज्यांगी, बालम घाणे के नां ज्यांगी,

देस बिराणे के ना ज्यांगी,

कासण बांटे बासण बांटे साझे रहा बरौल्ला,

यों भी क्यों न बांटी रांड के घर मैं देवर मौला

छोटे छोरे के न ------------ ।

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 60

कासण बाँटे बासण बाँटे, साझै रह गई थाली,

यो भी क्यों न बाँटा राँड के घर मैं ननदल वाली,

छोटे छोरे----------------।

सौड़ बाँटी, सौड़िया बाँटी, साझै रह गई रजाई,

यो भी क्यों न बाँटी राँड के रातों मरी जुड़ाई,

छोटे छोरे ------------ ।

घर बाँटा घरवासा बाँटा साझै रह गई मोरी,

यों भी क्यों न बाँटी राँड के रातों हो गई चोरी,

छोटे छोरे के ना जांगी, बालम याणे के ना जांगी,

देस बिराणे के ना जांगी ।"

फाल्गुन की पूर्णिमा को होलिकोत्सव का अनूठा त्यौहार मनाया जाता है । 'फाग' अथवा 'होली' गाई और बजाई जाती है । 'धमाल' राग गाया जाता हैं । होली की तैयारियां बसन्त पंचमी से ही आरम्भ हो जाती हैं । बसन्त पंचमी को 'डांडा' गाड़ दिया जाता है । गांव वाले लकड़िया काटकर वहां एकत्र करने लग जाते हैं । 'होली' के दिन तक वहां लकड़ियों काऊँचा ढेर हो जाता है । कन्याएँ इस अवसर पर गोबर से 'ढाल-बुड़कुले' बनाती हैं, जिन्हें रस्सी में पिरोकर होली के ईंधन में डाला जाता है । महिलाएं फागुन पूर्णिमा को उपवास रखती हैं । अपरान्ह के समय होली पूजी जाती है । महिलायें कच्चा सूत लेकर होलिका के चारों तरफ लपेटती हैं । ब्राह्मणी को सीदा दिया जाताहै । होली की परिक्रमा की जाती है ।

हरियाणा में भी सर्वत्र प्रचलित प्रह्लाद की कथा के आधार पर होली मनाई जाती है । भजन प्रचलित है कि किस प्रकार होलिका प्रह्लाद को

जलाकर मार डालना चाहती है लेकिन स्वयं भस्म हो जाती है और प्रह्लाद बच जाता है । भजन के बोल इस प्रकार हैं[1] --

"गोदी के अंदर भगत राम-राम रह्या टेर । टेक ।
जब सैं चरचा सुणी थी हर की, राम नाथ की लगी लगन,
समझाया था एक नै मानी दरसन की या लगी लगन,
हरिणाकस नै नांय सुहाया क्रोध की अग्नि लगी जलन,
निरभय होके भजा भगत नै भय की भूतणी लगी भजन,
होलकां ले गोदी मैं बैठी फूंक जलादयूं ढेर,
गोपी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर ।
होलकां काएक सील बस्तर था लोम रिसी से लिया था,
जिसमैं अगनी परवेस हुवै न यो ही कथा मैं गाया था,
पहिले भी या सही हुई थी यो : ए ओढ सुख छाया था,
इबके बैर कर्‌या हर सेत्ती नहीं हुआ मनचाहा था ।
सील बस्तर के अन्दर बड़ कै लागी थी वे करण अंधेर,
गोदी के अन्दर भगत रह्या राम राम टेर ।
चौगरदे के चिता चिणा के जिसके बीच मैं दई अगन,
जद वा अगन जारी हुई थी चंदन लकड़ी लगी जलन,
चौगरदे के असर फिरै थे जिनके हाथ मैं खड्ग-नगन,
जगहां नहीं थी कहीं निकलण नै असर रहे थे घेर,
गोदी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 248

मुलतान सेहर के सब सजना नै अगनी मैं माला गेर दई ।

दीनानाथ ब्या लड़के नै या सन्तों नै टेर दई,

तेरा नाम छिपजा दुनियां मैं हमनै भतेरी फेर लई,

जै लड़का जल जाय अगन मैं अन असरां की जीत हुई,

जै भगत जल ज्या अगनी मैं के करल्येगा फेर,

गोपी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर।

ऐसी पवन चली जोर की चिता तो पाड़ बगाय दई,

सील बस्तर को उथल पुथल के लड़के पै उढाय दई,

हुलका तो वा जलने लगग गी अपणा नाथ बचाय लिया,

दगा किसी का सगा नहीं सै समझैंगा को सिंहनी का सेर,

गोदी के अन्दर भगत रह्या राम राम टेर ।"

निश्चित मुहूर्त पर होली प्रज्वलित की जाती है । जौ की बालें भूनी जाती हैं । लोक विश्वास है कि जौ की बालें अग्नि में डालने से अग्नि का भोग लगता है और प्रह्लाद की रक्षा होती है । गीत प्रचलित हैं---

"कै रै करण नै जौ बोए थे कै रै करण नै बांस,

हंसा बोल्यिे मेरे राम।

धरम करण नै जौ बोए थे लाठी टेकरण नै बांस,

हंसा ------------ ।

कै रै करण नै धीय जन्मी कै रै करण नै पूत,

हंसा ------------- ।

धीय जमाई ले गये, पूत पड़ोसी होय,

हंसा ----------- ।

"जौ बोना लोकवार्ता की अपनी वस्तु है और विपत्ति के विरुद्ध रामबाण है । कई लोक कहानियों में आता है कि माता ने जौ बोकर पुत्रों की आपत्तियों में रक्षा की ।"[1]

एक अन्य गीत प्रचलित है जिसमें प्रह्लाद की माँ अपनी नणद होलिका से अनुमय विनय करती है कि मैंने तुझे पुत्र जन्म पर तील पहनाई थी । अत: मेरे पुत्र को इस प्रकार अग्नि को अर्पित न कर --

"मान ज्या री नणदी,

बेट्टा हुआ जब तील दई री मान ज्या री नणदी,

जब री प्रह्लाद गोपी मैं बढाया,

गीड़ें खेलता लिकड़ कै आया, मान --- ।"

हरियाणा में होली के अवसर पर धमाल राग गाया जाता है । एक 'धमाल' में ग्रामीण बाला अपने ओढ़ने को अनेकविध कसीदों से सजाती है । कसीदा कारी में पक्षी कढ़े हैं और उनमें शीशों की सजावट है[2] --

"रै चुंदड़ी तेरा जुल्म कसीदा ।

कूण से महीने बोल्लै मोर पपैया,

कब सी चमकै सीसा ? रै चुंदड़ी ------- ।

समाण (सामण) महीने मोर पपीहा

फागण चमकै सीसा, रै चुंदड़ी ------- ।

कुण सी नणद नै काढ्या सै कसीदा,

कुण सी नै गोद्यासीसा, रै चुंदड़ी ------- ।

छोटड़ी नणद नै काढ्या सै कसीदा,

बड़ली नै गोद्या सीसा, रै चुंदड़ी ------ ।"

1- डॉ० यादव, पृ० 249

2- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 244

एक अन्य `धमाल` में पौराणिक प्रसंग लिया गया है । वैसे इनके विषय इतिहास, पुराण, श्रृंगार को अपने में समेटते चलते हैं । लक्ष्मण के बाण लगने का प्रसंग द्रष्टव्य है[1] --

"लिछमण के रै बाण लग्या रै सक्ती लिछमण कै,
ऐला रै होय कोई बीरा नै जिवाले,
आधा राज स्वाई धरती । लिछमण कै ------- ।
कै तो जिवाले सीता रै सतवन्ती,
कै तो जिवाले हनूमान जती । लिछमण कै -------
क्यां ते जिबाले सीता रै सतवन्ती,
क्यां ते जिवाले हनूमान जती । लिछमण कै ------- ।
सत तै जिवाले सीता रै सतवन्ती,
बूटी तै जिवाले हनूमान जती । लिछमण कै --------।"

एक लोकाचार मनाया जाता है । अधजली होली में से कोई युवक उस `डांड्डे`को लेकर भाग जाता है जो बसन्त पंचमी के दिन रोपा गया था । उसे निकटस्थ जलाशय में बुझा दिया जाता है । विश्वास है कि *होलिका* की तप्त आत्मा की शान्ति के लिए यह किया जाता है ।

रात्रि नववर्ष की आशाओं औरउल्लास के साथ ढोल-तास्सों की गूंज औरफाग के गीतों की मस्ती में व्यतीत हो जाती है । नववर्ष का शुभारम्भ फाग और धूलैंहड़ी की गहमा-गहमी से होता है । हरियाणा

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 243

में इस दिन को 'फाग' कहते हैं । नर-नारी परस्पर अबीर गुलाल एक दूसरे को मलते हैं । होली के अवसर पर मन की मलिनता धुल जाती है और परस्पर प्रीतिभाव का सृजन होता है । क्या बच्चे और क्या बूढ़े, सभी इस अवसर पर रंग-बिरंगे रंगों से रंगकर नानाविध नाच उठते हैं --

"उड़े हो गुलाल रोली हो रसिया केसर कस्तूरी की चमचाई,
उड़े हो गुलाल------------।
भर पिचकारी मेरै मात्थै मैं मारी, बिन्दी की आब उतारी,
हो रसिया, उड़े हो गुलाल ----------।
भर पिचकारी मेरै मुखडै पै भारी बेसर की आब उतारी हो रसिया,
उड़े हो गुलाल ------------।
भर पिचकारी मेरी छाती पै मारी माला की आब उतारी हो,
रसिया उड़े हो गुलाल --------------।
भर पिचकारी मेरै हात्थां पै मारी गजरै की आब उतारी हो रसिया,
उड़े हो गुलाल -------------।
भर पिचकारी मेरै पायां पै मारी बिछ्ये की आब उतारी हो रसिया,
उड़े हो गुलाल ----------।"

बीरबानियां कपड़े को बल देकर "कोरड़े" बनाती हैं और 'गोरे' टोकणों औरकढ़ाइयों में रंग घोले तैयार रहते हैं । कोई पिचकारी संभाले रहते हैं और कोई रंगभरे जल की बाल्टी । देवर भाभी को रंग से सराबोर करना चाहता है तो भाभी बचकर 'कोलड़े' का भरपूर वार उस पर करने को तत्पर रहती है । द्वन्द्वयुद्ध जोरों पर आरम्भ हो जाता है । युद्ध कौशल देखने के लिए अनेकों दर्शक जुट जाते हैं । दृश्य दर्शनीय होता है।

मानव मानों प्रकृति की रंगीनी से होड़ लेने लगता है । अबीर-गुलाल से वातावरण सरस हो उठता है ।

पुरातन काल में भी होलिकोत्सव अत्यन्त उल्लासपूर्वक मनाया जाता था । कवियों ने अपनी रचनाओं में इसका अनूठा वर्णन किया है --

"फागु की भीर, अभीरिन में गहि,
गोबिन्द लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पद्माकर,
ऊपर नांई अबीर की झोरी ।।
छिन पितम्बर कम्मर तै,
सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसकाय,
लला फिर आइयो खेलन होरी ।।"

होली में जनमानस अपनी समस्त चिन्ताओं, क्लेशों को भुलाकर मदमस्त हो जाता है ।

0----0

(5)

-: निष्कर्ष :-

विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले गीत ऋतुगीत कहलाते हैं । इनके अनेक प्रकार होते हैं । जिनमें ऋतु-विशेष में आने वाले त्यौहार, उत्सव, पर्व आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं । इन ऋतुगीतों में मन की अनेकानेक रागानुगम भावनाएं मुखरित हुई हैं और जीवन की सामान्य क्रियाओं का भी निरूपण हुआ है ।

बांगरू लोकगीतों में वर्षा और वसन्त ऋतु का जितना वर्णन प्राप्त होता है, उतना ग्रीष्म व शिशिर का नहीं । हेमन्त व शरद् ऋतुओं पर लोकगीत नाममात्र को प्राप्त होते हैं । वैसे तो भारत में प्रत्येक ऋतु व मास में त्यौहारों का आना जाना लगा रहता है, लेकिन श्रावण व फागुन मास में इनकी अधिकता होती है ।

श्रावण के गीतों में झूलागीत, वर्षा गीत, ससुराल में कन्या को होने वाले कष्टों के मार्मिक गीत, मेंहदी के गीत, सावन तीज, भाई-बहन के संबंन्धों के गीत, संयोग व वियोग श्रृंगार के गीत, चन्दरावल और निहालदे के वीरतापरक गीत और बारहमासा मुख्य हैं । इनमें कृषक जीवन की झलक मिलती हैं और दैनिक जीवन के कार्यकलापों को अभिव्यक्ति मिलती है ।

श्रावणोपरान्त भादों मास आता है । भादों बदी अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा जाता है । कृष्ण जन्म व उनकी लीलाओं के गीत गाये जाते हैं । अगले दिन गूगा नवमी का त्यौहार अत्यन्त धूमधाम से मानाया जाता है । गूगा सर्पों का देवता है । इसे हिन्दूओं के साथ मुसलमान भी मानते

है। अश्विन शुक्ला प्रतिपदा को नवरात्रों का आरम्भ होता है। दुर्गा माता की उपासना होती है और सांझी माता के गीत गाये जाते हैं।

कार्तिक मास धार्मिक मास माना गया है। लौकिक आचार-विचारों की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण मास है। प्रातः स्नान का इस मास में विशेष महत्व हैं। राधा-कृष्ण, शिव पार्वती, राम-सीता व हनूमान के भक्ति गीत गाये जाते हैं। इस मास में तुलसी पूजन का विशेष महत्व है। इस मास के गीतों में हरजस, प्रभाती मुख्य होते हैं। कार्तिक पूर्णिमा को गंगा-स्नान का विशेष महत्व है। हिन्दुओं का अति प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण त्यौहार दीपावली इस महीने में मनाया जाता है और देवउठनी ग्यारस के दिन विशेष पूजा की जाती है।

कार्तिक के उपरान्त अगहन और पूस मास में कोई त्यौहार नहीं होते। माघ शुक्ल चतुर्थी को सकट चौथ का व्रत होता है और संक्रान्ति का त्यौहार, जिसका आविर्भाव इसी मास में होता है, अत्यन्त धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन खुले हाथों दान देने का महात्म्य है। माघ शुक्ल पंचमी को वसन्त पंचमी का त्यौहार मनाया जाता है। इसके बाद त्यौहारों की बाढ़ सी आ जाती है, जिसका सिलसिला फाल्गुन पूर्णिमा तक चलता है।

फाल्गुन मादकता और मस्ती से पूर्ण महीना होता है। शीत ऋतु के अवसान के बाद मदमाती वसन्त ऋतु का आगमन होता है। फाल्गुनगीतों का वर्ण्य-विषय विस्तृत होता है। स्त्री अपनी जीवनगत भावनाओं को इन गीतों में अभिव्यक्त करती है। इन गीतों के मुख्य विषय संयोग व वियोग श्रृंगार, हर्षोल्लास, सौतन, सास-बहू के सम्बन्ध, हास-परिहास, होलिका-दहन की कथा, फाग और कृषि होते हैं। होली के अवसर पर जनमानस अपनी समस्त चिन्ताओं, कलेशों को भुलाकर मदमस्त हो जाता है।

. . . .

Chapter 6

षष्ठ-अध्याय

(विविध गीत)

पिछले अध्यायों में उन लोकगीतों की विवेचना प्रस्तुत की गयी है जिनके स्वर विभिन्न संस्कारों, ऋतु-पर्वों, देवी-देवताओं की उपासना आदि के अवसर पर गुंजित होते हैं। इनमें सभी मुख्य गीतों का समावेश किया गया है। अत: इस सर्वांगीण एवं विशद् विवेचना के उपरान्त वैसे तो कुछ अवशिष्ट नहीं रहता, लेकिन जिस प्रकार वैविध्यतापूर्ण जीवन के अनन्त पहलू हैं, उसी प्रकार इन पहलुओं से जुड़े गीत भी गणनातीत हैं। अत: उनका किसी एक स्थान पर अध्ययन उपस्थित करना कठिन और असम्भव है। यहां उन गीतों का आकलन प्रस्तुत है, जो विवेचित प्रकारों से भिन्न पड़ गये हैं। इन विविध गीतों के अन्तर्गत निम्नलिखित गीत आते हैं -- कृषि गीत, राजनैतिक प्रभाव के गीत, लोकगीतों में सैनिक की पत्नी, पनघट, फैशन, हुचकी, चरखा और अन्य गीत।

कृषि गीत -- हरियाणा अपनी प्राकृतिक रमणीयता और समृद्ध हरी-भरी वनस्पति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। यही कारण है कि इस प्रदेश को स्वर्ग सन्निभ कहा गया है। इसका एक बड़ा भूभाग समतल और उपजाऊ है। द्वितीय अध्याय के दूसरे खण्ड में विवेचित किया जा चुका है कि हरे-भरे वन प्रदेश के कारण ही इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ा। प्राचीन काल से ही यह प्रदेश हरे-भरे वनों के कारण प्रसिद्ध था। यहां सरस्वती और दृषद्वती नदियां बहती थी, जिनसे पर्याप्त सिंचाई होती थी। वामन पुराण के अनुसार महाराज कुरु ने प्रथम बार सरस्वती के इस प्रदेश पर हल चलाया था और आर्य लोगों ने सर्वप्रथम इस धरती

पर कृषि-कार्य आरम्भ किया । जलवायु की अनुकूलता और उर्वरा भूमि के कारण इस प्रदेश में हर प्रकार की फसल पैदा की जा सकती है । इस प्रदेश में नीम, पीपल, शीशम, बरगद, जामुन, कीकर, शहतूत और जाल के वृक्ष अधिकाधिक होते हैं । गेहूँ की उपज की दृष्टि से हरियाणा दिनोंदिन महत्त्व-पूर्ण स्थान ग्रहण करता जा रहा है । ज्यों-ज्यों सिंचाई के साधन बढ़ रहे हैं, यहां की उपजाऊ धरती सोना उगलने लगी है । यहां की मुख्य फसलें, गेहूं, गन्ना, कपास, आदि हैं । बांगर क्षेत्र में जहां सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं, वहां की मुख्य फसलें गन्ना व गेहूं हैं । बारानी इलाकों में चना रबी की प्रधान फसल है । खरीफ में बांगर क्षेत्र में बाजरा व ज्वार की पैदा होती है । मूंग, उड़द, तिल, सरसों व कपास की पैदावार भी यहां का किसान खूब करता है । अच्छी व उत्तम फसल के लिए यहां का कृषक वर्षभर खेती के कठिन कार्य में संलग्न रहता है । कृषक पत्नी उसके कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग देती है । लोकगीतों में मानव मन के भावों की सहज अभिव्यक्ति होती है । स्वाभाविक है कि कृषि का उल्लेख लोकगीतों में अवश्य होगा । कृषि गीतों के विषय बुआई, वर्षा, अनाज, बैल, किसान की अवस्था आदि होते हैं । कृषि कार्य में किसान अथक परिश्रम करता है । इसके साथ यदि वह थोड़ा गुनगुनाता रहे तो इससे उसका मनोरंजन भी होता है और उसे थकावट से राहत मिलती है । हरियाणा का किसान जिन परिस्थितियों में रहता है, वही उसके गीतों में अभिव्यक्त हुई है । किसान के लिए बुआई का अवसर आशा व उत्साह का अवसर है । उसका मन भविष्य के प्रति आशंकित रहता है, तभी तो वह बुवाई के समय विभिन्न शकुन-विचार करता है, देवताओं की मनौतियां मनाता है । इसी अवसर का एक गीत प्रस्तुत है जिसमें किसान भगवान् से सम्पूर्ण

खुशहाली की कामना करता है[1] --

"धरती माता नै हर्यो कर्यो
गऊ के जाये नै हर्यो कर्यो
जीव जंत कै भाग नै हर्यो कर्यो
ढाणा खेड़े नै हरयो कर्यो
गंगा माई नै हर्यो कर्यो
जमणा राणी नै हर्यो कर्यो
धन्ना भगत को हरतै हेत
बिना बीज उपजाओ खेत
बीज बच्या सो सन्ता नै खाया
घर भर आंगण भर्या ।"

कृषि कार्य के लिए केवल किसान का परिश्रम ही पर्याप्त नहीं है अपितु कुछ साधन भी अपेक्षित होते हैं । संतोष उसी परिस्थिति में मिलेगा जब आवश्यकताएँ पूर्ण होंगी । हरियाणवी किसान की आवश्यकताएं सीमित और स्थूल हैं । जैसे कि घर में दस स्वस्थ बैल हों, फसल का लगान आसानी से चुकाने लायक पैसे हों, भैंस दूध देती हो आदि । इन्हीं भावों को निम्नलिखित गीत में स्पष्ट किया गया है[2] --

"दस चंगे बैल देख, वा दस मन बेरी
हक हिसाबी न्या, वा साक सोर जोरी
भूरी भैंस का दूधा, वा राबड़ घोलणा
इतणा दे करतार, तो बोहिर ना बोलणा ।"

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 25।
2- वही, पृ० 25।

कृषक का दैनिक जीवन बड़ा नियमित होता है । तड़के ही वह हल बैल लेकर खेतों में निकल पड़ता है । अपरान्ह में गृहिणी गृहकार्य से निपटकर पति का भोजन लेकर खेत में जाती है । वहां वह कृषि कार्य में पति का हाथ बंटाती है । प्रस्तुत गीत में कृषक पत्नी का कृषक के साथ वार्तालाप है, जिसमें उनकी सुख-समृद्धि का पूरा चित्र उभर आया है । किसान के चार हल हैं, जिनके पीछे आठ बैल हैं । बाजरे की रोटी और बथुवे के साग का पौष्टिक बलवर्धक भोजन है । पकी फसल को देखकर दम्पति अत्यन्त प्रसन्न हैं । समृद्धि व खुशहाली में नायिका अपने आभूषणों का मोह नहीं त्याग पाती[1] --

"बाजरे की रोट्टी पोई रे हालिड़ा, बथुवे का रांधा रे साग।
आठ बुलधां का रे हालिड़ा नीरणा, च्यार हालिड़ा की छाक ।
बरसण लागी रे हालिड़ा बाजरी ।

सास नणद का रे हालिड़ा ओलणा, इब कुण उठावै छाक ।
कसके तैं रै बांधो गोरीधण लाउणा, झट दे उठाल्यो छाक ।
डोलै तो डोलै रे हालिड़ा मैं फिरी, कितै ना पाया थारा खेत ।
ऊंचै चढ़ कै गोरीधण देख ली, म्हारै धोलै बलद कै हाल ।
पाछा तै फिरकै हालिड़ा देख ले, कोय बोझ मरै छकियार ।
किसाक जाम्या रै हालिड़ा बाजरा, किसीक जाम्मी सै जुआर ।
लम्बे तै सिरटे गोरीधण बाजरा, मुड़वां सिरटे जुवार ।
के मण बीघे निपजा गोरीधण बाजरा, कै मण बीघे जुआर
नौ मण बीघे निपजा गोरीधण बाजरा, दसमण बीघे जुवार
अपणे घड़ाले रे हालिड़ा गोखरू, मेरी भंवर की नाथ ।"

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 253

उक्त गीत को 'हालिड़ा' की संज्ञा प्रदान की गयी है । इसमें बाजरा व ज्वार की उत्तम फसल के लक्षण बताये गये हैं । उत्तम बाजरे का भुट्टा लम्बा होता है और ज्वार का मुड़ा हुआ । वस्तुतः गीत में किसान के जीवन का संक्षिप्त वर्णन है ।

कृषि और वर्षा का अटूट सम्बन्ध है । कृषि गीत वर्षा के उल्लेख के बिना अधूरे हैं । जलभरे बादल बिन बरसे आगे जाने लगते हैं तो किसान वर्षा का आव्हान निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा करता है[1] --

"ऊपरां बादलिड़ा ऊपरां क्यूं जा
बरसै तै क्यूं ना म्हारे देस"

बादल की प्रकृति भोले-भाले ग्रामीण की समझ से बाहर है । उसकी सामर्थ्य अद्भुत है[2] --

"छन मैं पालिड़ा धूलमधूल
छन मैं तै भरदे जोहड़ डाबड़ा ।"

विगत युग में हरियाणा में अनेक बार अतिवृष्टि और अनावृष्टि हुई है । परम्परा से चले आने वाले गीतों में उनका यथातथ्य निरूपण मिलता है । इनकी कथा मात्र सुनने वाले को रोमांचित कर देती है । अतिवृष्टि का वर्णन द्रष्टव्य है जिसमें सर्वत्र पानी भरने से घर-बार उजड़ गये, फसलें बरबाद हो गईं और शहरों में हलवाइयों का काम-काज ठप्प हो गया --

"सन् 19 के साल मैं ये लोग घणे यू डरगे
हेल्ली नोहरे टपकण लाग्गे, घर पानी तै भरगे

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 254
2- वही, पृ० 254

बंद बांदण नै लोग नाट गे आंगली र गूंठे गल गे
ढोलक आला लिया साथ मैं, गली गली मैं फिर गे
ईख बांदण नै लोग नाट गे, गूंठे र आंगली गल गे
पाणी पर के सांप गोहूरे पाइड़ी बिच्छू तर गे
सैहूरां के मां हलवाइयां गी मूंछी पड़ी कढ़ाई ।"

कृषि गीतों के अन्तर्गत उन उपादानों की चर्चा अवश्य होगी जिनसे कृषि कार्य सम्पन्न किया जाता है। इनमें मुख्य पशु हैं । बैल, ऊँट, गाय, भैंस आदि पर कृषक पूर्णत: निर्भर करता है । उसका सबसे बड़ा साथी उसका बैल है । बुढ़ापे में बैल कमजोर होकर कितना तिरस्कृत होता है, यह निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है[1] +--

"अरे न्यूं रोवै बुड्ढा बैल, मन्नै मत बेच्चै रै पापी ।
तेरै कुए कोल्हू मैं चाल्या, नाज कमा कै तेरै धरां घाल्या
इब तनै कर ली सै बजर की छात्ती
तिरा बंजर खेत मनै तोड़या, गाड्डी तै मुंह ना मोड़या ।
इब मेरी बेच्चै सै माट्टी ।"

गीत करूण है । वृद्धावस्था अपने आप में एक दुखद स्थिति है । यही दयनीय अवस्था गाय की होती है, जबकि वह दूध देने में असमर्थ हो जाती है[2] --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 258

2- वही

"न्यूं कह रही धौली गाय, मेरी कोय सुणता नाईं,
मेरे कितगे सिरी भगवान्, मैं दुःख पाय रही ।
मेरा दूध पिवै संसार, घी तै खावैं खिचड़ी ।
मेरे पूत कमावै नाज, मैंधि भा/की गई
ज्यिब बी मेरै गल पै छुरी ।"

लोकगीतकार ने ऊँट के बेडौल शरीर को लक्ष्य बनाकर एक गीत की रचना कर दी,जिसमें ऊँट अपनी कहानी अपनी जबानी सुनाता है[1] --

"ताकतवार बलवान बना, क्यूं भुंडी सकल बणाई रे
के बुज्जेगा मन मेरे की घणी मुसीबत आई रे ।
दई खुदा ने टांग बड़ी जो दो-दो गज तक जाती रे ।
ऊपर बोज्झा लदे घणा जब तीन तीन बल खाती रे ।
पेट उभरमा छाती चढ़मा इडर[2] से सज जाती है ।
लगें रगड़के इडर के ना मिलता कोई हिमाती रे ।
धन धन तेरे नाती तेरी माता बाबल भाई रे ।
के बुज्झेगा मन मेरे की घणी मुसीबत आई रे ।"

कृषि गीतों के अन्तर्गत उपज का उल्लेख स्वाभाविक है । बाजरा हरियाणा के किसानों का मुख्य खाद्य है । इसी को विषय बनाकर लोकगीतों के रचयिता ने बाजरे के समान आकार में नन्हें-नन्हें चुलबुले गीतों की रचना की है । एक गीत में 'बाजरे' ने अपनी बहादुरी का वर्णन किया है कि मैं दो मुसलों से अकेला लड़ता हूँ अपने गुण भी दर्शाये हैं -- वहकृषक को सम्बोधित

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 258
2- ऊँट की वह टुड जो अगली टांगों के मध्य उभरी होती है ।

करता है कि यदि तेरी नाजो नित्यप्रति मेरा सेवन करे तो वह फूलकर कोठी के समान मोटी एवं ताक़तवर हो जायेगी[1] -

"बाजरा कहै मैं बड़ा अलबेल्ला,
दो मुस्सल तै लडूं अकेला,
जै तिरी नाजो खिचड़ी खाय,
फूलफाल कोठी हो जाय ।"

गृहिणी खिचड़ी बनाने के लिए बाजरे को कूटती है । शैतान बाजरा इतना नटखट है कि उसने पहले तो उछल-उछल कर घर भर दिया और जब वह उसे पकाने बैठी तो उसने खदक-खदक कर हँडिया भर दी । लोक कवि की लोक-सुलभ प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत है[2] --

"आध पाव बाजरा कूट्टण बैट्ठी,
उछल-उछल घर भरियो, शैतान बाजरा ।
आध पाव बाजरा पकावण बैट्ठी,
खदक-खदक हँडिया भरियो, शैतान बाजरा ।"

पौष्टिकता के कारण राजस्थानी लोगों का बाजरा प्रिय अन्न है । यह बल वर्धक माना जाता है । राजस्थानी बालाने बाजरे की खिचड़ी की सम्पूर्ण कथा गीत में पिरोई है[3] --

---

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 254
2- वही, पृ० 255
3- वही, पृ० 255

"म्हारो मीठो लागै खीचड़ो ।

म्हारो चोखो लागै खीचड़ो ।

छलक्यो छाढ्यो बाजरो ।

म्हे दली ए मूंगा की दाल ।। मीठो खीचड़ो ।।

खदबद खदबद सीझै बाजरो ।

कोई लथपथ सीझै दाल ।

दूध खीचड़ो खावण बैठ्या

कोय तरसै म्हारी जाड़ ।। मीठो खीचड़ो ।।

हरियाणा में सभी प्रकार की फसलों की न्यूनाधिक पैदावार होती है । सिंचाई के अधिकाधिक साधनों के प्रसार से यहां धान व ईख की खेती अधिकता से होने लगी है । ईख की खेती परिश्रमसाध्य होती है तभी तो ग्रामीण स्त्री ईख की फसल पैदा करने के कारण हुए कष्टों का ब्यौरा देते हुए कहती है कि ईख के पीछे उसने अपने बच्चे रोते छोड़े, पीसना छोड़ा, दुधारू गाय छोड़ी, कातना छोड़ा और यहां तक कि माता-पिता को भी छोड़ा । कृषक वधू का यह दुलार भरा उलाहना निम्नलिखित गीत में वर्णित है[1] --

"बोहत सताई ईखड़े रै, तन्नै बोहत सताई रे ।

बालक छोड्डे रोवते रै, तन्नै बोहत सताई रे ।

डालडी मैं छोड्या पीसणा

अर छोड्डी सै लागढ़ गाय,

निगोड़ी ईखड़े । तन्नै बोहत सताई रै ।

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 255-56

कातणी मैं छोड़्या कातणा

अर छोड़्डे सैं माय अर बाप,

निगोड़े ईखड़े ! तन्नै बोहुत सताई रे ।

बोहुत सताई रे, तन्नै बोहुत सताई रे ।

बालक छोड़्डे रोवते रै, तन्नै बोहुत सताई रे ।"

ईख की फसल से हुई आय में से कृषक बाला ने अपनी कंठी छड़ाई है, लेकिन दुर्भाग्य कि उसे चोर उठा ले गया । यह आरोप वह कुलवधू पर डाल देती है । निर्दोष कुलवधू रोष में अपने सम्बन्धियों व पड़ोसियों की दुर्दशा करने का निर्णय लेती है[1] --

"ईख नलाई के फल पाई,

ईख नलाई मन्नै कंठी घड़ाई,

ले गया चोर बहु कै सिर त्याई ।

सुसरा तै लड़ूंगी पीठ फेर कै लड़ूंगी,

आजा हे सास्सड़ तन्नै डंडा तै घड़ूंगी ।

जेठ तै लड़ूंगी गाती खोल कै लड़ूंगी,

आजा हे जिठाणी तेरा धान सा घड़ूंगी ।

देवर तै लड़ूंगी घूंघट खोल कै लड़ूंगी,

आजा हे दोराणी तन्नै खूंटिया धरूंगी ।

बालम तै लड़ूंगी मैहला बैट्ठी हे लड़ूंगी,

आजा हे सोकण तेरा डंका बित्ती घडूंगी ।"

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 256

मक्का की उपज किसान आसानी से कर लेता है । लेकिन उसे पीसते हुए उसकी पत्नी को कष्ट होता है। दिन भर फसल की कटाई में व्यस्त रहने के उपरान्त सन्ध्या समय जब वह घर आई तो सास ने मक्की पीसने के लिए सुखा रखी थी । उसे पीसते बहू की धरण (नाभि) डिग गई । वह क्रोधित होकर पति से मक्की कभी न बोने के लिए कहती है । उसका कहना है कि सास के मृत्योपरान्त और नणद के ससुराल गमन के उपरान्त अपने राज्य में वह कभी मक्की को घर में घुसने नहीं देगी । गीत प्रस्तुत है --

"पांच पचास की नाथ घड़ाई
पड़गी लामणी पैहरण न पाई
सांझ ताहीं करी लामणी
सांझ पड़ै घरां डिगरयाई,
आगै सास्सड़ लड़ती पाई ।
देख्या क्यूं ना काम, बखतै क्यूं ना आई ।
सास मेरी नै मक्की सुकाई ।
ढाई सेर की कुंडी, बखत उठ कै,
आधी पीस कै कन्धा धोरै आई ।
के सोवैहो के जागै नणदी के भाई
मक्की मत बोइये हो कलावती के भाई ।
डिगगी धरण ठिकाणै नहीं आई ।
सास मर ज्यागी नणद घर ज्यागी
तेरे मेरे राज मैं मक्की छूट ज्यागी ।"

कृषक का दैनिक जीवन कष्ट साध्य होता है । थकावट व परिश्रम के क्षणों में लोकगीत उसके कष्टों को हल्का करते हैं । कोल्हू चलाते वह मल्हार गाता है, जिससे उसे कड़ाके की सर्दी और थकावट का अहसास कम होता है । इन मल्हारों के विषय अनेक होते हैं । प्रस्तुत मल्हार का विषय विरह व्यथा है [1]:-

"चंदा तेरे चांदणे, सुत्ती पिलंग बिछाय ।
जाग्गूं जिद एकली, मरूं कटारा खा ।
मेरे बावले मल्हारे ।।
घास जलै ज्यूं खेस जलैं, कुंडे जलै कसार ।
घूंघट मैं गोरी जलै, हीणे पुरुष की नार ।।
मेरी बावली मल्होर ।।

एक मल्होर मैं 'कोल्हू' की क्रियाओं का वर्णन किया गया है[2]--

"काला हिरण कोल्हू चलै, गोह गंडीलो देय ।
कछवा बैठ्या गुड़ करै, मेंडक झोक्के देय ।
मेरी बावली मल्होर ।।

इन मल्हारों मैं श्रृंगारिकता का पुट भी देखने को मिलता है [3]--

"जल औड़डे काम्मण खड़ी, लाम्बे खेस न्हाय ।
रस्ता मन्नै बतायदे, ऊंच्ची करके मांय ।।
मेरे बावले मल्होर ।।

1- हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 257
2- वही, पृ० 257
3- वही, पृ० 257

उलटबासी के ढंग पर बनी इन मल्होरों की शैली को 'संध्याभाषा' नाम भी दिया गया है । इनमें कभी-कभी ज्ञान के तत्व भी मिलते हैं -- एक मल्होर में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है[1] --

"आम्बर ऊप्पर हल चलै, बुलद गऊ के पेट ।
हाली तो जलम्यो नहीं, रूटियारी खड़ी खेत ।।
मेरी बावली मल्होर ।"

खेद है कि अथक परिश्रम करने के उपरान्त भी किसान की आर्थिक दशा शोचनीय है । यही भाव इस गीत में ध्वनित होता है --

"जिमींदार तेरा हाल देख के मेरा कलेजा धड़कै री ।
पाया में तेरे टूट्टे लित्तर, तन मैं पाट्या कपड़ा री ।। जिमींदार-
बास्सी टुकड़ा मिलै खाण नै, वो बी जेट्ठे मैं धर देरे ।
काग तै तेरी रोट्टी ले ज्या पड़्या छालणा झड़क कै रै ।
सांझ होवै ज्यब घर नै आवै, पाणी बी ना पावै रे ।
हाऱ्या नीऱ्या पड़ कै सो ज्या, बुल्दां तै बतलावै रे ।
च्यार बजे तनै पड़ै ऊठणा, बुलदां की सान्नी भैवे रे ।
दिन लिकड़ै ज्यब पीलक पाट्टै हलसी जोड़ के जासै रे । जमीं०
तड़के तै दोफारा होज्या टूक नसीब न होता रे
सारी दुनियां खा सै कमाई, जिब बी धाप नहीं सै रे । ज०
बालक बच्चे हाडैरोंवते, दोन्नू खेत कमावै रे ।
मण्ड-मण्ड के तूं बोहत कमावै जिब बी गरीब तूं ई रे ।"

अथक परिश्रम करने पर उचित फल न मिलने से किसान कुंठित हो जाता है । यही निराशा और कुंठा गृहकलह में परिवर्तित होती है ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 257

परिणात: उसकी पत्नी जल कर मर जाती है । कृषक पश्चात्ताप करता है, लेकिन 'अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' के अनुसार अब पछताने से क्या लाभ ?

"हलसी जोड़ के ज्या सां रोट्टी ल्याइये म्हारी नार
रोट्टी खेत मैं ल्याइये ।
राय ना जाणूं थारे खेत का, नां जाणूं थारा खेत
रोट्टी मैहल मैं खाइये ।
खूंट्टी तै साटटा तार के तारी सड़ासड़ खाल
सतरंग साड़ी बांध कै कर के हार सिंगार
रोट्टी खेत मैं ल्याइये ।
डोलै जवारा टेक कै करे फड़ाफड़ बोल
रोट्टी सोच के खाइये
चोट्टी तै ताली खोल के मन मैं लाया बिचार
जिंदगी राखणी कोन्या
पीपी का ढक्कण खोल के मन मैं लाया विचार
कपड़े राखणे कोनी
छिड़क्या मिटिया तेल लाई बदन मैं आग
हलसी आले आज तेरी नार बी कोन्या
दिन छिप्या जब बाड़्वड्या घर मैं घोर अंधेर
बूलदां नै न्यार बी कोन्या
भीत्तर बड़ के रो पड़्या या के सोच्ची निरभाग
न्हाणै मैं नीर बी कोन्या

खेत में पानी लगाते, हल चलाते, गाड़ी चलाते वह गुनगुनाता रहता है जिसमें कहीं जीवन के तत्व उसके गीतों के विषय बन जाते हैं तो कहीं आध्यात्मिकता । कृषक जीवन में लोकगीत अवश्य ही मधुरता का संचार करते हैं, उसके कठोर जीवन में नवीन प्रेरणा का संचार करते हैं ।

{राजनैतिक प्रभाव के गीत}

राजनैतिक संगठन से समाज सुव्यवस्थित रहता है । राजनैतिक संगठन समाज के विकास और व्यवस्था में सहायक होता है । यह बाहरी शत्रुओं से समाज और उसकी संस्कृति की रक्षा करता है ।

ग्रामीण समाज में सर्वप्रथम राजनैतिक संस्था पंचायत है । पंचायत का भय समाज को अनुशासित करता है । पंचायत को अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं, जिनसे वह किसी का अपराध सिद्ध हो जाने पर बिरादरी से बाहर निकाल सकती है, हुक्का पानी बन्द कर सकती है और उसे दण्डित कर सकती है । पन्च परमेश्वर का रूप होते हैं । उनकी बात शिरोधार्य करना ग्रामीण अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं । पंचायत से न्याय न मिलने पर ग्रामीण कोर्ट-कचहरी की शरण लेते हैं ।

सामाजिक जीवन राजनैतिक हलचलों से असम्पृक्त नहीं रहता । छोटी से छोटी राजनैतिक परिवर्तन, उथल-पुथल अथवा घटना का प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है । लोकगीत चूँकि समाज का दर्पण होते हैं, अतः वे भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहते । वैदिक युग से लोकगीतों की धारा प्रवहमान है । इनमें हमारे सांस्कृतिक गौरव और राजनैतिक चेतना की झांकी अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है । पौराणिक आख्यानों के गीतों में हमारा इतिहास सुरक्षित है ।

मध्यकालीन राजनैतिक जीवन के गीत आज भी लोक कंठ में विराजमान हैं। मुगल शासकों के अत्याचार, उनकी विषय लोलुप प्रवृति, हिन्दुओं की विवशता, मुगलों से सतीत्व रक्षा हेतु भारतीय नारियों का आत्म बलिदान आदि की इन गीतों में मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। एक ऐतिहासिक गीत प्रस्तुत है जिसमें ननद-भावज पानी लेने जा रही थी। पनघट पर मुगलों की फौज ने दोनों को घेर लिया। कुलवधू ने अपनी जान पर खेल कर किस प्रकार मुगलों से अपने सतीत्व की रक्षा की, यही इस गीत का विषय है[1] --

"नणद भावज पाणी चली दोन्नू पाणी नै जाय,

फौज पड़ी बाहर मुगलां की।

हे इब कित छिप जाय, फौज पड़ी बाहर मुगलां की।

आधी नेज्जु हाथ मैं रै, आद्दी कुंए के मांह,

हाथ मरोड़्या मुगले नै।

हे कित छिप जाय, फौज पड़ी बाहर मुगलां की।

आंदी जांदी कामणी री एक संदेशा ले जाय,

बाब्ल मेरै तै न्यूं कहो।

बेट्टी थारी मुगलां के जाय, फौज पड़ी बाहर मुगलां की।

आंदी-जांदी कामणी री एक संदेशा ले जाय,

बीर मेरै तै न्यूं कहो।

थारी बाह्णा मुगलां के जाय, फौज पड़ी बाहर मुगलां की।

आंदी जान्दी कामणी री, एक संदेशा ले जाय,

कन्त मेरै तै न्यूं कहो।

1- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 3

गोरी थारी मुगला के जाय, फौज पड़ी बाहर मुगला की ।

आग्गै-आग्गै बाब्ल मेरा रे, पाच्छे लटवा खा बीर,

आप हराम्मी बीच मैं ।

जिस मैं बसै ए सरीर, फौज पड़ी बाहर मुगला की ।

बाब्ल तो मेरा आम्बा की छाय, बीरा निंबुआ की छाय,

आप हराम्मी नै दिये तम्बू तणवाय, फौज पड़ी बाहर मुगला की

बाब्ल तो मेरा न्यूं कहवै रे, हात्थी द्यूं लख च्यार बेट्टी छुड़ावूं चन्दरावली

राखूं कुल की ए ल्याज, फौज पड़ी बाहर मुगला की ।

बीरा मेरा तो न्यूं कहै री, घोड़े द्यूं लख च्यार

बहुण छुड़ावूं चन्दरावली ।

राखूं पगड़ी की ल्हाज, फौज पड़ी बाहर मुगला की ।

कन्त मेरा तै न्यूं कहवै री, मोहर द्यूं लख च्यार,

गोरी छुड़ावूं चन्दरावली ।

राखूं सेजा की ल्हाज, फौज पड़ी बाहर मुगला की ।

जाओ बाबल घर आपणै, ओ थारी नाय बसाय,

राखूंगी कुल की ल्हाज ।

रोट्टी ना खावूं मुगले की, मैं तो भूखी मर जायं,

फौज पड़ी बाहर मुगले की ।

जा रे बीरा घंर आपणै, ओ थारी नाय बसाय,

राखूंगी पगड़ी की ल्हाज ।

पाणी ना पीऊं मुगले का, मैं तो प्यासी मर जाय,

फौज पड़ी बाहर मुगला की ।

जाओ कन्ता घर आपणै, ओ थारी नाय बसाय,

राखूंगी सेजा की ल्हाज ।

मैं सेज ना सोऊं मुगले की, उनींदी मर जांय,

फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।

बाबर मेरा रो पड़्या रे, बीरा होया दिलगीर,

आप हसाम्मी हंस पड़्या ।

गोरी ल्याऊं दोय च्यार, फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।

जा रे मुगले के पाणी भर ल्याय, प्यास्सी मरै चन्दरावली

उरै-परै का नां पीऊं रे, पीऊं धुर जमना का नीर,

फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।

पाच्छै मुड़ के देख ल्यो ओ बाबल, तम्बू लग रई आग

खड़ी ए जलै चन्दरावली ।

राखी कुल की ल्याज, फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।

पाच्छै मुड़ के देख ले ओ बीरा, तम्बू लग रई आग,

खड़ी ए जलै चन्दरावली ।

राखी पगड़ी की ल्हाज, फौज पड़ी बाहर मुगलां की,

पाच्छै मुड़ के देख ले ओ कन्ता, तम्बू लग रई आग,

खड़ी ए जलै चन्दरावली ।

राखी सेजां की ल्हाज, फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।

हिन्दू कहैं राम-राम, मुसलमान कहैं तोबा-तौबा,

तोड़ी थी चाखी नहीं ।

यो के होया भगवान्, फौज पड़ी बाहर मुगलां की

इब कित छिप जांय, फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।"

ऐसे ऐतिहासिक गीतों की कमी नहीं है जो समय के साथ मरे नहीं अपितु जी उठे हैं । 'जय सिंह की मृत्यु' इसी प्रकार का गीत है । अपनी पुत्री का जयसिंह से विवाह करके सास उसे ज़हर देकर मार देना चाहती है । किन्तु पुत्री ऐसा नहीं होने देती और जयसिंह के सामने षड्यन्त्र का पर्दा फाश करती है । जयसिंह व्रत का बहाना बनाकर भोजन नहीं करता । वह अपने सालों के साथ सैर को जाता है, जहां उसका साला कटार से उसकी हत्या कर देता है । पत्नी को जब ज्ञात होता है तो वह उसके साथ सती हो जाती है । गीत का कथानक करूण है । ~~मनेिल=का=कथानक=करुण~~ जिस पुत्री को पाल पोस कर इतना बड़ा किया, उसी का उपयोग शत्रु विनाश के लिए किया । किन्तु भारतीय नारी की भी एक मर्यादा है, परम्परा है । उसने कभी इस प्रकार के घृणित दांव-पेचों मैं राजनीति का साथ नहीं दिया, अपितु पति को उसने परमेश्वर समझा और उसी की होकर रही । अन्त में उसी के लिए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग किया --

"मायड़ बी बरजै रे जयसिंह बाबल बी बरजै,
मत न्या जाइयो सुसराड़, गिरैं हीरे लाल।
मायड़ का बरज्या जै सिंह एक ना मान्या,
छींकत चल्या सुसराल, गिरैं हीरे लाल ।
छींकत छांकत जै सिंह छोड़ा पिलाण्या
टिब्बै की ढलती रे जै सिंह साला बी मिल ग्या ।
घर की कुशल बताय जै सिंह गिरैं हीरे लाल ।
भाज्जी तो दौड़ी मेरी माय कुम्हरे कै गई
एक हाड्डी दोय पेट, गिरैं हीरे लाल ।
एक हाड्डी मैं चावल रांधै, एक हांडी मैं खीर गिरैं ----

किसकी खात्तर मा चावल राधै,

किसीयां की खात्तर खीर, गिरै हीरे लाल ।

भाई भतीज्जे मेरी जाई धी चावल राधै,

रतन जमाई नै खीर, गिरै हीरे लाल ।

भाज्जी तो दौड़ी मेरी धी ताऊ के आई,

साजन डेरे बुलाय, गिरै हीरे लाल ।

पड़दै के ओल्ले जै सिंह बी बोल्लै,

सुण लिये गोरी के बोल, गिरै हीरेलाल ।

हुक्का ना पीओ रे जै सिंह पाणी ना पीओ,

मत न्या खाइयो इनकी खीर, गिरै हीरे लाल ।

भाज्जा तो दौड़्या साला ताऊ के आया,

उठो नै जीजा म्हारे जीम, गिरै हीरे लाल ।

हम तो हमारे साले ग्यारस के बरती,

जाय खा ल्यागे म्हारे देस, गिरै हीरे लाल ।

उठो न जीजा म्हारे घोड़ा पिलाणो,

अर हो ल्यो नै साला की साथ, गिरै हीरे लाल ।

टिब्बै तो ढलती रै जै सिंह बीरां की जोड़ी,

घोड़े तो लिये हैं आग्गै लाय, गिरै हीरे लाल ।

पैहला कटारा मेरी मां हंसिया मैं टाल्या,

घोड़ा बी ले हो साला मत खो मेरी ज्यान, गिरै ----- ।

घोड़ा ना लेऊं जीजा माल न लेऊं,

खोऊंगा तेरी ज्यान, गिरै हीरे लाल ।

टिब्बे तो चढ़ कै मेरी माँ देक्खण लाग्गी,
साजण किधर नै जाय, गिरे हीरे लाल ।
टिब्बे तो ढलते मेरी माँ बीराँ की जोड़ी,
चील रई मंडराय, गिरैं हीरे लाल ।
औराँ के घोड़े मेरी माँ हिणसते आवैं,
जै सिंह का घोड़ा उदास, गिरैं हीरे लाल
आग लगाऊँ तेरा माल मायला
जल ज्यांगी साजण कै साथ, गिरैं हीरे लाल ।

इस गीत में एक लोक-विश्वास का उल्लेख हुआ है । जय सिंह छींकता हुआ प्रस्थान करता है । 'छींकना' लोक में अपशकुन माना जाता है, इससे अहित की आशंका होती है । गीत में इसकी पुष्टि भी हुई है ।

आधुनिक युग में राजनीतिक चेतना का सूत्रपात गांधी जी के स्वराज्य आन्दोलन से होता है, जिसका उल्लेख लोकगीतों में सर्वाधिक है । इससे पता चलता है कि गांधी जी से लोकमानस कितना प्रभावित था । लोकगायकों ने अपनी ओज भरी वाणी में गांधी और जवाहर के संदेश घर-घर पहुँचाये थे । गांधी जी की जय-जयकार लोकगीतों में वर्णित है--

"एक छोट्टी चवन्नी चाँद्दी की,
जै बोल महात्मा गांधी की ।"

पूंज्यनीय बापू की निर्मम हत्या ने लोककवि को व्याकुल कर दिया[1]--

"भारत के चन्दरमा छिपग्ये, रहे बिलख तारे,

एकअज्ञान मराठा था जिन गांधी जी मारे ।

करण प्रार्थना गया हुआ था जुलम हुए दिन धोली,

बांएं दहने दो कन्या थी भरे पिता की कौली,

बेदर्दी ने दया करी ना तीन मार दी गोली,

बहुत से माणस कट्ठे होगे बणा बणा के टोली ।"

इसी प्रसंग से जुड़ा एक अन्य गीत बापू द्वारा देश पर किये गये उपकारों की कथा कहता है[2] --

" भारत को आजाद बणा के सुर्ग के बीच डिग दिया,

एक अज्ञानी भाई हमनै बिना पिता के करग्या ।

सुखे बाग को उसनै आण कै सींचणा सरू किया था,

बाग के पौदे लहर उठे सब जड़ों मैं नीर दिया था ।

हरदम लगा बाग सेवा में जब तक भक्त जिया था ।

सरसब्ज बनाना हिन्द बाग को दिल मैं ठान लिया था ।

उस माली को मारण आले पापी तूं निश्तरग्या,

भारत को आजाद बणा के सुर्ग के बीच डिग ग्या ।

--- ---

नत्थू नाश करणिये तू नै हिन्द के सूर्ज छिपाये,

भारत के जितणे नेता थे एक दम घबड़ाये ।

1- हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 260

2- वही, पृ० 261

अमरीका, इंग्लैंड, रूस से गम के पत्तर आये,

जर्मन और जापान चीन सब देश पछताये ।

यू॰एन॰ओ॰ का बी झंडा झुकग्या

जिस दिन बापू मरग्ये ।

भारत को आजाद बणा के सुर्ग के बीच डिग दिया ।"

गांधी जी की मृत्यु से भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व हिल उठा था । अवधी लोकगीतों में गांधी जी की मृत्यु तथा उनके त्यागपूर्ण व कर्मठ जीवन का वर्णन हुआ है[1] --

"गांधी बाबा की है स्वर्ग कैसफरिया

लगनिया लागी भारत से रही ।"

लोकमानस बापू के हत्यारे को कभी क्षमा नहीं कर सकता[2] --

"नाथू बेइमनवा के करनवा गांधी मारा गये ना ।

नाथू गोली जब चलाइस, बापू राम राम गोहराइन ।।

अधिकतर हरियाणवी पुरुष सेना की शोभा बढ़ा रहे हैं । प्रथम महायुद्ध के समय यहां के जाट सिपाही छः नम्बर के रिसाला में थे, जिन्होंने जरमनों से लड़ते हुए वीर गति पाई[3] --

"जरमन नै गोला मार्‌या, जा फूट्या अम्बर मैं ।

गारद तै सिपाई भाज्जे, रोट्टी छोड़ ग्ये लंगर मैं ।

रै उन वीरां का के जीवै । जिनके बालम छः नम्बर मैं ।

1- अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, पृ० 388

2- वही,

3- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 261

स्वराज्य आन्दोलन के उपरान्त लोकगीतों में भी नई लहर का सूत्रपात हुआ । इनमें देश-प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों की अभिव्यक्ति होने लगी । गीतों की लय-धुन वही थी, लेकिन भाव बदल गये थे । स्वतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि नये उत्सव देश में मनाये जाने लगे । भारत माता और तिरंगे झंडे के गीत गाये जाने लगे । शादी-ब्याह के अवसर पर 'बन्ना' इसी विषय का गाया जाने लगा --

"बन्ना ओ ले कै तिरंगा झंडा,
आय जाओ ब्याहवण नै ।"

जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, हरियाणा के अधिकतर रण बांकुरे सेना की शोभा बढ़ा रहे हैं । भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय भी लोक-गीतकार ने अपने उद्‌गार प्रकट किये । चीन के साथ हुए युद्ध में तो हरियाणवी नारी भी पति के साथ युद्धक्षेत्र में जाने का आग्रह करती है । पति चीनी सैनिकों का भय बताकर उसे रोकना चाहता है --

"चीन देस के छोहरे रै गोरी, छोहरे बड़े हराम्मी सैं ।"

लेकिन पत्नी अपनी जगत्प्रसिद्ध वीरता के जोश में है --

"भारत देस की छोहरी हो पिया, ये दुनियां में नाम्मी सैं"

वह पति के साथ युद्धक्षेत्र में पूरा सहयोग देने की इच्छा व्यक्त करती है --

"थारी गैल्यां रैफल चला ल्यूंगी हो पिया,
मत करियो इंकार ।"

इनके अतिरिक्त चुनाव अभियानों में लोक-धुनों पर चुनाव गीत रचे गये । स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भूमि सुधार योजनाओं के अन्तर्गत 'चकबन्दी' का विशेष महत्व है । इसकी प्रशंसा में लोकगीत रचे गये --

"चकबन्दी आई ग्राम-गाम,

इब गाम बणे बैंकुण्ठ धाम ।"

नेहरूजी के निधन पर लोकगीत कार ने शोकमय गीत गाये । इसी प्रकार संजय गाँधी की आकस्मिक मृत्यु का चित्रण एक लोकगीत में हुआ है --

"जोगी नै बचन कहे थे रै संजय तेइस का काल,

तेइस नै ज्हाज ना चलाइये रै संजय तेरा होगा काल,

उनै ज्हाज सिकर मैं चढ़ाया ए, वो मान्या ना मूल,

उंका ज्हाज डाल मैं उलज्या ए गिर ग्या ज्हाज,

उंके टुकड़े-टुकड़े हो गये ए पाई ना उंकी ल्हास,

उनै गेर कार मैं ल्याए ए मैडिकल गे पास,

डाक्टर पै डाक्टर झुक गये ए उंकै कोई ना होया अराम,

उनै गेर कार मैं ल्याये ए कोट्ठी के बीच,

उंकी इंदिरा माता रोवै ए राजीव के साथ

उंकी मेनका ब्याई रोवै ए छात्ती पै धरकै हात,

पाँचसै का आया दुसाल्ला, आया ए नौस्सै का साल,

मेनका नै उढ़ाया ए दुसाल्ला इंदिरा नै उढ़ाया साल,

उनै गेर कार मैं ल्याए ए पूरी पलटण के साथ,

उपै नौ मण चंदन गेर्या ए उपै दो मण गेर्या घी,

राजीव नै अगन लगाई ए उंका जल ग्या सकल सरीर

तूं फेर बी वापस आइये रै संजय इंदिरा मा के पास ।"

इन थोड़े से उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि लोकगीत सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों से निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं । वे अपने युग को पुरातन का संदेश और भविष्य की प्रेरणा देते हैं ।

लोकगीतों में सैनिक की पत्नी :

हरियाणा वीर बांकुरों की धरती है । यहां की सैनिक देश रक्षा के हित में अपना बलिदान देना सौभाग्य समझता है । उसकी अर्द्धांगिनी भी इससे कम गौरवान्वित नहीं होती । जब भी देश को आवश्यकता हो, वह अपने पति को रण में जूझने की प्रेरणा देती है --[1]

"पिया भरती मैं हो ले नै
पट ज्या छत्रापण का तोल
दुश्मन तै जा के लड़िये
अपणे मां बापां का नां करिये
तोप्पां के आग्गै लड़िये
अपणी छात्ती नै दे खोल
पिया भरती मैं हो ले नै
पट ज्या छत्रापण का तोल ।"

वीरत्व इस प्रदेश के लिए कोई नई वस्तु नहीं है । यह गुण यहां के वीरों को परम्परा से प्राप्त हुआ है । भगवान् श्री कृष्ण ने गीता का अमर संदेश यहीं कुरूक्षेत्र में दिया था, जिसका आशय था कि अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गद्वार सदृश इस प्रकार के युद्ध तो भाग्यवान क्षत्रिय ही पाते हैं --

"यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।"

1- हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, देवीशंकर प्रभाकर, पृ० 54

वैदिक युग में महाराज पृथु और मांधाता जैसे चक्रवर्ती नरेशों ने सरस्वती के पावन तीर्थों पर राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ रचाये थे [1] -- यहां के वीर बांकुरों ने युद्ध से कभी मुंह नहीं फेरा और न दुश्मन को पीठ दिखाई अपितु सदैव इन्होंने लड़ते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया । इन्होंने कुषाणों और हूणों को खदेड़ा । इन्हीं युद्धवीरों के भय से सिकन्दर सतलुज से परे ही लौट गया । गुप्त नरेशों के समय में यह राजसत्ता का एक सुदृढ़ केन्द्र था । कालान्तर में पानीपत व तरावड़ी के मैदानों में यहां के निवासियों ने बर्बर आक्रान्ताओं से लोहा लिया । यहां के जोगी व भाट 'साकों' से इन वीरों का उत्साह बढ़ाते थे --

"भूरे की माता बोलती सुण भूरा मेरा
तोड़ बगादे कांगणा पकड़ो शमशेरा
अपणे बैरी के दलां में ब्याह हो ज्या तेरा
सांग्यां हो ज्या आरता तलवाड़्यां फेरा
सेर गढ़ां के पकड़िये तूं रहा भगैरा
तूं ओढ़ै नै चूंदड़ी मनै दे दे चीरा
मैं पडूं दलां में टूट कै मार ढा द्यूं ढेरा।।"

दिल्ली के निकट स्थित होने के कारण इस प्रदेश ने कितने ही साम्राज्यों का उत्थान-पतन देखा । 1857 के संग्राम में यहां के योद्धाओं का बड़ा भारी योगदान रहा है । राव राजा तुलाराम- नवाब झज्जर के सेनापति समदखां, महाराज नाहर सिंह वल्लभगढ़ और राव सेनानी

1- हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, देवीशंकर प्रभाकर, पृ0 56

कृष्ण गोपाल के नेतृत्व में इन्होंने अंग्रेजों से युद्ध किया । इनकी जिव्हा पर यही शब्द थे --

"हारया नर वो जाणिये जो कह्वै हार की बात ।"

दोनों विश्वयुद्धों में भी यहां के वीरों ने विदेशों में जाकर अपनी वीरता की धाक जमा दी । आज भी हरियाणवी युवक अपने देश की सरहदों का पहरेदार बना बैठा है । उसकी पत्नी को उस पर गर्व है । वह अपनी सास से कहती है --

"सास री भारया-सा दाम्मण सिमा
चक्कर काट्टै कली-कली
सास री । हरया सा कुड़ता सिमा
जेबां में राखूं टैम घड़ी
बहुअड़ न्यूं तै साच्च बता
के करैगी टैम घड़ी ?
सास री मैं फोज्जी की नार,
हरदम चइये टैम घड़ी ।"

हरियाणा की सैनिक पत्नी जहां अपने पति के फौज में भर्ती होने पर गर्वित है, वहीं उसके दिल में विरह व्यथा भी है । यह व्यथा तब और बढ़ जाती है जब सैनिक लम्बे अन्तराल के बाद अल्प समय के लिए आता है । पत्नी पीहर में है । उसके आने से वह भयभीत हो जाती है । वह उसके साथ ससुराल जाने की अपेक्षा पीहर में रहना अधिक पसन्द करती है क्योंकि ससुराल में अथक गृहकार्य, देवरानी, जेठानी और सास-ननद के उपालम्भपूर्ण वचनों के अतिरिक्त उसे क्या मिलेगा ? यदि इन सब कष्टों के साथ उसका प्रियतम वहां हो तो वह इन सबको झेल जाये । लेकिन वह तो बहुत थोड़े समय के लिए आया

है । उसकी अनुपस्थिति में वह यह सब कुछ सहन नहीं कर सकती । इस गीत में मार्मिक वेदना व्यंजित हुई है --

"हाथ जोड़ के कहूं मेरी मां सुण ले मेरी बात
मनै मत छाल्लै मां इस फौज्जी कै साथ
द्योराणी जिठाणी मन्नै तान्नै मारैं मेरी सास तै लड़कै
गोब्बर ल्याऊं, पाणी ल्याऊं, जाऊं खेत मैं तड़कै
जेठ-साढ़ का घाम पड़ै री मां धूप मैं सूख ग्या गात
मन्नै मत घाल्लै मां ----------- ।
दस सेर पक्का पीसणा री मेरी सास धरै
बखत तै उठ कै पीसणा री मां कोन्या बसकी बात
मनै मत घाल्लै मां ------- ।
छोट्टी नणदल राजकला री मां रोज लड़ै
सास मेरी का जलद सुभा वा तंग करै
झूठी सच्ची ओटणा री मां, कोन्या बस की बात
मन्नै मत घाल्लै मां ----- ।
फौज्जी तो री मां छोड़ डिगरज्जा
एक साल बिन आवै ना
द्योराणी जिठाणी मेरै तान्नै मारैं मन्नै बोल सुहावैं ना
फौजियां कै बस की कोनी करणी मुलाकात,
मनै मत घाल्लै मां ----- ।
पीहर के मैंह रह्या करूं सो काम करूं

मात पिता की सेवा सुबह-शाम करूँ
सासरे मैं रैहणा मां, कोन्या बस की बात
मनै मत घाल्लै मां --------
हाथ जोड़ कै कहूँ मेरी मां सुण ले मेरी बात
मनै मत घाल्लै --------- ।"

दो दिन का ही क्यों न हो, इतने दिनों बाद पति से मिले बिना पत्नी रह नहीं सकती । उसका मन अनिश्चितता की ऊहापोह में भटकता रहता है । अपनी मां के समक्ष वह मिलने को मनाकर देती है, लेकिन बाद में सखियों से मिलने का कोई उपाय करने को कहती है ---

"दस दिन की छोरा छुट्टी आया
सुद्दा आया म्हारी बैठक मैं
म्हारी बैठक मैं बैठ के घाल्लण का जिकर चलाया ए
बीर नाट कमरे मैं बड़ग्या, मेरै सरप सा लड़ गया ए
ठा के तसला गई खेत मैं जा सखियां मैं रोई ए
कह सुण के घलवा द्यो ए छोरियो घणा दिनां मैं आई ए
मखमल का मेरा सोड़-सोड़िया चादर का रंग न्यारा ए
किसकै तलै बिछावूं ए छोरियो राज्जा नौकर जा र्‌या ए"

अंतत: पत्नी पति के साथ ससुराल आती है ।छुट्टी सीमित थी, जो अल्प समय में ही व्यतीत हो गई । पति के वापिस जाने का दिन आखिर आ ही जाता है । पत्नी अकेलेपन की कल्पना से ही घबरा जाती है । ससुराल के कार्य से वह उकता जाती है और पीहर जाने के लिए उसका पति मना कर देता है । वह पति के साथ जाने को उद्यत होती है । सैनिक वहां के

नाना कष्टों से उसे अवगत कराना चाहता है । लेकिन वह स्त्री पति के साथ सेना के कष्टों को घरेलू कष्टों के समक्ष नगण्य समझती है--

"खाक्की वर्दी पैहरूंगी हो पिया तार बणाऊँ सिंगार
फौज मैं लडूंगी हो पिया ले पांचूं हथियार
लड़ना भिड़ना यो वीरां का काम नहीं
थारी गैल्यां रैफल चला ल्यूंगी
हो पिया मत करियो इन्कार ।
फौज मैं -------------- ।
दूध दही नै छोड्डैगी रै लस्सी नै तड़पती डोल्लैगी
थारी गैल्यां खाणा खा ल्यूंगी
हो पिया मत करियो इंकार ।
फौज मैं ------------ ।
पिलंगी सणी के छोड्डैगी रै
जंगल मैं तड़पती डोल्लैगी
थारी गैल्यां बिस्तर ला ल्यूंगी
हो पिया मत करियो इन्कार ।
फौज मैं -------------- ।
मैहल अटारी छोड्डैगी रै
जंगल मैं डेरा लावैगी ।
थारी गैल्यां बिस्तर ला ल्यूंगी
हो पिया मत करिया इन्कार।
चीन देस के छोरे रै गोरी
छोरे बड़े हराम्मी सै

भारत देस की छोरी हो पिया
ये दुनिया मैं नाम्मी सै
थारी गैल्या रैफल चला ल्यूंगी
हो पिया मत करिये इंकार ।
फौज मैं ------------ ।"

पति उसे अपने साथ नहीं ले जाता । पति की उपस्थिति में जो घर स्वर्ग सदृश लगता था, वहां अब घोर अंधेरा छाया है । कोयल की कर्णप्रिय वाणी अब उसके कानों में ज़हर घोलती है । वह कोयल को सम्बोधित करके कहती है कि मेरे पिया परदेश गये हैं ।ऐसे में तू क्यों बोल रही है? 'पी' तो मेरे पति का नाम है । तू उसका उच्चारण क्यों कर रही है? मैं इसकी शिकायत तेरे पति से करूंगी ---

"मेरे पिया गये परदेस, कोयलिया क्यूं बोल्लै ऐ ।
यो सै मेरे पिया जी का ना, कोयलिया क्यूं बोल्लै सै ।
तूं तै काली बणी भगवान्, कामण उनकी गोरी सै
मेरे मन मैं उठैं सैं हिलोर, तूं बेकल हो री सै ।
तूं तै काले बाद्दल की गैल, उड़ ज्या री अंबर मैं ।
बेबे हम बिरहण की रात कटै सै पीहर मैं ।
तेरे पिया तै करूंगी कलेस, कोयलिया क्यूं बोल्लै सै ।"

एक अन्य गीत में नायिका विरह व्यथा से पीड़ित है । पति का पत्र पाकर उसके घाव फिर हरे हो जाते हैं । आंसू गालों पर लुढ़क जाते हैं । वह व्याकुल हो उठती है । उसकी अवस्था का चित्रण लोकगीत में हुआ है --

"अरी ! हे री ! मरवे के नौ दस पेड़, चमेल्ली एकली

अरी ! हेरी ! मेरे पिया नै भेज्या संदेस खड़ी-खड़ी बांचती ।

अरी ! हेरी ! संग की सहेलियां बूझतीं, जीजा का हाल

क्यूं ना बतावती ।

अरी ! हेरी ! सब नै लिखी सै प्रणाम याद घनेरी आवती

बांचत-बांचत हुई हाल बेहाल, आंख्यां तै आंसू ढारती

हाय री अभागण नार, पिया बिन दिन एकलो काटती ।"

नायक के बिना नायिका के दिन काटे नहीं कटते । वह पति को नौकरी से वापिस बुलाने के नानाविध उपाय करती है । इसका निरूपण एक गीत में अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ है । पत्नी जो बहाने बनाती है उसमें उसकी बहन का विवाह, मां की मृत्यु और पुत्र जन्म की सूचना है। इन बहानों से पति नहीं लौटता । अन्ततः नायिका स्वयं अपनी मृत्यु की सूचना भिजवाती है । इस पर पति विचलित हो उठता है और झटपट घर की ओर प्रस्थान कर देता है । घर पहुंचने पर उसे सब कुशल मिलता है । पत्नी की व्यंग्यात्मक मुस्कान से वह अनुमान लगा लेता है कि उसे छल से बुलाया गया है । गीत द्रष्टव्य है --

"कोय च्यार टकै हूं गांठ के

कोय लसकरिया तै न्यूं कहो,

थारे घर बाहूण का ब्याह ।

काले तो पीले कप्पड़ेजी

कोय कन्या नै द्यो परणाय ।

कोय च्यार टकै हूं गांठ के जी

जे कोय लसकर जाय ।

उस लसकरिया तै न्यूं कहो

थारी माय मर्‌या घर आय ।

माय नै दाब्बो बालू रेत मैं,

उप्पर सूल बबूल ।

कोय च्यार टके द्यूं गांठ के जी,

जे कोय लसकर जाय ।

उस लसकरिये तैं न्यूं कहो

थारे कंवर हुआ घर आय ।

कोट्ठी चावल घी घणा,

कोय बैट्ठी कंवर खिलाय

कोय च्यार टके द्यूं गांठ के जी

जे कोय लसकर जाय

उस लसकरिया तैं न्यूं कहो

थारी गोरी मरी घर आय ।

गोरी नै दाब्बो चम्पा बाग मैं

कोय ऊप्पर साल दुसाल ।

गोरी मरी घर खोमरी

म्हारा कुणबा बारां बाट ।

कागद पटक्या जी चौंतरे

वा उठ्या धोत्ती झाड़ ।

याल्यो राजा जी थारी चाकरी

याल्यो थारा देस ।

के दु:ख छोड्डी चाकरी

कोय किस दु:ख छोड्या देस ।

कोय गोरी मइया छोड़या सै देस ।

कोय कूंए की री पणिहारी,

म्हारे घरां की कुसल बताय ।

बालक झूल्लें जी पालणैं

कोय गोरी रसोइयां के बीच ।

थारी मायड़ कात्तै जी कातणा

कोय बाहण कसीदा जी हाथ ।

इस छंलियाई नै छल करया ।

छल कै लिया सै बलाय ।

छल करां ना तै के करां

थम तै छाया परदेस ।"

पति तो आ गया, लेकिन अब संयुक्त परिवार में मिलना एक विकट समस्या है । और उस पर पर्दा प्रथा का चलन । विरहिन के हृदय में चिर प्रतीक्षित पति से मिलने की कितनी ललक है, आतुरता है, उसी का चित्रण इस गीत में किया गया है[1] --

"मिलण जाणै कद होगा ?

मेरे राजा की अलग अटरिया, मिलण जाणै कद होगा ?

आद्ददी-सी रात, पहर का तड़का

मिलणै चढ़ी अटरिया, मिलण जाणै कद होगा ?

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 73

ललना दे मनै सासु जी भैज्जी

तो आ गई जुलमी जिठणिया, मिलण जाणै कद होगा ?

आधा बांट जिठणिया भैज्जी

तो आ गई नणद बिजलिया, मिलण जाणै कद होगी

गुड़िया दे मन्नै नणदिया भैज्जी

तो आ गया पीहर का नऊवा, मिलण जाणै कद होगा ?

चिट्टी दे मनै नऊवा भैज्या

तो आ गया प्यारा भैया, मिलण जाणै कद होगा ?

मूढ़ा दे मन्नै भइया बठाया

मिलणै चढ़ी अटरिया, मिलण जाणै कद होगा ?

मूढ़े तै उठ के भइया बोल्या

जल्दी चलो जीजी भैया, मिलण जाणै कद होगा ?"

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि हरियाणा के अधिकतर पुरुष सेना में भर्ती हैं । देशहित उनके लिए सर्वोपरि है । उसकी अनुपस्थिति में पत्नी को विरह की लम्बी रातें व्यतीत करनी पड़ती हैं, अतः गीतों में उन भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है । इन गीतों की बांगरू लोकगीतों में अधिकता है, जिनमें इस भाव को अनेकानेक रूपों में गूंथा गया है । विरहिन के उद्गारों का किंचित् मात्र दिग्दर्शन यहां प्रस्तुत किया गया है ।

पनघट के गीत --

पनघट के गीतों का लोकजीवन में विशेष स्थान है । इन गीतों में अधिकांश गीत श्रृंगारपरक होते हैं । हास्य रस के अनेक गीत मिलते हैं । हरियाणा के गांवों में पानी भरने का समय प्रातः या सांय होता है । ग्राम-वधुएं और कन्यायें सज-संवर कर सिर पर 'टोकणी' रखकर समूहों में पानी भरने जाती हैं । एक गीत प्रस्तुत है जिसमें भावज अपनी नणद से परिहास करती है[1] --

"उठ उठ री नणदल पाणी नै चाल,
सरवर देखैं थारै बाप की ।
चाले चाले री नणदल कोस पचास,
कित सरवर थारै बाप की ?
वै दिखैं री भावज ऊंच्चे नीच्चे रूंख,
उत सरवर मेरै बाप की ।
तम तैरी नणदल भरो है झकोल
हम दांतल टुक जाल की ।
यो के री भावज कुवे के बीच,
जो नाड़ उकासै सर ढकै,
यो सै री नणदल थारा भरतार,
यो बर ढूंढ्यो तेरै बाप नै ।"

एक अन्य 'पनघट' गीत में नायिका को ज्ञात होता है कि उसका पति दूसरा विवाह करने को उद्यत है । गम्भीरता से आरम्भ होकर यह गीत अन्त में हास्य रस का संचार करने लगता है[2] --

---

1- हरियाना प्रदेश के लोक गीत, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 265
2- वही

"सरवर पाणी मैं गई सुण आई नई नई बात,

बिरजो एक जोबन झिरूवै[1] एकला ।

एक लुगाई न्यूं कहै तेरे हाकिम का दूजा ब्याह,

बिरजो इक जोबन झिरूवै एकला ।

किस गुण ब्याही दूसरी मेरे औगुण द्यो न बताय,

बिरजो एक जोबन झिरूवै एकला ।

औगण थोड़े गुण घणे, छोटी बनड़ी का चाव,

बिरजो एक जोबन झिरूवै एकला ।

ऊँचे चढ़ के देख ल्यूं किसी क सजी सै बरात,

बिरजो एक जोबन झिरूवै एकला ।

लंगड़े लूले डेढ़ सै काण्यां का ओड़ न छोड़,

बिरजो एक जोबन झिरूवै एकला ।"

सोकण आई मैं सुणी हलहल चढग्या ताप,

बिरजो एक जोबन झिरूवै एकला ।"

फैशन के गीत --

फैशन जब प्रचलन में आता है तो इसके प्रभाव से गांव भी अछूते नहीं रहते । गांव में इसका अवतरण हास्य पैदा करता है । इस फैशन ने युवा तो युवा, वृद्धों को भी अपनी लपेट में ले लिया है । वृद्धों द्वारा अपनाये गये फैशन पर की गई चोट हास्यास्पद है[2] --

---

1- नष्ट होना

2- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 80

`बुढ़िया नै सिमाया सूट हरी ए साट्टण का
ऊँ के सिर पै दुपट्टा लाल पाणी ए वा भर ल्याई
बुड्ढे नै मारी किलकार हाय रै या बहू किसकी
भीत्तर तै लिकड़ैया छैल ताऊ हो ताई मेरी है
बुड्ढे के उठ्या छोह पैंट सिमवाई
उनै कुड़ता दिया बधाय बुशट सिमवाई
उनै खण्डवा दिया बधेल हैट बी मंगवाया
उनै डाढी रै मूंछ कटवाय पटे रखवाय लिये
या पूर्वा पिछवा बाल और फूट आये
ये धौले काले बाल चणे से उगयाये ।"

`फैशन` विषय से सम्बन्धित निम्नलिखित गीत में आबाल-वृद्ध सभी पर फैशन के रंग में रंगने की धुन सवार है --

"इब की बुड्डि ए मेरी बेब्बे काली वैल मंगावै सै
छिनके - छिनके गेरैं सितारे बहुआं नै परै बढ़ावै सै
इब के बुड्ढे ए मेरी बेबे फैन की धोत्ती बांधै सै
फैन की धोती बांध के छोर्यां नै दूर बढ़ावै सैं ।
इब की बहुअड़ ए मेरी बेब्बे पेट्टां मैं दरद बतावैं सैं
चाक्की ऊपर धर्या पीसणा छोरयां पै पिसवावै सै ।
इब के छोरे ए मेरी बेबे गालां मैं गिरकावैं सैं
आड्डा की छोरी ए मेरी बेबे टेढ्डी मांग झुकावैं सै
ओले हात के घड़ी सजावै, छोरयां नै टेम बतावैं सैं ।

समाज में व्याप्त पंडितों की रूढ़ियों पर
सुधारवादी लोगों द्वारा व्यंग्य किया गया है ।
प्रस्तुत गीत में कटु प्रहार दर्शनीय है --

"हो सुण पण्डत ज्ञान्नी पूछ पिया क्यूं ना पाणी
पाप करै तो नीच कहावै यही बात परमाणी
सुण पण्डत ज्ञान्नी ----------- ।
हाड मांस और मूत्तर बिष्ठ्या इनकी देह है मान्नी
या देही का मान करत है, डूब मरै क्यूं ना अभिमान्नी
सुण पण्डत ------------ ।
पाप करै सो नीच कहावै चाही बात परमाणी
दया धरम जिनके घर मांही वो ऊँच है प्राणी ।
सुण पण्डत ------------।
हाड झरत है, चाम झरत है, झर झर आवै पाणी
वाहे दूध की खीर बणाई तब ना करै गिल्याणी ।
सुण पण्डत ------------------ ।
जल की मछली जल मैं ब्याई जल मैं ही मर जाणी
सूतक पातक जल मैं धुलगे वाहे दिया तनै पाणी,
सुण -------------- ।
राहे रस्त की सोच करत है, सुण ल्यो कमली वाले
सुद्धि अशुद्धि कुछ ना जाणी, डूब मरै क्यूं ना अज्ञानी
सुण -------------- ।"

सास नणद और पति शहर में घूमने गये थे । उनके लौटने पर उनपर बहू द्वारा किये गये हास्य-व्यंग्य का उदाहरण द्रष्टव्य है --

"हाय जिया जल क्यूं ना जा, मेरठ के गये थे बजार में ।

सास लिया मुढ्ढा, नणद लिया पिढ्ढा

हाय जिया जल क्यूं ना जा मेरी खात्तर ल्याए गठूलणा ।

टूट गया मुढ्ढा, टूट गया पीढ्ढा

हाय जिया जल क्यूं ना जा, सड़का पै हाडै गठूलणा ।

हाय जिया जल क्यूं ना जा मेरठ के गये थे बजार में ।

सास लिया लाड्डू, नणद लिया पेड़ा

हाय जिया जले क्यूं ना जा मेरी खात्तर ल्याए कचौड़िया

खा लिया लाड्डू, हजम होया पेड़ा

हाय जिया जल क्यूं ना जा, छात्ती पै राक्खी कचौरिया

सास लिया छोहरा नणद लेई छोहरी

हाय जिया जल क्यूं ना जा, मेरी खात्तर ल्याए बलंगड़ा

भाज गया छोहरा, मर गई छोहरी

हाय जिया जल क्यूं ना जा, म्याऊँ म्याऊँ करै बलंगड़ा ।

सास लिया बुड्डा, नणद लिया बालक

हाय जिला जल क्यूं ना जा, मेरी खात्तर ल्याये सौकण्या

लड़ लिया बुड्डा, भाज गया बालक

हाय जिया जल क्यूं ना जा, छात्ती पै बैठ्ठी सौकण्या ।

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ० 8।

हिचकी

लोकगीतकार का मानस अत्यन्त सक्रिय है । 'हिचकी' आना एक सामान्य-सी घटना है । लोक में प्रचलित है कि किसी प्रियजन के याद करने पर हिचकी आती है । कभी कभी अजीर्ण भी इसका कारण होता है । लेकिन प्रस्तुत गीत भिन्न अर्थ प्रतिपादित करता है । नायिका को हिचकी आती है । अजीर्ण इसका कारण नहीं है क्योंकि अजीर्ण उस समय होता है जब कुछ खाया हो । नायिका तो भूखे पेट है । संभवत: बिछुड़ा साथी याद कर रहा होगा । पर नायिका स्वयं उसको याद करती है । नायक उसे नहीं, फिर उसे ही क्यों हिचकी आ रही है ? अन्तत: वह इसे अपनी मृत्यु का ब्यौरा समझती है । लेकिन मौत भी उसके समीप आकर लौट जाती है । वह भी उसे अपने साथ नहीं ले जाती ---

"मौत भी पर मेरे धोरै आ आ के चली जावै सै"

इन पंक्तियों में परित्यक्ता, विस्मृता, वियुक्ता नायिका की घोर निराशा और बेबसी अभिव्यक्त हुई है । नायिका आगे सोचती है कि हो सकता है श्री राम भगवान् मुझे स्मरण करते होंगे । लेकिन राम जिसकी सुध लेते हैं वे नर सुखी होते हैं, मेरी तरह दु:खी नहीं । अत: वे ही उसे स्मरण नहीं कर रहे, फिर क्या कारण है कि उसे हिचकी आ रही है । द्रष्टव्य है गीत --

"यो हिचकी क्यूं आवै सै राम यो हुचकी
कै यो कब्जी की हिचकी सै जो सारी हाण आवै सै
कब्ज कड़े पर उसनै जो रोट्टी बी नई खावै सै ।
यो हिचकी क्यूं आवै सै राम यो हिचकी क्यूं आवै सै ।
बिछड़े सात्थी की हो ना कदै याद करण की हुचकी ।

याद करै सै तू तै, पर तू किसनै याद आवै सै ।

यो हुचकी क्यूं आवै सैं राम यो हुचकी ।

अच्छा तै फिर के बेरा होगी मरनै की यो हुचकी ।

मौत बी मेरे धौरे आ आ कै चली जावै सै ।

करता होगा राम याद, मन्नै वा ना न्यूं बो कोन्या

जिसनै याद करै सै राम, भला दु:ख कद पावै सै?

यो हुचकी क्यूं आवै सै राम चौ हुचकी ।"

चरखा गीत -- चरखा कृषक जीवन की एक विभूति है । महात्मा गांधी चरखा काता करते थे । उनके स्वराज्य और चरखा आन्दोलन का प्रभाव लोक-गीतों पर भी पड़ा । एक अवधी नारी कहती है[1] --

"अपणै हाथै चरखा चलउबै, हमार कोउ का करि हैं ।

गांधी बाबा से लगन लगउबै, हमार कोउ का करि हैं ।"

चरखे के प्रति प्रेम अधिकांश गीतों में व्यक्त हुआ है[2] --

"गांधी बाबा कै चरखवा हमैं भावथै,

भनन भनन भन्नाय चरखवा,

सरर सरर ताजा लहराय,

गुण्डिन कातों सूत सजनवा ।"

1-अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 विद्या बिन्दु सिंह, पृ0 387

2- वही,

पति परदेस जाने की तैयारी कर रहा है । नायिका उसके जाने का विरोध करती है कि तुम्हारे जाने से मेरा समय कैसे व्यतीत होगा ? नायिका की दयनीय दशा को सुनकर नायक काल यापन की युक्ति पेश करता है कि मैं तुम्हें रंग-बिरंगा चरखा और पीढ़ी ला दूंगा, अपनी सहेलियों के साथ चरखा कातने में अपना समय व्यतीत करना --

"चरखा ल्या दूयूं ए गोरी रंग रंगीला,

हां जी कोय पीढ़ी लाल गुलाब

साथणां में बैठ्ठी गोरी कातियो ।"

परन्तु नायिका को इससे संतोष कहां?

वह कह गई --

"चरखा तोडूं भंवर हो चौपटा

हां जी कोय पीढ़ी के करूं अठारह टूक

संग तै थारी चाल्लूंगी जी ।

वह युक्ति भी पेश करती है -

माखी बण बदन के चिपल्यूं

हांजी संग तै थारै चालूंगी जी

घर पर नहीं रहूँगी ।"

किन्तु इसके विपरीत राजस्थानी नारी ने बारह वर्षों तक अपने प्रियतम का इन्तजार चरखा कात कर किया । इस लम्बे समय के अंतराल में उसने चरखा कात कर अपनी सास, नणद और पति के लिए कपड़े बनाये हैं --

"बारा बरस मनै कातदी नै होग्या

नौ गज डोवटी बणाई

चरखला तैं मेरी नींद गवाई ।

सास्सु गी सोपली, नणद बाई को मोलियो

मारूडै गी टोपली बणाई हो राम ।"

हरियाणा में आज भी चरखा काता जाता है । हरियाणवी स्त्री अत्यन्त व्यस्तता के उपरान्त भी चरखा कातती है जो उसकी सक्रियता का प्रमाण है । चरखा कातती बहू को अचानक अपने पीहर की याद आती है । आंगन में बैठी वह चरखा कात रही है और मुंडेर पर कौवा बैठा है । वह कौवे को संदेशवाहक बनाकर भेजती है और उसे स्मृति चिन्ह देती है । कैसी स्वाभाविक उक्ति है[1] --

~~कैसी~~ " उड़ जा रे कागा, ले जा रे तागा,

जांदा तो जाइये मेरे बाप कै ।

मैं तो राह ना जाणूं बेबे गाम ना जाणूं,

कुण सी तो मेड़ी तेरे बाप की ।

नाम बता द्यूं, गाम बता द्यूं,

मैड़ी तो बता द्यूं मेरे बाप की ।

एक ऊँच्ची सी मैड़ी, लाल किवाड़ी,

वो घर कहिये मेरे बाप का ।

एक मेरे बाप कै च्यार धीयड़ थी,

चारूं तो ब्याही च्यारूं कूंट मैं ।

एक बागड़ मैं, दूजी खाद्दर मैं,

तीजी हरियाणा चौथी देस मैं ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 259

मेरै सिर पर खारी कागा । हाथ बुहारी

भुरट बुहारूँ मैं खड़ी-खड़ी ।

मैं सटसट मारूँ डसाडस रोवूँ

रोवूँ नाई का तेरै जीव नै ।

भौत दु:खी सूँ बागड़ देस मैं ।"

गीत मार्मिक है । इसमें कन्या के ससुराल के कष्टों का ब्यौरा है । पूर्व समय में नाई का कार्य कितना मह/त्वपूर्ण था, इसकी पुष्टि इस गीत द्वारा होती है ।

एक अन्य गीत में श्री कृष्ण जी राधा से कार्तिक मास में गंगा स्नान की तैयारी के लिए आग्रह कर रहे हैं । घर में वृद्धा सास है, उनको अकेला कैसे छोड़ा जाय । चरखे ने यह समस्या हल कर दी है । श्रीकृष्ण जी युक्ति पेश करते हैं कि ---

"हे राधा प्यारी । बुढ़िया नै चरखै बठाय,

बै ऐसे छोड़ो एकली जी राम ।"

चरखा भी गंगा सदृश पवित्र है । कृष्ण ने संभवत: इस उक्ति की पुष्टि की है ---

"मन चंगा तो कठौती में गंगा ।"

लोक-सुलभ स्वाभाविक उपाय है ।

अन्य गीत --

हरियाणा प्रदेश की भौगोलिक स्थिति को लोकगीतकार ने गीत में पिरोने का प्रयास किया है । नायिका पति से आग्रह करती है कि उसे ऐसा शाल चाहिए जिसे सारी दुनिया देखे । इस शाल में पूरे

साठ गांव हों, जिनमें से अधिकांश के नाम उसने बताये हैं । इतना ही नहीं, जिसके बीचोबीच नायिका के घर की स्थिति हो, जो अत्याधुनिक उपकरणों से भरा हो । इस चित्रकारी के अतिरिक्त उस शाल में हीरे मोती जड़े हों और चारों ओर जरीदार झालर लटकती हो । ऐसी विचित्र छपाई वाला शाल नायिका नायक से मंगवाने का आग्रह करती है । गीत प्रस्तुत है ---

"पति ओ इसा साल मंगा दे देखैगी दुनियां सारी ।
इस साल के बीच मैं गाम पूरे साठ हों ।
काप्पू सेड़ा ढूंढाहेड़ा मारोली की लाट हो ।
छावणी गुड़गांवा और रोहतक जिल्ला पास मैं
छोछी, गोछी, खरक-मदीणा, बीच मैं सिमचाणा हो,
रोहतक जिल्ला, मेरठ जिल्ला, दिल्ली सूबा सारा हो ।
सांपला, समाल, गिजी, गादरा अटाल हो,
रोहतक की मसीन सोनीपत की सायकल हो,
माजरा, पिलाणा बीच मैं सिवाणा हो ।
पति हो इसा-----------------------।
इस साल के बीच मैं बाग पूरे साठ हों,
केला नींबू नासपती बीच मैं अनार हो,
हीरे मोत्ती जड़े-जड़ाये कान्नी जालीदार हो,
सोन्ने का म्हां तार खिंचा दे, सुन्नै की झनकार हो ।
पिया हो ----------------------- ।
इ साल नै जब मैं ओढूं घर मैं राज मेरा हो,
चौगरदे नै बाग बगीचे बीच मैं घर मेरा हो,
कमरे के मैं टेलीफोन, तारकरण नै बाद्दी हो

इस घर मैं रहणै आला, खुद मेरा भरतार हो,

पति हो इसा बीज बखेरो, बौवैगी दुनिया सारी हो ।

पति हो इसा साल -------------- ।[2]

हरियाणा का किसान सन्तोषी है । कबीर ने भी सन्तोष-धन को सर्वोपरि बताया है --

"गो-धन, गजि-धन, बाजि-धन, और रतन-धन-खान ।

जब आवै सन्तोष-धन, सब धन धूरि समान ।।"

यही स्थिति किसान की है । वह अपनी तुलना श्रीकृष्ण भगवान् के धन-वैभव से करता है । वह गर्व करता है कि उसके पास वह सब कुछ है जो श्रीकृष्ण के पास है । जैसे श्रीकृष्ण की महलअटारी है तो उसके पास झोंपड़ी है । उनकी कामधेनु है तो किसान की काली भैंस है । उनके हाथी-घोड़े, भाला-बरछी, रतनागर सागर, गद्दे-तकियों और राधा रानी की तुलना वह क्रमशः अपने बैल, जेली गंडासा, ढाब भरे खेत, गूदड़ी और जाटणी से करके प्रसन्न होता है कि वह श्रीकृष्ण के समकक्ष है । गीत के बोल इस प्रकार हैं --

"बनवारी हो लाल । कोन्या थारै सहारै ।

ये मैहल अटारी थारै, थारी बराबरी हम करां ।

कोय टूटी टपरी म्हारै, गिरधारी हो लाल, कोन्या थारै सहारै ।

यो काम धेनु सै थारै, थारी बराबरी हम करां ।

कोय भैंस काटड़ी म्हारै, बनवारी ---------- ।

यो हात्थी घोड़े थारै, थारी बराबरी हम करां,

कोय बैल बाछड़ा म्हारै, बनवारी---------- ।

यो भाल्ला बरछी थारै, थारी बराबरी हम करां,

कोय जेली गंडास्सा म्हारै, बनवारी ------- ।

यो रतनागर सागर थारै, थारी बराबरी हम करां,

कोय ढाब भर्या सै म्हारै बनवारी ------ ।

यो तोस्क तकिया थारै, थारी बराबरी हम करां,

कोय पाट्टी गूदड़ी म्हारै, बनवारी -------- ।

यो राधा राणी थारै, थारी बराबरी हम करां,

कोय एक जाटणी म्हारै, बनवारी --------- ।"

बालकों के खेल के अनेक गीत हरियाणा में अन्य प्रदेशों के समान ही प्रचलित हैं । जैसे ---

"अक्कड़-बक्कड़ बम्बो बो,
अस्सी नब्बे पूरे सो
सो सलेटा तित्तर मोट्टा,
चल मदारी पैसा खोट्टा ।"

इसमें निरर्थक-सार्थक शब्दों की भावरहित तुकबन्दी हुई है । एक संवादात्मक गीत में एक बालक रेत में कुछ ढूंढता हुआ हाथ फेरता है । अन्य बालक उससे प्रश्न करते हैं --

"बुढ़िया री बुढ़िया के टोह्वै?
सूई टोह्वूं सूं ।
सूई का के करैगी ?
कोथला सीम्मूंगी ।
कोथले का के करैगी ?
रुप्पये घाल्लूंगी ।
रुप्पये का के करैगी ?
म्हैंस ल्यावूंगी।
म्हैंस का के करैगी ?
दूध पीऊंगी,

दूध पोंत्ती का मूत पी ले ।"

कहते हुए सब बालक भाग जाते हैं और वह पहला बालक उनका पीछा करता है ।

एक लघु गीत प्रस्तुत है जिसे गाकर दादी-नानी नन्हें बालकों को बहलाती हैं --

"बात कूं बतकोलै गी,
सिर मैं मारूँ कुतकै गी,
कुतको पड़्यो बजार मैं,
हरियो गयो जुवार मैं,
जुवार मैं इक कोड्डी पाई,
ब्या होयो बैसाख मैं,
बहू ल्यायो जेठ मैं ।"

बड़ों द्वारा ऊँचे स्थान पर बैठकर बालकों को पैरों पर बैठाकर झुलाते हुए निम्नलिखित अनमेल संबंधों का गीत गाया जाता है, जो बच्चों को अत्यन्त प्रिय है --

"गोर गड़ी भई गोर गड़ी,
बन्ना छोटा बहू बड़ी ।
गोर गढ़ी भई गोर गड़ी,
सास्सू छोट्टी बहू बड़ी ।
जितणै सास्सू पाणी ल्यावै,
उतणै बहू बिनोले खावै ।"

चार पंक्तियों का विनोदप्रिय गीत बच्चों के मनोरंजन का विषय है --

"बात कूं रे बांदरिया,
हुंकारा भर रे नानड़िया ।
बुढलती नै चोर ले ग्या,
भाज रे तूं पांगलिया ।"

इसी प्रकार एक अन्य गीत प्रस्तुत है --

"अटकण मटकण दही चटाकण,
आल्ला गिल्ला खिल पड़्या ।
टिंटोड़ी की लम्बी डोर,
बीजली की हूर झूर
किसनै पाया काला चोर?"

नन्हें बालकों को बहलाने के लिए उनके हाथ पर ताली मारते हुए गीत गाया जाता है --

"आटड़े बाटड़े कान के काटड़े,
भूरा झोट्टा देख्या हो तो बता दे ।"

बोलने वाला व्यक्ति अपने हाथों की दो अंगुलियों को पैरों की तरह बालक की भुजा पर चलाता है और ये गीत गाता है --

"गार गोर,
गा ब्याई
बाच्छा त्याई
नैणां तुड़ाई
पारी फड़ाई,
खोजां, खोजां, खोजां --
वा पाई ।"

गुदगुदाने पर बच्चा खिलखिला उठता है ।

बच्चे के रोने पर उसके मनोरंजनार्थ जो लघु गीत गाये जाते हैं, वे लोरी कहलाते हैं । इनमें बच्चे को निद्रामग्न करने की क्षमता होती है । हरियाणा की अति प्रसिद्ध लोरी प्रस्तुत है --

"लल्ला लल्ला लोरी दे
दूध भरी कटोरी दे,
लल्ला की माँ पाणी नै जा
लल्ला दूद मलाई खा
लल्ला रे ललवण्णिया रे, बारा गज की तण्णियाँ रे,
चंदा मामा आवैगा, दूद मलाई ल्यावैगा
लल्ला नै खुवावैगा ।"

एक अन्य लोरी द्रष्टव्य है --

"पायाँ में पैजणिया लल्ला छुमक छुमक डोल्लैगा,
हरी जरी की टोपली, बाजार सोंहीं डोल्लैगा ।
दादा कै के बोल्लैगा वो दाद्दी कै के बोल्लैगा,
पायाँ में पैजणिया लल्ला छुमक छुमक डोल्लैगा ।"

प्रस्तुत लोरी में बच्चे को कुत्तेका भय और "गुड़-खोपरे" का लालच देकर सुलाने का प्रयास किया गया है --

"दुर जाई रे कुत्ता, दुर जाई रे बिल्लिया,
बाण्णिये की हड्डी पाड़ खाई रे ।
बाण्णियो बुड्डो डोकरो,
मेरै बेट्टे ने ल्यावै गुड़ खोपरो ।"

'बेटे' के स्थान पर बालक का नाम ले लिया जाता है, जो अधिक प्रभावशाली होता है ।

इन लोरियों में ऐसे शब्दों का संयोजन किया गया है जिनकी ध्वनि बच्चे के ध्यान को आकर्षित करती है --

"झल्लड़, मल्लड़ दूद बिलोवै,
जाटणी का छोरा रोवै ।
रोवै सै तो रोवण दे,
मन्नै दूद बिलोवण दे ।।"

हरियाणा में प्राचीन काल में अनेक भीषण अकाल पड़े थे, जिनके उल्लेख विभिन्न लोकगीतों में मिलते हैं । इनमें नबिया, सत्तरा, चौंतीसा, छप्पनिया आदि के वर्णन आज भी लोगों को भयभीत कर देते हैं । 'सत्तरा' (1917) 'काल' का वर्णन निम्नलिखित लोकगीत में देखिये --

"पड़ते अकाल जुलाहे मरे, और बिच मैं मरे तेली,
उतरते अकाल बणिये मरे, रप्पये की रैगी थैल्ली ।
चणा चिरोंजी हो गया, अर गिहूं हो गे दाख,
सत्तरा बी ऐसा बड़ा चालीसा का बाप ।"[1]

अकाल से सबसे अधिक दुर्दशा किसान की होती है, जिसे इस गीत में व्यक्त किया गया है --

"जीगे बणिये मरगे बैल, जाट,
टूटगी गाड्डी मरगे बैल,
बे मुकलाया हो गी गैल ।"

चौंतीसा अकाल में स्थिति बद्तर थी । कृषक की कैसी दयनीय स्थिति हो गई थी, उसका लोमहर्षक चित्र दिया गया है --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 464

2- वही ।

"एक रोट्टी को बैल बिका, अर पैसा बिक गया ऊँट ।
चौंतीसा नै खो दिया, भैंस गाय का बंट ।
चौंतीसा ने चौंतीसा मारै, जिये वैश कसाई,
ओह मारै तकड़ी अर उसने छुरी चलाई ।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि बांगरू लोकगीतों में असंख्य ऐसी छोटी-मोटी घटनाओं, वस्तुओं, संबंधों, भावों का उल्लेख हुआ है, जो यहां के जनमानस के रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार और दैनिक क्रियाकलापों का निदर्शन करते हैं । ये गीत लोक की सक्रिय मेधा के परिचायक हैं ।

----

§6§ निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में उन बांगरू लोकगीतों की विवेचना प्रस्तुत की गई है, जिनका समावेश पिछले अध्यायों में जैसे संस्कार गीत, धार्मिक गीत व ऋतुगीतों के अन्तर्गत नहीं हो सका । जिस प्रकार वैविध्यतापूर्ण जीवन के अनन्त पहलू हैं, उसी प्रकार इन पहलुओं से जुड़े गीत भी गुणनातीत हैं । इन विविध गीतों के अन्तर्गत कृषि गीत, राजनैतिक प्रभाव के गीत, सैनिक-पत्नी विषयक गीत, पनघट, फैशन, हुचकी, चरखा, बालकों के गीत आदि का समावेश हुआ है ।

हरियाणा कृषि प्रधानप्रदेश है । अच्छी व उत्तम फसल के लिए यहां कृषक अपनी पत्नीके साथ वर्ष-भर से खेती के कठिन कार्य में संलग्न रहते हैं । स्वाभाविक है, कृषि का उल्लेख यहां के गीतों में अवश्य होगा । इन कृषि गीतों के विषय बुवाई, वर्षा, अनाज, बैल किसान की अवस्था आदि का चित्रण है ।

राजनैतिक संगठन से समाज सुव्यवस्थित रहता है । सामाजिक जीवन राजनैतिक हलचलों से असंपृक्त नहीं रहता, लोकगीत चूंकि समाज का दर्पण होते हैं, अतः वे भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहते । वैदिक युग से प्रवहमान लोकगीतों में हमारे सांस्कृतिक गौरव और राजनैतिक चेतना की झांकी सर्वत्र दिखाई पड़ती है । मध्यकालीन राजनैतिक जीवन के गीत आज भी लोककंठ में विराजमान हैं । इन राजनैतिक गीतों में स्वराज्य आन्दोलन, बापू की निर्मम हत्या, देशप्रेम, राष्ट्रीयता, भारत माता व तिरंगे झंडे के गीत मुख्य हैं । चुनाव अभियानों में लोकधुनों पर चुनाव गीत गाये जाते हैं । भूमि सुधार के अन्तर्गत 'चकबन्दी' भी इन गीतों का विषय रही है ।

हरियाणा वीर बांकुरों की धरती है । यहां का सैनिक देश रक्षा के हित में बलिदान देना अपना सौभाग्य समझता है । उसकी अर्द्धांगिनी भी इससे कम गौरवान्वित नहीं होती । वीरत्व का गुण यहां के वीरों को परम्परा से प्राप्त हुआ है । यहां के ज़ोगी व भाट वीरता परक 'साके' गाते हैं । 1857 के संग्राम में इन योद्धाओं का अतुलनीय योगदान रहा है, जिसमें राव राजा तुलाराम, नवाब झँझर के सेनापति प्रभाकर, महाराजा नाहरसिंह और राव सेनानी कृष्ण गोपाल का नाम उल्लेखनीय है । यहां की सैनिक-पत्नी को गर्व है कि उसका पति देश-सेवा में रत है । दूसरी ओर वह विरह-व्यथा से भी पीड़ित है । इसी मार्मिक विरह-व्यथा को गीतों में पिरोया गया है ।

पनघट-गीत अधिकतर श्रृंगारपरक होते हैं । शहरी फैशन का प्रचलन गांवों में जा पहुँचा जो वहां हास्य का विषय बन गया, जब उसे वृद्ध-वृद्धाओं ने अपनाया । युवा वर्ग इससे सर्वाधिक प्रभावित है । समाज में व्याप्त विभिन्न रूढ़ियों पर सुधारवादी लोगों के व्यंग्य गीत भी प्रचलित हैं । हरियाणा की भौगोलिक स्थिति को बांगरू लोकगीतोंमें स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है । बालकों के गीतों के अन्तर्गत उनके खेल गीतों और लोरियों का समावेश हुआ है । अन्त में पूर्व काल में हरियाणा में पड़े अति प्रसिद्ध व भीषण 'सत्तरा', 'चालीसा' और 'चौंतीसा' अकालों सम्बन्धी गीत विवेचित किये गये हैं ।

इस प्रकार बांगरू लोकगीतों में असंख्य ऐसी छोटी-मोटी घटनाओं, वस्तुओं, संबंधों, भावों को विषय बनाया गया है, जो यहां के जनमानस के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, रहन-सहन आदि का निदर्शन करते हैं । ये लोक मेधा के परिचायक हैं ।

----

chapter 7

सप्तम् अध्याय

"लोकगीतों में काव्यात्मकता"

लोकगीतों में काव्य अपनी सम्पूर्ण छटा के साथ दृष्टिगोचर होता है । गीतिकाव्य के प्राय: सभी प्रमुख तत्व इसमें मिलते हैं । काव्य के कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों ही अपने सम्पूर्ण रूप में इसमें मिलते हैं ।

किसी भी अनुभूति से हृत्तन्त्री के भाव झंकृत होकर गीतों के रूप में प्रस्फुटित होते हैं । ये गीत विषम परिस्थितियों में मनुष्य को आनन्द, सान्त्वना और प्रेरणा प्रदान करते हैं और उसके जीवन को व्यवस्थित करते हैं । इसीलिए मनुष्य इन गीतों के साथ तादात्म्य स्थापित करके उससे अपने मन को हल्का करता है । लोकमानस के मनोरंजन की यह दिशा अत्यन्त स्वस्थ व स्फूर्तिदायक है । जीवन के अभावों में रूदन के साथ भी हर्ष की शिक्षा लोक-साहित्य देता है । विभिन्न परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार विभिन्न रसों का आस्वादन हम इन गीतों के माध्यम से करते हैं । प्रस्तुत अध्याय में लोकगीतों में काव्यात्मकता की विद्यमानता पर विचार कर लेना समीचीन होगा ।

लोकगीतों में गीतिकाव्य के तत्व

विभिन्न विद्वानों के अनुसार गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ आत्मनिष्ठता, सूक्ष्मता, भावावेगों की तीव्रता, मार्मिक भावों की अभिव्यंजना, संगीतात्मकता, प्रतीकात्मकता, स्वाभाविकता, प्रकृति से तादात्म्य एवं कल्पना की प्रमुखता आदि हैं ।

1- आत्मनिष्ठता :-

लोकगीतकार अनौपचारिक रीति से अत्यन्त सहज रूप में अपने भावों को गीतों में ढाल देता है । हर्ष, शोक, क्रोध, घृणा आदि तीव्र मनोवेग जब लोकगीतकार के मानस से टकराते हैं, तब भावों की वेगवती धारा प्रवहमान हो जाती है और शब्दों का सम्बल पाकर फूट निकलती है । एक बांगरू लोकगीत में गृहस्थ नारी की स्वानुभूति अत्यन्त मार्मिक रूप में प्रकट हुई है । चर्खा कातती नारी कौवे को अपना संदेशवाहक बनाकर पीहर भेजती है । प्राचीन काल में यह कार्य कबूतरों द्वारा सम्पन्न होता था । मेघ व पवन ने भी दूत-कार्य किया था । महाकवि कालिदास ने मेघ को दूत बनाकर एक काव्य की रचना कर डाली । घर की मुंडेर पर बैठा कौवा 'कांव-कांव' कर जब किसी स्वजन-परिजन के आगमन की सूचना देता है, तो क्या वह सफल संदेशवाहक नहीं बन सकता ? गीत अत्यन्त मार्मिक है । कन्या अपने पिता के घर की स्थिति समझाकर उसे संदेश देने को कहती है कि मेरे पिता से कहना मुझे उन्होंने 'बागड़ देश' में क्यों ब्याह दिया, यहां मेरे सिर पर हमेशा बोझा रहता है, हाथ में झाड़ू और मैं रात-दिन भूरट (कांटेदार घास) बुहारती रहती हूँ और रोती रहती हूँ[1] ~~। अन्त में नाई का तत्कालीन लोक जीवन में कितना महत्त्व था, इसकी ओर संकेत किया गया है । यद्यपि आज यह महत्त्व कम हो गया है । गीत के बोल इस प्रकार हैं~~[1]

उड़ जा रे कागा, ले जा रे तागा,
जान्दा तो जाइये मेरै बाप कै ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 259

मैं तो राहे न जाणूँ, बेबे गाम ना जाणू,

कुण सी तो मैड़ी तेरे बाप की ।

नाम बताद्यूं, गाम बताद्यूं, मैड़ी तो बताद्यूं मेरे बाप की ।

एक ऊँची सी मैड़ी, लाल किवाड़ी, वो घर कहिये मेरे बाप का ।

एक मेरे बाप के च्यार धीयड़ थी, च्यारूँ तो ब्याई च्यारूँ कूंट मैं ।

एक बागड़ मैं, दूजी खादद मैं, तीजी हरियाणा चौथी देस मैं ।

मेरे सिर पर बोझा कागा । हाथ बुहारी, भूरट बुहारूँ मैं खड़ी-खड़ी ।

मैं सटसट मारूँ डसाडस रोवूं, रोवूं नाई का तेरे जीव नै ।

भोत दु:खी सूं बागड़ देस मैं ।"

अवध प्रदेश की नारी ईख गोड़ने, सींचने और पेरने में

व्यस्त पति का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सोलहों श्रृंगार करके उसके पास जाती है, लेकिन पति अपने कार्य में इतना व्यस्त है कि उसकी ओर एक दृष्टि भी नहीं डालता । अपनी उपेक्षा से नारी आहत होती है और कामना करती है कि भगवान् करे यह कोल्हू टूट जाय जिससे पति की एकाग्रता भंग हो और वह उसे देखे[1] --

"सोलहों सिंगार कैके गयों कोल्हुवरियां,

घुमरि नहिं चितवै रे मोरी ओरियां,

सोलहों सिंगार कैके गयों कोल्हुवरियां,

पलकिन न भाजै रे मोरी ओरियां ।

कोल्हू तोरा टूटै, कातरि तोरी फाटै,

खूबै रस बहै रे पौदरियां ।"

1- अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 विद्याबिन्दु सिंह, पृ0 51।

यही भाव गोपियों का कृष्ण की वंशी के लिए था । अत: प्रिय मिलन में बाधक इन यन्त्रों का टूट जाना ही रूचिकर प्रतीत होता है । एक अन्य नायिका को घर जलने का लेशमात्र भी दु:ख नहीं है क्योंकि आग बुझाने के लिए प्रिय के हाथों में पानी के घड़े भर-भर कर देने से उसे स्पर्श-सुख प्राप्त हुआ है --

"आगि लागि घर जरिगा बड़ सुख कीन ।
पिय के हाथ घइलवा भरि-भरि दीन ।।"

2- सूक्ष्मता :- लोकगीत यद्यपि लघु कलेवर के होते हैं लेकिन फिर भी उनमें तीव्र मनोवेग अभिव्यक्ति पा जाते हैं । कुछ गीत अपनी प्रबन्धात्मक अन्विति के साथ अपेक्षाकृत लम्बे भी हैं, किन्तु इनमें कुछ पंक्तियों में ही बहुत कुछ कह देने वाले गीत अधिक मिलते हैं । कभी-कभी लोककवि जीवन की अभिव्यंजना केवल दो पंक्तियों में कर देता है --

"उजला भोजन, गाय धन, घरां कलवंती नार ।
चौथे पीठ तुरंग की, बहिश्त निशानी च्यार ।।"

इन दो पंक्तियों में ही लोककवि ने भूस्वर्ग की व्याख्या कर दी । कृषक उजले भोजन, गोधन, गुणवती पत्नी एवं अश्वारोहण के सुख को स्वर्ग-तुल्य मानता है ।

लोककवि में बिहारी के समान गागर में सागर भरने की क्षमता है। बेटी की विदाई की समस्त करूणा को लोककवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में समेट दिया है --

"तन्नै बाबल कौण कहवै बाबल तेरी धीय बिना ।
आंसू तो भर आये नैण क लाड्डो बेट्टी जाय घरां ।।"

3- भावावेग की तीव्रता :-

लोकगीतों में भावावेग की तीव्रता हृदय को अभिभूत कर देती है । प्रकृति में अपने हृदय के भावों को आरोपित करना गीतकार की विशेषता है । प्रकृति के दर्शन से कहीं हृदय उल्लसित होता है तो कहीं विरह-विदग्ध हृदय में एक टीस उत्पन्न होती है । लोककवि सुन्दरता का पुजारी है । तीव्र मनोवेगों की सम्प्रेषणीयता लोकगीतों की मुख्य विशेषता है । पति के रहने पर जो ससुराल स्वर्ग सम प्रतीत होता था, वह पति के चले जाने पर घोर निराशा का स्थान बन जाता है । पहले जिस कोयल की 'पी-पी' ध्वनि उसे कर्ण-प्रिय लगती थी, वही अब पति की अनुपस्थिति में कर्ण-कटु लगती है । नायिका प्रकृति में अपने भावों को आरोपित करती है । तभी तो वह कहती है --

"मेरे पिया गये परदेश कोयलिया क्यूं बोल्लै सै ।
यो सै मेरे पिया जी का नाम कोयलिया क्यूं बोल्लै सै ।
तूं तै काली बणी भगवान् काम्मण उनकी गोरी सै ।
मेरे मन मैं उठै सै हिलोर तू बेकल हो री सै ।
तू तो काले बाद्दल की गैल उड़ ज्या री अम्बर मैं ।
बेबे, हम बिरहण की रात कटै सै पीहर नैं ।"[1]

अन्तिम पंक्ति में विरहिन ने मानो हृदय निकालकर रख दिया हो । उसके लिए पीहर व ससुराल में कोई अन्तर नहीं है ।

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा रामशास्त्री, पृ० 66-67

4- मार्मिक भावों की अभिव्यंजना :-

मार्मिक भावों की अभिव्यंजना का सशक्त उदाहरण लोकगीतों में मिलता है । नायिका की उदासीनता का कारण न तो पति का परदेस गमन है और न उसकी सास-ननद बुरी है, किन्तु वह अपने कोख के दुःख से दुःखी है[1] --

"कै दुःख री तन्नै सास नणद का, के तेरे पिया परदेस,
ना दुःख री मन्नै सास नणद का, ना मेरे पिया परदेस।
इक दुःख री मन्नै कोरव का, कोय या मेरे मारे सै मान ।
तेरी री बाह्ण कै सात पुत्तर सैं, कोय एक उधारा जे लेय,
सुन्ने र चांद्दी मिले सैं उधारे, कोय लाल उधारे ना देय ।
मेरे पिछोकड़ै खात्ती का बसै सै, कोय ल्यावूं री छूरी छड़वाय,
चीरूं ए या कोख नै, या कोय मेरे मारे सैं मान ।
खाल कढ़ाय कै भुस भरूं, कोय भुस मैं दिवा द्यूंगी आग ।

जिस कोख ने उसके मान को मारा है, उस पर उसे खेद है । उसका बस चले तो वह छुरी बनवा कर लाये और उस जली कोख को चीर कर उसमें भूस भर दे और आग दिखा दे । वन्ध्या के भावों की मार्मिक अभिव्यंजना इस गीत में हुई है ।

लोकगीतकार जो अनुभव करता है उसे बिना किसी कृत्रिमता के सहज वाणी में अभिव्यक्त कर देता है । एक विरहगीत में नायिका की विरहगत भावनाओं का अत्यन्त सहज वर्णन हुआ है कि विरहिणी के पति का पत्र आया है, जो उसकी स्मृति का एकमात्र सहारा है । पत्र को पढ़कर उसके घाव पुनः हरे हो

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 66-67

जाते हैं । बरबस आंसू उसके गालों पर लुढ़क पड़ते हैं । उसकी व्याकुलता का वर्णन इस प्रकार हुआ है --

"बांचत बांचत हुई हाल बेहाल,
आंख्यां तै आंसू ढारती ।
हाय री अभागण नार,
पिया बिन दिन एकली काटती ।"[1]

अन्तिम पंक्ति का आंसुओं के साथ हृदय से निकला यह भाव किस सहृदय के हृदय को उद्वेलित न कर देगा ?

कन्नौजी नारी भी पति के जाने पर व्याकुल है । वियोग दु:ख से दु:खी होकर वह अपने आंसुओं को रोकने में असमर्थ हो जाती है और घूंघट के अन्दर ही उसके आंसू लुढ़क पड़ते हैं[2] --

"कउन बदरिया उनई रसिया,
कउन बरसि गये मेंह ।
घूंघट बदरिया उनई रसिया,
गालन बरसि गये मेंह ।"

दु:ख की अनुभूति की तरह सुख की अनुभूति भी लोकगीतों में सहज व्यक्त हुई है । बालक के जन्म की सूचना से परिवार का प्रत्येक सदस्य आनन्द विभोर हो उठता है । इसी आनन्द में अभिलाषा का भी स्थान है[3] --

---

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 67
2- कन्नौजी लोक साहित्य,--डॉ0 सन्त राम अनिल, पृ0 115
3- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकर लाल यादव, पृ0 138

"वा घड़ी सुब दिन जाणूगी
मेरा री होलड़्या अपणा दादा कै घर जावैगा,
दादा कैं घर जावैगा री दादी हंस-हंस लाड लडावैगी ।।"

5- संगीतात्मकता-लय की उत्पत्ति गति और यति के आपसी संघर्षण से होती है । यति में जहां स्थिरता व काल सापेक्षता है, वहीं लय तात्विक दृष्टि से आवृत्ति-मूलक और काल सापेक्ष होती है । चेतना के क्षेत्र में लय तत्व व्यापक होता है । शब्द व अर्थ से युक्त गीत का लय तत्व से जन्मजात सम्बन्ध होता है । गीत मानव के भावाकुल संवेदना से युक्त और आवेग से परिपूर्ण विशिष्ट क्षणों में अंकुरित होता है और फिर उसका विकास प्रवाह के रूप में होता है । लय तत्व मनुष्य के हृदय की गहराई तथा भाव-संवेगों की गतिशीलता से लोकगीत कोग्राह्य बनाता है । लोकगीत शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियों की भांति आरोह-अवरोह आदि नियमों से आबद्ध नहीं है । वह सहज और प्रकृत रूप से जीवन क्रम में उत्पन्न धुनों की योजना से युक्त है । मानव की आदिम प्रवृत्तियों का स्फुरण लोकगीतों में अत्यन्त नैसर्गिक व लयबद्ध रूप में हुआ है । धुनों में अर्थ की प्रधानता होने के कारण अतिरिक्त शब्दों को जोड़ने का लोकगीतकार अथवा गायक को पूर्ण अवकाश रहता है । वे स्वेच्छा से लोकगीतों में निरर्थक शब्दों की योजना कर लेते हैं, जैसे संस्कार विषयक गीतों में परिवार के व्यक्तियों (सम्बन्धियों) के नाम गाते समय जोड़ लिये जाते हैं ।

लय लोकगीतों का आधार है, इनकी आत्मा है । लयात्मकता के लिए गीतों की पंक्तियों को बार-बार दोहराया जाता है । इस पुनरावृति का

संयोजन इस प्रकार से किया जाता है कि इससे गीत के माधुर्य में उत्कर्ष आ जाये । कहीं-कहीं पूरी पंक्ति दोहराई जाती है तो कहीं आधी । लोकगीतों का वास्तविक आनन्द समवेत स्वर से लयपूर्ण गाने में है । लयानुरूप बनाने के लिए स्त्रियां गीतों के शब्दों को तोड़-मरोड़ देती हैं, ह्रस्व मात्रा को दीर्घ व दीर्घ को ह्रस्व कर देती हैं । लयबद्धता के लिए बांगरू लोकगीतों में जोड़े जाने वाले शब्द अजी, हांजी, एजी, म्हारे राम आदि हैं । इनका प्रयोग पंक्ति के आदि, मध्य व अन्त में किया जाता है । लय द्वारा गीत शीघ्र कण्ठस्थ होते हैं ।

लय वे स्वर लहरियां हैं जो भावावेश की तीव्रता के अनुसार ही सान्द्रता व विस्तार ग्रहण करती हैं । कुछ गीत तार स्वर में व कुछ मन्द स्वर में गाये जाते हैं । बिरहा, आल्हा आदि तार स्वर में गाये जाते हैं । लोकगाथाएं इसी के अन्तर्गत आती हैं । स्त्रियों द्वारा गेय गीत मन्द स्वर में गाये जाते हैं, यद्यपि सामूहिक रूप से गाये जाने के कारण कभी-कभी ये तार-स्वरता को स्पर्श करने लगते हैं ।

गेयतत्व लोकगीतों का प्राण है । घर में प्राय: जितने भी संस्कार विषयक लोकगीत गाये जाते हैं, वे वाद्य-रहित व वाद्य-सहित-दोनों प्रकार के होते हैं । काम करते समय व झूला-झूलते समय पेंगों के उतार-चढ़ाव के साथ जो गीत गाये जाते हैं, जैसे सावन के गीत, वे भी वाद्य रहित होते हैं । ओखली-मूसल में धान कूटते समय उसकी ध्वनि से तालमेल बिठाती हुई नारियों के गीत मन को मोह लेते हैं ।

6- प्रतीकात्मकता :-

लोकगीतों में गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व प्रतीकात्मकता के भी दर्शन होते हैं । प्रतीक परम्परा की प्रवृत्ति वैदिक काल से चली आ रही है । मनुस्मृति में नारी को बीज वपन के योग्य भूमि एवं पुरुष को बीज कहा

गया है -- क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूत: स्मृत: पुमान् । प्रतीक योजना से साहित्यिक सौष्ठव बढ़ता है । जिन भावों को स्पष्टत: प्रकट करने में संकोच होता है, उन्हें प्रतीक के माध्यम से सरलतापूर्वक अभिव्यक्त कर दिया जाता है । "इन प्रतीकों के द्वारा भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ ही अनुभूतियों की तीव्रता एवं गहराई का वर्णन समास शैली में पूर्ण होने के कारण लोकजीवन की अभिव्यक्ति को कलात्मक बना देता है ।"[1]

एक सावन के गीत में कन्या अपनी ससुराल के परिजनों का वर्णन प्रतीकों के माध्यम से करती है, जिससे वर्णन अत्यन्त सजीव बन पड़ा है । सास मानो चूल्हे की आग है और नणद भादों की कड़कती बिजली । ससुर काला सांप व देवर सपलोटिया है, जेठ बिच्छु के डंक की तरह है और पति मेंहदी का पेड़, जो कभी रचता है और कभी नहीं । गीत में प्रतीकों के माध्यम से ससुराल की कष्टकर स्थिति को स्पष्ट किया गया है । वधू इन सब कष्टों को झेल सकती है, यदि उसका पति साथ देने वाला हो । लेकिन यहां तो वह भी उपयुक्त पात्र नहीं है । गीत के बोल इस प्रकार हैं[2] --

"सासू तो बीरा चूल्हे की आग,
नणद भादों की बीजली ।
सौरा तो बीरा काला-सा नाग,
देवर सांप संपोल्या ।

1- मालवी लोकगीत- डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय, पृ0 324

2- हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 216

जेठा तो रै बीरा बिच्छू का डंक,

उपले पाथण डस जाय जी ।

राज्जा तो रै बीरा मैंदी का पेड़,

कदे रचै कदी ना रचै ।"

एक विवाहगीत में प्रतीक द्वारा अल्पवयस्का वधू ने युवकवर से प्रार्थना की है और चेतावनी भी दी है -

"हरियाला बन्ना । काच्ची कली मत तोड़िये,

माली को देगी गालियां ।

राजजादा बन्ना । पाक्कण दे रस होण दे,

तेरे नाई नवा धूंगी डालियां ।"

इसी भाव साम्य का बिहारी का अत्यन्त प्रसिद्ध दोहा द्रष्टव्य है --

"नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ।

अली कली हीं सौं बिन्ध्यौ, आगै कौन हवाल ?"

एक विरहिणी नायिका लौंग की लकड़ी में घुन लगने की बात को[2] मार्मिक ढंग से कहकर समय के अन्तराल को प्रदर्शित करती है --

"जीजा लौंगा की लकड़ी नै घुण खाग्या,"

इसी भाव साम्य का गीत अवध प्रदेश में प्रचलित है जिसमें चरखे में घुन लगने व तेल सिंदूर के समाप्त[3] होने के प्रतीक द्वारा नायिका के लम्बे विरह का निरूपण किया गया है --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डाॅ० शंकरलाल यादव, पृ० 188

2- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 37

3- अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डाॅ० विद्या बिन्दु सिंह, पृ० 516

"चूंकि गये कुपवन तेल हरपवन सेन्दुर,
घुनि गये चनन चरखवा, ढहई गज ओबरि ।
चुकै लागी हमरी उमिरिया, अबहुं नाहीं लौटेनि ।"

घुन लगने के पश्चात् वस्तु विनाश की ओर अग्रसर होती है । यहां भी उमर के चुकने का संकेत है । इस प्रकार के अनेक प्रसंगों से लोकसाहित्य भरा पड़ा है ।

7- स्वाभाविकता :-

स्वाभाविकता लोकगीतों का प्राण है । स्वाभाविक भावों की सहज सरल अभिव्यक्ति लोकगीत है । गीत की पंक्तियां मन को छू जाती हैं । एक विदा गीत में कन्या को अपने परिवारजनों से बड़ा मोह हो गया है । वह भोली है और उसमें अभी गंभीरता नहीं है । विदाई के अवसर पर उसे स्थिति की गंभीरता का अहसास होता है । वह अनेक प्रकार से उपयोगिता की बात कहती है, किन्तु पिता जिसे वस्तुस्थिति ज्ञात है, उसकी प्रत्येक बात का सटीक उत्तर देता है । कन्या चिड़िया के सदृश है, उसका घर छिन रहा है, उसके मौलिक अधिकारों का आज कोई महत्त्व नहीं है, घर के सदस्यों को आज उसकी सेवाओं की अपेक्षा नहीं है । वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है--[1]

"तुल्सियां का बंगला हो बाबल, चिड़िये खोस गिर्या
मेरा गाड्डा अटक्या हो बाबल तेरा मैह्ल तलै,
दो ईंट कढ़ा द्यां हे धीयड़ घर जा आपणे,
मेरा डोला अटक्या हो बाबल तेरै बाग्गां मैं,

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 194

दो पेड़ कटा द्यां ए लाडो धीयड़ जा घर आपणे,
तेरा पनघट सून्ना हो बाबल तेरी धीय बिना,
म्हारी बहुअड़ भरैंगी पाणी हे धीयड़ जा घर आपणे,
तेरा गोब्बर सूक्कै हो बाबल तेरा ठाणां मैं,
म्हारै वूर्हैंड़ी भतेरी हे धीयड़ । घर जा आपणे ।
मैं तो गुड़िया भूली हो बाबल तेरा आला मैं,
म्हारी पोत्ती खेलैं ए धीयड़ । जा घर आपणे ।"

इस गीत में बालिका का भोलापन झलकता है । गुड़िया का उल्लेख करके उसने संकेत करना चाहा है कि मेरी अभी गुड़िया खेलने की उम्र थी, तुमने मुझे पराये घर भेज दिया । गुड़िया से उसका ममत्व भी व्यक्त है, जो उसकी प्राणवान् सहेली बन गयी थी ।

लोकगीत चाहे किसी भी बोली के हों, उनमें स्वाभाविक भावों की अभिव्यक्ति समान रूप से होती है । अवध प्रदेश की बाला ने भी इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति विदाई के समय की है --

"अरे अरे अहिरा बेटउवा, तूं बिरना हमार
जाइ कह्यो मोरी मैय्या के अगवां मोरा सनेह
राम रसोइयां मैं भूल्यों गुड्डइया,
सिरिजें पेटरिया के बीच ।।"

दैनिक जीवन में हम जो कुछ अनुभव करते हैं, उन्हीं का यथातथ्य वर्णन लोकगीतों में प्राप्त होता है । 'हिचकी' जीवन की अति साधारण सी घटना है । इसके कई कारण होते हैं । किसी की याद आने पर हिचकी आती

1- अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 विद्याबिन्दु सिंह, पृ0 519

है, कभी कभी अजीर्ण भी इसका कारण होता है । लोककवि ने इन भावों को स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है --

"यो हुचकी क्यूं आवै सै राम यो हुचकी ।
कै यो कबजी की हुचकी सै जो सारी हाण सतावै सै
कबज कड़ै पर उसनै जो रोट्टी बी नईं खावै सै,

--- --- ---

बिछड़े सात्थी की हो ना कदे यादकरण की हुचकी ।।"

8- प्रकृति से तादात्म्य :- लोकगीतों का सीधा संबंध प्रकृति से है । इनमें प्रकृति के प्रांगण में जीने वाले सरल हृदयों के जीवन की सरस अभिव्यक्ति हुई है। लोकसाहित्य की रचना सायास नहीं होती, अपितु वह बादल के समान स्वत: बरस पड़ता है और जंगली घास के सदृश फैल जाता है । प्रकृति से उसका सीधा संबंध है । प्रकृति मानव के दु:ख में दु:खी और सुख में सुखी होती है । प्रकृति के सान्निध्य में अनेकानेक गीतों की सृष्टि होती है । सावन के आते ही चम्पा बाग में झूले डाल दिये जाते हैं --

"आया री सासड़ साम्मण मास,
ईंढ़ा गढ़ा धो जी चम्पा बाग मैं ।"

वर्षा की रिमझिम के साथ ही कन्या अपने भाई का इन्तजार करने लगती है, जो उसे पीहर लिवाने आने वाला था --

"री रिमझिम रिमझिम अम्मां मेहा री बरसै,
मेहा री बरसै, बादलड़ी झड़ लाइयां ।
री तूं तो कहै थी री अम्मां बीरा री भेज्जूं,
बीरा री भेज्जूं, कंहीं ए ना आया माई जाया
पाहूवणा ।"

एक अन्य गीत में विदा होती हुई पुत्री व जमाई के शुभ गमन पर प्रकृति से शुभ शकुनों की मांग की गई है । तीतर व कोयल से शकुन भरे गीतों की मांग है, सूरज से धूप कम करने व बादलों से झीनी वर्षा की याचना है । वायु से कहा गया है कि वह मन्द गति से चले और टीलों से ऊँचाई कम करने को कहा गया है, जिसमें कि जमाई की पंचरंगी पगड़ी दूर तक दिखाई देती रहे । यह एक मांगलिक गीत है --

"तीतर रे तूं वामै दाहिणे बोल, चढ़ते जमाई का सूण मनाइये,
जी मैं का राज ।
कोयल हे तूं बागां मैं जा बोल,
चढ़ते जमाई नै सबद सुणाइये, जी मैं का राज ।
सूरज रे तूं बाद्दल मैं बड़ ज्या,
चढ़ते जमाई नै लागै धाम जी मैं का राज ।
बाद्दल रे तूं झीणा-झीणा बरस,
चढ़ती लाड्डो की भीज्जै नौरंग चूंदड़ी जी मैं का राज ।
आंधी हे तूं झीणी-झीणी चाल,
चढ़ते जमाई का गरद भरे कपड़े जी मैं का राज ।
टीबी हे तूं ऊँची-नीची हो,
चढ़ते जमाई की दीक्खै पंचरंगी पाग जी मैं का राज ।

लोकगीत की आत्मा का प्रकृति के साथ अनुपम तादात्म्य अनेक स्थलों पर हुआ है । पंचम अध्याय में "ऋतु गीतों" के अन्तर्गत इनकी विशद् व्याख्या प्रस्तुत की जा चुकी है ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 195

9- कल्पना तत्व की प्रमुखता :-

कल्पना किसी भी साहित्य विधा का प्राण होती है । लोक-गीतकार भी इसके प्रभाव व प्रयोग से अछूता नहीं है । उसकी कल्पना जीवन से सम्बन्धित व अनुप्रेरित होती है । एक गीत में वन्ध्या स्त्री कल्पना करती है कि वह अपनी बहन का विवाह अपने पति से करवा देगी और उसके पुत्र से वह सपूती हो सकेगी [1] +-

"पिया एक कहूंया मेरा मान, दूजा ब्या करवा ले हो

-- -- --

पिया जाइये हो म्हारे गाम, बाहण मेरी मां की जाई हो ।

-- -- --

बहन बहू बनकर उसके घर आती है । उसकी अगवानी करने वह मोती का थाल लेकर जाती है, लेकिन नववधू उसके कल्पना लोक को छिन्न-भिन्न करके यथार्थ की कटुता की ओर उसका ध्यान आकर्षित कर देती है और अपशकुन की आशंका से मुंह फेर लेती है --

"जीजी ईंघे नै मुखड़ा मोड़, बाहण मेरी मां की जाई हो ।

बेब्बे परै नै मुखड़ा मोड़, थम तै बांझ लुगाई हो ।"

अन्य गीत में गर्भवती स्त्री ननद के साथ बैठी कल्पना कर रही है कि उसके पुत्र हुआ है । वह ननद को "टिकावल हार" और "हीराबन्द चूंदड़ी" देने की भी बात करती है [2] --

---

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 13

2- वही ।

"पड़छाइया की छांह नणद-भावज दोन्नूं बतलावै,

हीराबन्द चूंदड़ी जी ।

जे म्हारी नणदी पूत जणागै, वांगै टिकावल हार,

हीराबन्द चूंदड़ी जी ।"

अवध प्रदेश की गर्भवती नारी कल्पना लोक में बहुत आगे तक विचरती चली गई है । वह कल्पना करती है कि पुत्र के जन्म लेने, घुटरून चलने, तिलक चढ़ने और विवाह के उपरान्त बहू आने तक की । और भी आगे जाकर वधू के साथ कलह होने पर दो चार घरों में उसकी शिकायत करने के सुख की कल्पना भी वह कर लेती है। उसने विधाता से पूछा है कि ऐसा दिन कब आएगा ?[1]

"जो हो विधाता मोरे लालन होइहैं, बैठी मैं पटना लुटैवों,

विधाता ऐसा दिन कब अइहैं" ?

जो मोरे लाल गोड़े-गोड़े चलिहैं, पांव पैजनिया पहिरिहैं,

विधाता ऐसा दिन कब अइहैं ?

जो मोरे लाल के तिलक चढ़िहैं, रूपवन घर भरि जैहैं,

विधाता ऐसा दिन कब अइहैं ?

जो मोरे बालम कै बहुआ अइहैं, घर आंगन भरि जैहैं,

विधाता ऐसा दिन कब अइहैं ?

जो मोरी बहुआ झगरा करिहैं, दुई चार घरे कहि अउबै,

विधाता ऐसा दिन कब अइहैं ?

1- अवधी लोकगीत, समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, पृ० 520

" रस विवेचना "

xxxxxxxxxx

काव्य को पढ़ने-सुनने अथवा नाटक को देखने से जो अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होता है, वह **रस** कहलाता है । लोकगीतों में भावों से रस की धारा उत्पन्न होती है । भाव ही लोकगीतों का आधार है । इन भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति लोकगीतों में होती है । इनमें कहीं मिलन के गीत गूंजते हैं तो कहीं बिछोह की अनन्त पीड़ा अभिव्यक्ति पाती है, कहीं जन्म का उल्लासजनक उत्साह है तो कहीं मृत्यु की विषाद रेखा अंकित है । पारिवारिक सम्बन्धों का प्रेम, सहानुभूति, त्याग, अनुशासन, संशय, ईर्ष्या, द्वेष आदि सभी इनमें वर्णित होते हैं । भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित नौ रसों का समावेश लोकगीतों में मिलता है । रस का आधार भाव दो प्रकार के होते हैं -- संचारी भाव और स्थायी भाव । सन्चारी भाव रस की पुष्टि के लिए अल्प समय तक ही आते हैं । जबकि स्थायी भावों की अवस्थिति निरन्तर रहती है । इन स्थायी भावों को विभाव उद्दीप्त करके रस की अवस्था तक पहुँचाते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि -- "सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित रस आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त करते हैं ।"

-- -- --

~~सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं ।"[2]~~

1- रस मीमांसा, आ0 रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 414

~~2- वही~~ ।

आचार्यों ने रस को जिस परिभाषा में बांधा है, इसमें लोकगीत भले ही फिट न बैठते हों, लेकिन रसानुभूति लोकगीतों का प्राण तत्व है । रस के स्थायी भाव, संचारी भाव, विभाव, अनुभाव, आलम्बन, उद्दीपन आदि हो सकता है, लोकगीतों में पूर्णरूप से न मिलते हों, क्योंकि लोकगीतकार सप्रयास रस का परिपाक कराने के लिए प्रतिबद्ध नहीं होता । इस विषय में डॉ० गोविन्द चातक का मत उद्धृत है -- "विभावानुभाव संचारी संयोगाद् रस निष्पत्ति:[1] के आधार पर लोककाव्य में रस की खोज करना उचित नहीं होगा। हमारी दृष्टि में लोककाव्य में अनुभाव, विभाव, संचारी भाव सभी की उपस्थिति की आशा करना एक दुराशा मात्र होगी, फिर भी उसमें ऐसी पंक्तियां भी रसपूर्ण हो सकती हैं, जिनमें रस के इन अवयवों का शास्त्रीय संयोजन न हो ।"[2]

लोकगीतों में रस का परिपाक ही मुख्य होता है । डॉ०कृष्णदेव उपाध्याय ने कहा है कि इन लोकगीतों में रस की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवहमान् होती रहती है । ये गीत क्या हैं, रस के फव्वारे हैं, जिनका स्रोत कभी सूखता ही नहीं ।"[3]

रस के अस्तित्व को सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है । डॉ० सरोजनी रोहतगी की दृष्टि में रस की धारा कहीं शान्त और मन्थर गति से चलती है, तो कहीं उसमें उबाल है, उफान है और रूझान है ।[4]

1- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि - 6/32

2- गढ़वाली लोकगीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० गोविन्द चातक, पृ० 326

3- भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 328

4- अवधी का लोक साहित्य, डॉ० सरोजनी रोहतगी, पृ० 440

भले ही लोकगीत काव्यशास्त्र की कसौटी पर सर्वांगीण रूप से खरे न उतरते हों, किन्तु उनके गायन व श्रवण से रस की वेगवती धारा सर्वत्र प्रवहमान हो उठती है । भावों का सहज उन्मेष लोकगीत की स्वर लहरियों में अपनी स्वाभाविक गति से स्पन्दित होता है । मानव मन की विभिन्न स्थितियों का निरूपण इनमें अत्यन्त कुशलता से होता है । इन गीतों में अनेक भावनायें कभी कभी एक ही छन्द में वर्णित होती हैं । रस परिपाक की सैद्धान्तिक परिपाटी का पालन बहुत कम हुआ है । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ये गीत भावों का निरूपण करने में अक्षम होते हैं, लेकिन प्रधान भाव के साथ अनेक गौण भावों का समावेश इन गीतों में स्वाभाविक रूप से होता रहता है । डॉ० नगेन्द्र का मत इस विषय में उद्धृत है -- "रस केवल परिपाक अवस्था का ही नहीं है, यह कहीं नहीं कहा गया है कि रसवत्ता के लिए सर्वत्र रस का पूरा परिकर ही प्रस्तुत रहना चाहिए । व्याभिचारी भाव के नहीं केवल अनुभाव के चित्रण से भी रस की सिद्धि हो जाती है, जो अवयव वर्णित नहीं है, उनका आक्षेप हो जाता है ।"[1]

बांगरू लोकगीतों में न्यूनाधिक सभी रसों का परिपाक मिलता है, किन्तु श्रृंगार और करूण रस की अधिकता है ।

"बांगरू लोकगीतों में श्रृंगार रस की विवृत्ति"

'रति' स्थायी भाव से अभिव्यंजित होने वाला रस श्रृंगार है । इसे रसराज की संज्ञा से अभिहित किया गया है । बांगरू लोकगीतों में श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का निरूपण हुआ है ।

1- रस सिद्धान्त, डॉ० नगेन्द्र, पृ० 356

श्रृंगार रस नायक व नायिका पर आधारित है । इसके आश्रय आलम्बन नायक व नायिका हैं । बांगरू लोकगीतों में स्थिति के अनुसार अनेक प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख हुआ है जिनका वर्णन करना यहां समीचीन प्रतीत होगा ।

1- स्वकीया :-

अपने पति में ही रति रखने वाली नायिका को स्वकीया कहते हैं । लोकगीतों में इसका वर्णन सर्वाधिक हुआ है । परकीया प्रेम को आलोचनात्मक माना गया है । नायिका अपना सर्वस्व एवं अस्तित्व नायक के सुख-सौविध्य के लिए अर्पण करने को उद्यत है[1]--

"लोटा झारी मैं बणूं हो जे,
हां जी कोय बण ज्यां रेसम डोर,
तिस लगे हो जब पिया पी लियो जी ।
लाड्डू जलेबी भंवर हो मैं बणूं जे,
हां जी कोय बण ज्यां कूट सुहाल,
भूख लगे हो पिया ज्यब खा लियो जी ।"

राजकुमार के प्रलोभनों की उपेक्षा करते हुए अवधप्रदेश की कोहरिन अपने दाम्पत्य सुख का वर्णन करती है[2] --

"आपण कोइरी सोवौं सेजरिया,
हँसि बोलि करौं भिनुसखा रे ना ।"

स्वकीया नायिका तीन प्रकार की होती है --
मुग्धा, मध्या व प्रगल्भा ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 220
2- अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 विधाबिन्दु सिंह, पृ0 525

1- मुग्धा :- मुग्धा नायिका के भी ज्ञात-यौवना और अज्ञातयौवना, दो भेद होते हैं ।

(क) ज्ञात यौवना :- ज्ञात यौवना अपने यौवनागमन से परिचित होती है । वह अपने रूप-यौवन के प्रति सजग रहती है । एक 'लाडो' गीत में ज्ञात यौवना का चित्र उभर आया है । पुत्री पिता से अपनी मनोदशा का वर्णन करती है । नायिका बाग में नींबू तोड़ने गई है । वहां के शान्त-एकान्त वातावरण में उसकी मनस्कामना जागृत होती है । उसकी सखियां ससुराल में हैं, अतः लज्जावरण में दबी-ढकी वह अपने पिता से कह उठती है --

"बिर बाबल हो तन्नै के कहूं
मन्नै कहती नै आवै ल्हाज, निबुआ तोड़न मैं गई ।
म्हारा जोड़ा की साथ रै
कोय हमनै दे परणाय, निबुआ तोड़न मैं गई ।"

-- -- --

"बाबल या जोबन दिन च्यार का,
बाबल बाजीगर का खेल, निबुआ तोड़ने मैं गई ।"

पिता उसे धीरज रखने की शिक्षा देते हैं --

"बेट्टी धीरी रै मेरी धीयड़ी,
धीरां सब कुछ होय ।"

लेकिन नायिका पिता की शिक्षा की असारता प्रकट करती है। उसे अपने अनायास उभरते यौवन की चिन्ता है । उसकी भावनाओं का चित्र प्रस्तुत है --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 183

"बाबल जे मैं ऐसा जाणती, जोबन धरती जिमाय,

मैंगा करके बेचती नूण मिरच के भाव, निबुआ --- ।

बाबल चढ़ता जोबण न्यूं चढ़े, जणु चिण्या की रास,

निबुआ तोड़ण मैं गई ।

बाबल ढलता जोबन न्यूं ढले,

जणु चिण्या की रास, निबुआ तोड़न मैं गई ।"

वह चिन्तित है कि यदि इस यौवन को छीके पर धरती है तो गिरने का भय है और यदि भूमि पर रखती हूँ तो बिल्ली रूपी भ्रष्ट रसिकों द्वारा खाये जाने का भय है --

"बाबल छीकें धरूं तो ढह पड़े,

बाबल तलें बिलैय्या खाय, निबुआ तोड़न मैं गई ।"

ज्ञात यौवना के भी दो भेद होते हैं -- नवोढ़ा व विश्रब्ध-नवोढ़ा ।

<u>नवोढ़ा</u> :- इस नायिका में संकोच, भय, लज्जा की मात्रा अधिक होती है । एक नायिका सखियों के साथ झूला झूल रही है । उसका पति परदेश गया है, अतः उसने श्रृंगार नहीं किया है । एक बटोही आकर उससे साथ चलने का प्रस्ताव करता है --

"गैर पुराणा त्यो नया, म्हारी मिरगनैणी चलो हमारी साथ"[1]

लेकिन लज्जा के बोझ से दबी नायिका उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है --

"लाज्जैगा पीहर सासरा, लाज्जैगी ननसाल,

लाज्जैगा बाबल केसरी, बटेऊ ढोला राता देनी माय ।"

लोकगीतों में यह संकोच पति की अपेक्षा सगे-सम्बन्धियों से अधिक है ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० 217

अवध प्रदेश में इसी प्रकार का गीत प्रचलित है, जिसमें नववधू लज्जावश पति को पलंग पर धीरे से पांव रखने तथा सगे-सम्बन्धियों से लाज रखने को कहती है, जिससे पलंग की 'चरमर ध्वनि' किसी को सुनाई न पड़े --

"धीरे पलंगरिया पै पांव धरा बालम,
सास जी कै अवना ससुर जी कै जाना,
तनि मैया बाबा क लाजि करा बालम ।"[1]

विश्रब्ध नवोढ़ा --

विश्रब्धनवोढ़ा नायिका में संकोच व भय कम होकर विश्वास का उदय हो जाता है । नायिका फाल्गुन के मस्त मास में पीहर में है, वृद्ध-वृद्धाओं में भी फाल्गुन मास मस्ती का मंत्र फूंक देता है --

"काच्ची आमली गदराई साम्मण मैं,
बुढ़ी री लुगाई मस्ताई फाग्गण मैं ।"

तो नायिका की दशा का अनुमान स्वत: लगाया जा सकता है । अत: नायिका मर्यादा का उल्लघंन करके ससुराल में प्रस्ताव भेजती है कि कम से कम वे उसे फाल्गुन में बिना भेजे ले जायें --

"कहियो री उस सुसरे मेरे नै, बिन घाल्ली ले जा फाग्गण मैं

--- -- ---

कहियो री उसे जेठ मेरे नै, बिन घाल्ली ले जा फाग्गण मैं,

-- --

कहियो री उस देवर मेरै नै, बिन घाल्ली ले जा फाग्गण मैं ।"

एक अन्य गीत में नायिका सेना में जाते पतिको आश्वासन देती है कि वह अपनी

1- अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 विद्याबिन्दु सिंह, पृ0 527

नारी सुलभ कोमलता व श्रृंगार को त्यागकर उसके साथ युद्ध-क्षेत्र में चलेगी --

"खाक्की वर्दी पैहरूंगी हो पिया

तार बगाऊँ सिंगार,

फौज में लड़ेगी हो पिया, ले पांचूं हत्यार ।"[1]

§2§ अज्ञात्यौवना :-

यह नायिका अपने यौवनागमन से अपरिचित होती है । बांगरू लोकगीतों में इस नायिका का वर्णन अत्यल्प है । लोकजीवन में जिज्ञासा व कौतूहल वृत्तियाँ ~~क्म~~ शारीरिक विकास के साथ सहज देखने में नहीं मिलती । इसका कारण है कि अपने से व्यस्क सखियों के साथ रहने के कारण अथवा बाल-विवाह की प्रथा के कारण समय से पूर्व ही उन सब बातों का ज्ञान हो जाता है, जिनके प्रति जिज्ञासा का भाव अवस्थानुसार ही बढ़ता है । लोकगीतों में चूंकि लोकमानस की अभिव्यक्ति होती है, इसलिए इनमें यह वर्णन कम पाया जाता है ।

मध्या :-

मध्या नायिका वह युवती होती है जिसमें संकोच की मात्रा अत्यल्प होती है । एक गीत में नायिका पति मिलन की आकांक्षा में प्रीतिपूर्वक सेज बिछाती है और सोलहों श्रृंगार करके पति के पास जाती है --

"अमां मेरी री कर सोलहा सिंगार,

पिया की सेजां धोरै गई ए मेरी मां ।"

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 64

प्रगल्भा :-

प्रगल्भा नायिका पूर्ण विकसित युवती को कहते हैं । यह नायिका रति क्रीड़ा में कुशल व भाव-प्रदर्शन में दक्ष होती है । इसमें नाममात्र को संकोच होता है । इस नायिका का चित्रण निम्नलिखित गीत में हुआ है, जिसमें वह अपने पति से मिलने के लिए उत्सुक है --

"मिलण जाणै कद होगा ?

मेरे राज्जा की अलग अटरिया, मिलण जाणै कद होगा ?[1]

सब उपायों के उपरान्त जब उसे प्रिय मिलन का अवकाश मिलता है तो पीहर से उसे कोई लेने आ जाता है । वह पति से कहती है कि मैं पीहर जाना नहीं चाहती, अत: सब को इंकार कर देना -

"मेरे राज्जा पीहर मैं ना जाती ।

पैह्ला लिवइया मेरा नाई जो आवै,

अच्छे राज्जा नाई तै ना कर दीजो । मेरे राज्जा ----- ।

दूजा लिवइया मेरा बमणा जो आवै,

अच्छे राज्जा बमणा तै ना कर दीजो । मेरे ------ । "

अन्त में नायिका के पिता और भाई उसे लेने आ जाते हैं ।सबको इंकार करने वाला पति इन्हें इंकार नहीं कर सकता । वह पत्नी से पीहर न जाने का कारण जानना चाहता है । नायिका बताती है कि वहां चूंकि आपकी सूरत देखने को नहीं मिलती, अत: मेरा मन वहां जाने को नहीं करता --

"इक तेरी सूरत ना दीक्खै, घोए दु:ख भारी,

मैं पीहर ना जाती ।"

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 73

परकीया

परकीया नायिका उसे कहते हैं जो अन्य पुरूष में रति रखती है । वह नायिका दो प्रकार की होती है -- ऊढ़ा व अनूढ़ा । लोकगीतों में साहित्यिक परम्परा के अनुरूप स्त्रियों के प्रेम की पराकाष्ठा दिखलाई गई है। पुरूषों का अपेक्षाकृत कम चित्रण हुआ है ।

ऊढ़ा --

ऊढ़ा नायिका विवाहित होते हुए भी अन्य पुरुष में प्रीति रखती है । लोकगीतों में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं । एक 'रतजगे' के गीत में ऊढ़ा नायिका का वर्णन हुआ है । पति से रतजगे का बहाना करके वह अपने प्रियतम से मिलने जाती है । लौटने पर पति के पूछने पर कि तेरे हाथों में मेंहदी और आंखों में नींद क्यों नहीं है ? इस पर नायिका उत्तर देती है कि मैं मेंहदी लगाने के समय सो गई थी, इसलिए आंखों में नींद नहीं है । पति के फिर पूछने पर कि तुम्हारा कलेजा क्यों धड़क रहा है और पांव क्यों थर्रा रहे हैं, वह प्रत्युत्तर देती है कि अधिक नृत्य करने से कलेजा धड़क रहा है और पैर कांप रहे हैं । प्रस्तुत है नायिका के प्रच्छन्न रतिगोपन की रहस्यमयी कथा --

"गोरी सई सांज की कहां गई कोय कहां लगाई सारी रात,
राज्जा बड़े जेठ कै रतजगा , कोय उड़ै गंवाई सारी रात ।
राज्जा मैंदी की बिरियां सो गई, कोय न्यूं ना नैणां नींद ।
गोरी कालजा तेरा धड़्क रह्या, कोय पैर रये थर्राय ।
राज्जा नाचत कालजा धड़्क रह्या, कोय पांय रये थर्राय ।"[1]

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0. शंकरलाल यादव, पृ0 18।

अनूठा :-

अविवाहिता की किसी पुरूष में अनुरक्ति होने पर उसे अनूढ़ा नायिका कहते हैं । लोक साहित्य में मानव जीवन के उज्जवल व धूमिल दोनों पक्षों का सम्यक् निरूपण हुआ है । मानव प्रकृति से प्रेरित मार्यादा के विरूद्ध आचरणों का उल्लेख भी लोक साहित्य में हुआ है । पारिवारिक जीवन में घटित होने वाले अनुचित सम्बन्धों और उनसे उत्पन्न विडम्बनात्मक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति लोक साहित्य में जब-तब होती रही है । इससे स्पष्ट होता है कि नैतिक व सामाजिक प्रतिबन्ध मनुष्य की वासनात्मक मूल प्रवृत्तियों को रोकने में एक सीमा तक ही सफल होते हैं । रागात्मक सम्बन्धों के प्रबल प्रवाह को कभी - कभी मानवीय विवेक भी रोकने में असमर्थ हो जाता है । परकीया पर पुरूष प्रेम के उदाहरण बांगरू लोकगीतों में ~~अत्यत्न~~ अत्यल्प हैं ।

सामान्या --

सामान्या नायिका किसी गणिका अथवा वैश्या को कहा जाता है । यह नायिका किसी एक की प्रिय न होकर अनेक की प्रिय होती है । उस पर सबका अधिकार होता है । एक गृह पत्नी का पति सामान्या नायिका में अनुरक्त हो गया, उससे पत्नी ने अपने पति का पीछा कैसे छुड़वाया, इसका वर्णन निम्नलिखित गीत में हुआ है --

"कन्था हमारा रण्ड्यां के जावै,
हमनै उसकी रण्डी पीट्टदी ।"[1]

सामान्या नायिका काम-कला व व्यवहार में कुशल होती है । एक अवधी नारी 'मालिन' से पूछती है कि तुमने किस प्रकार मेरे पति को अपने वश में कर लिया? मालिन विश्वासपूर्वक उत्तर देती है कि सन्ध्या से ही मैंने सेज

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 55

बिछाकर उसपर पुष्प बिखेर दिये । रात्रि-भर मैं उस पर पंखा झलती रही और उसे नयनों के रस में विभोर किये रखा --

"संझवहिं सेजिया बिछायौं त फूल छितरायौं,
हो मोरी रानी सारी राति बेनिया डोलायौं
नयन रस राख्यौं ।"[1]

स्वाधीनपतिका :-

स्वाधीनपतिका नायिका वह होती है जिसका पति उसके वश में होता है । लोकजीवन में पति द्वारा श्रमशीला पत्नी के श्रमपरिहार हेतु कुछ किया जाना पुरुष के पौरुष के प्रति अपमानजनक समझा जाता है, क्योंकि पुरुष प्रधान समाज में इस प्रकार के कार्य अथवा पति की पत्नी के प्रति इस प्रकार की सहज स्वाभाविक अनुरक्ति सामाजिक उपहास का कारण बनती है । लोकजीवन की मान्यताओं व रीतियों की अभिव्यक्ति लोकगीतों में होती है ।

एक गीत में नायिका पीहर चली गई है । पति उसे मनाने जाता है । वह कहती है कि मेरा बाग के बीच में बंगला हो और चांद-सूर्य जैसे उसमें दरवाजे हो, तभी मैं वहां जाऊंगी । पति उसे मनाते हुए कहता है कि तुम्हारे लिये मैं ऐसा ही करूंगा --

"कंथ मनावण आया मेरी साथणों
चाल गोरी घर आपणै जी ।
बाग्गां बंगला छिवा दे, चांद सूरज सोंही वारणा जी,
बाग्गां बंगला छिवा द्यूं, चांद सूरज सोंही बारणा
लगाद्यूं, चाल गोरी घर आपणै जी ।"

1- अवधी लोकगीत; समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० 53।

रूपगर्विता :-

रूपगर्विता नायिका, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, अपने अतीव रूप पर गर्वित होती है । रूपगर्विता विवाह योग्य नायिका से पिता पूछते हैं कि उसे कैसा पति चाहिए? अत्यन्त रूपवती बाला काला, गोरा, लम्बा, छोटा वर छोड़कर कृष्ण कन्हैया जैसा अपने अनुरूप वर चाहती है --

"काला मत ढूंढो कुल नै लजावैगी राज,
भूरा मत ढूंढो चलताए पसीज्जै जी म्हारा राज,
लम्बा मत ढूंढो खड्याए सांगर तोड़ै जी म्हाराज,
छोट्टा मत ढूंढो सब दिन खोट्टा जी राज,
इसा बर ढूंढो कंवर कंहैया जी राज,
कंवर कन्हैय्यो मथुरा बण कै बासी जी राज ।"[1]

नायिका के अतीव रूपवती होने की चेतना इस लोकगीत में प्रकट हुई है । सांवले वर को देखकर उसे क्षोभ हुआ । वह अपने दादा जी से इसकी शिकायत करती है । दादा जी उसे आश्वस्त करते हैं कि मैं राह में जगह-जगह तालाब खुदवा दूंगा, तेरा वर नहा-धो कर गोरा हो जायेगा । उसके लिए कस्तुरी की उबटन मंगवा दूंगा । नित्यप्रति केसर के सेवन से उसका श्याम वर्ण गौर हो जायेगा --

"छज्जे तो बैट्ठी लाड्डो कंवर निरखै,
दादा हो बर सांवला ।
राहे तो बिचालै लाड्डो ताल खुदाधां
न्हान्त्या तो धोया बर उजला ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 184

किस्तूरी मँगा द्यां बर कै अंग लगा द्यां,
केसर प्याद्यां बर नै घोल के ।"[1]

सुन्दर वर की आकांक्षा रखने वाली रूपगर्विता को सखियां 'गेहूं-बाजरा' की लाभ हानियां परिहास द्वारा समझाती हैं --

"लाड्डो बाजरे की रोट्टी मतन्या खा, साजण काले आवैंगे ।
लाड्डो गीवूहां के झावर,झल्ले खा, साजण गोरे आवैंगे ।"[2]

लोक में एक कहावत प्रचलित है --

"जिसा खावै अन्न, उसा हो ज्या मन ।
जिसा पीवै पाणी, उसी हो जै बाणी ।"

किन्तु यहां कन्या के अन्न भक्षण से वर प्रभावित बताया गया है । लोक में प्रचलित अन्धविश्वासों का यह प्रमाण है ।

अभिसारिका :-

प्रिय के द्वारा निर्देशित संकेत स्थल पर प्रिय मिलन आतुरता के कारण स्वयं छिपकर जाने वाली नायिका अभिसारिका होती है । यह नायिका शुक्लाभिसारिका व कृष्णाभिसारिका-दो प्रकार की होती है ।शुक्ल पक्ष की चांदनी रात में उसी के अनुरूप श्वेत वस्त्र धारण करके तथा श्रृंगार करके प्रिय से मिलने आने वाली नायिका शुक्लाभिसारिका व कृष्णपक्ष की अन्धकारपूर्ण काली रात्रि में श्याम वर्ण के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर प्रिय मिलन को जाने वाली नायिका कृष्णाभिसारिका होती है । लोकगीतों में सामाजिक मर्यादा की प्रमुखता होती है । लोक में इस प्रकार की नायिका को अच्छी दृष्टि से

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 185

2- वही, पृ0 186

नहीं देखा जाता, अत: अभिसारिका नायिका का लोकगीतों में अधिक वर्णन नहीं मिलता ।

वासकसज्जा --

वासकसज्जा नायिका नायक से मिलने के लिए श्रृंगार करती है और उसकी प्रतीक्षा करती है । एक ग्रामीण वधू ने अपनी चूनर को नाना प्रकार के कसीदों से सुशोभित किया है । इनमें मयूर आदि पक्षियों की सुन्दर आकृति अंकित है और मध्य में शीशे के लघु खण्ड लगाये हैं --

"रै चुंदड़ी तेरा जुलम कसीदा ।
कुण सै मिहनै बोल्लै मोर पपैया,
कबसी चमकै सीसा ?"

नायिका 'मनिहार' से विलक्षण चूड़ियों की मांग करती है, जो उसके पति के अंग प्रत्यंग व वस्त्राभरण से मेल न खाती हों --

"हरी ए झांजीरी मनरा ना पैहरूं
मनरा हरा ए म्हारा सैंया जी का बाग,
मनरा तो मेरी जान चुड़ला हात्थी दांत का ।"

सज-धज कर नायिका मेले में जाने को उद्यत है, जहां उसका सांवरिया उसे मिलने वाला है --

"अरी, ए री, मैं तो ओढ़ चुनरिया, जांगी मेलै मैं,
अजी, ए जी, बांके सांवरिया मिल्यिो अकेल्ले मैं ।"[1]

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 6।

विरहोत्कंठिता :-

जिसका पति निश्चित अवधि के भीतर लौटकर न आये और इसीलिए वह विरह दु:ख से पीड़ित हो, उसे विरहोत्कंठिता नायिका कहते हैं । षष्ठ अध्याय में विवेचित किया जा चुका है कि हरियाणा के अधिकतर पुरुष सेना में कार्यरत हैं । इसलिए विरहोत्कंठिता नायिका का उल्लेख अधिकतर गीतों में हुआ है । एक नायिका का पति उसे निश्चित अवधि के भीतर लौट आने का आश्वासन देकर परदेस जाता है, लेकिन परदेस में प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसे अवकाश नहीं मिलता, यह सूचना वह पत्र द्वारा नायिका को प्रेषित करता है --

"मेरे पिया की चिट्ठी आई बेबे ए,
कोय छुट्टी मिलदी ना मूल ।"

सैनिक पति के लौटने की प्रतीक्षा करना हरियाणवी युवती की स्थायी समस्या है । विरहोत्कंठिता नायिका पंडित से पूछती है कि मेरे पति घर कब आएंगे ?

"कोरा सा कागद हाथ, बूजण मैं चली मेरे राम ।
कहो नै पण्डत मन की बात, कद घर आवै मेरा लस्करी
ओ मेरे राम ।"[1]

खण्डिता :-

खण्डिता नायिका वह होती है जो अपने पति के शरीर पर अन्य स्त्री द्वारा अंकित संभोग चिन्ह देखकर दु:खी व ईर्ष्यायुक्त हो उठती हो । लोकगीतों में इस प्रकार की खण्डिता के उदाहरण कम मिलते हैं । लेकिन पति को परस्त्री के साथ देखकर ईर्ष्या करने व दूसरी पत्नी के उदाहरण मिलते हैं ।

1- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 71

एक नायिका चम्पा बाग में झूलने जाती है । वहाँ एक परदेशी से उसकी आँखें चार हो जाती है, जिसकी परिणति विवाह में होती है । विवाहोपरान्त नायिका पर रहस्योद्घाटन होता है कि नायक विवाहित था । निष्ठुर नायक भी इस बात की पुष्टि करता है और कहता है कि पहली पत्नी उससे कहीं श्रेष्ठ है --

"छोह्री ! ना मेरा मर ग्या माय अर बाप,
मेरे मन आई मेरी घर की नार,
तेरै तै कहिये दो चंद आगली ।"[1]

ठगी हुई पुत्री माता की शरण में जाती है --

"अम्मां री ! मरूँ के जीवूं मेरी माय,
राज्जा कै कहियै राणी दूसरी ।"

एक अन्य पौराणिक प्रसंग में कृष्ण झोलीभर फूल लाये थे, जो उन्होंने गोपियों में बाँट दिये । राधा तक आते-आते फूल समाप्त हो गये । मानिनी राधा को इससे ईर्ष्या हुई, वह कृष्ण का तिरस्कार करती है--

"ए जी, जित बाँट्टे झोलीभर फूल,
उड़ै पड़ सो रहो, भगवान् ।"[2]

<u>कलहान्तरिता</u> :-

यह नायिका प्रणय निवेदन करने वाले प्रिय का रोषपूर्वक निरादर करती है और अन्त में अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप । एक नायिका ने नायक को रूष्ट कर दिया । जब वह चला गया तो उसे पश्चाताप हुआ --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 223
2- वही, पृ0 218

"जे मैं ऐसी जाणती ए सास्सड़ री,
पकड़ूं थी घोड़े की लगाम ।"

यदि मुझे इस परिणाम का लेशमात्र भी पता होता तो मैं घोड़े की लगाम पकड़ लेती और उन्हें जाने नहीं देती । वह उसे ढूंढने का प्रयत्न करती है, लेकिन असफल होती है --

"पायां में छाल्ले पड़ ग्ये ए सास्सड़ राणी,
नैणां में रम आई नींद ।"

उदास नायिका बाग में सखियों के साथ झूला झूल रही है । बटोही आकर उसकी उदासी का कारण जानना चाहता है । नायिका बताती है कि उसके पति परदेस गये हैं । बटोही उसे अपने साथ चलने का आग्रह करता है, लेकिन नायिका उसे अपमानित करके वहां से निकाल देती है । घर आने पर उसे सास से पति का हुलिया पता चलता है, जो हूबहू उस बटोही से मिलता था । नायिका हाथ मलती रह जाती है । भाग कर वह उस तक पहुँच नहीं पाती और आवाज़ देकर बुलाने में मर्यादा का उल्लंघन होता है --

"अड़बड़ डालै झूलती बटेऊ झूंटे देता ज्या ।
और सखी सब ऊजली हे मेरी मिरगानैणी,
तैं क्यूं मैल्ले भेस ?
औरां के परणे घर भले, बटेऊ म्हारा गया परदेस ।
गेरो पुराणा ल्यो नया हे म्हारी मिरगा नैंणी चलो हमारी साथ,
सुन्ने में पीली करूँ हे मेरी मिरगानैणी चांद्‌दी में द्यूं मंडवाय,
डाढी तो पाड़ूं तेरे बाप की, बटेऊ मूंछ्यां घाल्लूं हाथ,

और सखी सब बाह्वड़ी हे मेरी बहुअड़ तैं कित लाई बार,

एक बटेऊ मिलग्या मेरी सास्सड़ राणी, झगड़्या मैं लाई बार,

किसा क गोरा गाभरू ए मेरी बहुअड़ राणी किस्यां की उणिहार,

अंग गोरा मुख पातला मेरी सास्सड़ राणी, जेठ बड़े की उणिहार,

जा रे निगोड़े की बावली म्हारी बहुअड़ राणी, वा थारा भरतार,

भाज्या जा तो भाज ले हे बहुअड़ राणी, हेल्ला देय बुलाय ।

भाज्जूं तो मैं ढह पड़ूँ हे सास्सड़ राणी, हेल्ला दिया ना जाय ।

वे बणजारे लद गये है मेरी सास्सड़ राणी, जा उतरे किस्यां खूंट ।"[1]

विप्रलब्धा :-

विप्रलब्धा नायिका उसे कहते हैं जिसका प्रियतम संकेत स्थल नियत करके भी मिलने न आये और वह इसे अपना अपमान समझती हो । नायक ने नायिका को संदेश भेजा था कि वह आयेगा, प्रतीक्षा की घड़ियां बीत गई लेकिन वह नहीं आया । बरबस उसके आंसू लुढ़क पड़ते हैं, वह व्याकुल हो उठती है --

"अरी ! हेरी ! मेरें पिया नै भेज्या संदेस,

खड़ी-खड़ी बांचती ।

"बांचत बांचत हुई बेहाल, आंख्यां तै आंसू सारती,

हाय री अभागण नार, पिया बिन दिन एकली काटती ।"[2]

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 41

2- वही, पृ० 67

प्रोषितपतिका :-

प्रोषितपतिका नायिका वह होती है जिसका पति परदेस में हो और वह उसके दु:ख में दु:खी हो । इस नायिका के चित्रण से लोकगीतों का अक्षय भण्डार भरा पड़ा है । एक विरहिणी फाल्गुण मास में प्रिय के अभाव से दु:खी है । उसे फाल्गुन से शिकायत है कि जब पिया परदेस गये हैं तो यह मास क्यों आया ? नायिका की करूण-व्यथा का मार्मिक चित्रण हुआ है --

"जब साजन ही परदेस गये, मस्तान्ना फाग्गण क्यूं आया ?
जब सारा फाग्गण बीत गया तै घर मैं साजन क्यूं आया ?
छम-छम नाच्चैं सब नर-नारी, मैं बैट्ठी दु:खां की मारी,
मेरै मन मैं जब अंधेर मच्या, तै चांद का चांद्दण क्यूं आया ?
जब पी आया जी खिल्यानाा, जब जी आया पी मिल्या ना,
साजन बिन जोबन क्यूं आया, जोबन बिन साजन क्यूं आया ?
मन की तै अर्थी बंधी पड़ी, आंख्यां मैं लाग्गी हाय झड़ी,
जब फूल मेरे मन का सूक्या,लजमारा फागण क्यूं आया ?"[1]

अन्तिम पंक्ति में नायिका की कातर अवस्था का चित्रण हुआ है -- "मन की तै अर्थी बंधी पड़ी, आंख्या मैं लागी हाय झड़ी" नायिका पति की प्रतीक्षा करते करते निराश हो चुकी है, आंखें थक गई हैं और उसका मन भर आया है ।

नायिका को पति की अनुपस्थिति में कोयल का बोलना भी नहीं सुहाता । उसके कर्ण मधुर स्वर उसे कर्ण कटु प्रतीत होते हैं --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 247

"मेरे पिया गये परदेस, कोयलिया क्यूं बोल्लै से?
यो: से मेरे पिया का नां, कोयलिया क्यूं बोल्लै से?
तूं तै काली बणी भगवान्, काम्मण उनकी गोरी से ।
मेरे मन में उठै से हिलोर, तूं बेकल हो री से ।
तूं तो काले बाद्दल की गैल, उड़ ज्या री अम्बर में,
बेबे। हम बिरहण की रात कटै से पीहर में,
तूं तै काले बाद्दल की गैल, उड़ ज्या री अम्बर में ।"[1]

एक भोजपुरी प्रोषितपतिका अपनी दयनीय दशा को दर्शाती हुई कह रही है कि अरे निर्मोही ! लोभी ! तुम्हें देखे बिना कितने लोग रो रहे हैं -- घर में तुम्हारी घरनी रोती है, बाहर तुम्हारी हरिणी रोती है, तालाब में चकवा-चकई रो रहे हैं, बिछोह करते समय तुम्हें तनिक भी दया नहीं आई --

"घरावा रोवै धरिनी ए लोभिया,
बाहारवा राम हरिनिया,
दाहावा रोवै चकवा-चकइया
बिछोहवा कइले निरवा मोहिया ।"

प्रवत्स्यपतिका :-

जिस नायिका का पति परदेस जाने को उद्यत हो, उसे प्रवत्स्यपतिका कहते हैं । पति गृहस्थी के सब साधन जुटाता है, लेकिन स्वयं उसका उपयोग नहीं कर पाता, क्योंकि उसे परदेस जाना है --

"बोए चले थे पिया पीपली जी,
हां जी हो गई घेर घुमेर, बैद्ठण की बर चाल्ले नौकरी जी ।

1- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 66

बांध चले थे पिया बाछड़ी जी,

हां जी कोय हो गई लुरियल गाय,

दुहण की बर चाल पड़े जी नौकरी ।"[1]

आगतपतिका :-

आगतपतिका नायिका वह होती है जिसका पति लम्बी अवधि के उपरान्त लौट आया है । नायिका का विवाह उसकी बाल्यावस्था में ही हो गया था । विवाहोपरान्त पति विदेश चला गया । वह ससुराल मेंगृह कार्य में व्यस्त रही । अपरिचित सरीखे पति की प्रतीक्षा में लम्बी अवधि व्यतीत हो गयी, यहां तक कि देवर जेठ उसे छोड़ अलग हो गये, नि:सहाय सास उसके साथ रही । पत्नी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुई और पति की प्रतीक्षा करती रही । अन्तत: पति खेत में आता, लेकिन लम्बे अन्तराल के कारण वह उसे पहचानने में असमर्थ है । वह डर जाती है । घर पहुंचने पर पति हंसकर उसके न पहचानने की बात अपनी मां से कहता है । नायिका प्रत्युतर देती है कि तब नादान उम्र थी, अब व्यस्क है, इसलिए आंखें पहचान नहीं पाई --

"कांधे पै कसोल्ला० टेक कै ए मैं ईख नुलावण जा री,

एक गाड्डी बारां बजे की आई ।

कांधे पै बिस्तरा टेक कै ए एक उतर्या से रंगरूट,

ए ओ डोलै-डोलै हो लिया ।

डोले पै बिस्तरा टेक कै ए उंह नै देख्या अपणा खेत

ए मैं ईख नुलाऊं एकली ।

1- हरियाणा के लोकगीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 65

कित गे देवर जेठ रै कित गई बुढ़ली सास ?

ए तूं ईख नुलावै एकली ।

न्यारे होगे देवर जेठ ओ मेरै घर पै बुढली सास,

ए मैं ईख नुलावूं एकली ।

चाल्या जाइये रंगरूट ओ मेरै डरती गै चढ़ ग्या ताप,

ए मेरा पति नौकरी जा रह्या ।

सांज हुई घर बाह्वड़ी ए रस्ते मैं मिलै वो न्यूं कह्वै,

ए तेरा बालम छुट्टी आ गया ।

धरया देह्ली पै पैर ए छैल्लै की हांस्सी छूट गी,

इस बावली तै बूझिये री माता कुण मिल्या इनै खेत मैं,

जिब तो उमर नदान थी रे इब हुआ जवान्नी का जोर,

ए इन्नै नहीं पिछाण्या खेत मैं ।"[1]

इस प्रकार ~~नायिका भेद के अन्तर्गत~~ विभिन्न नायिकाओं के चित्र लोकगीतों में उपलब्ध होते हैं । भले ही वे शास्त्रीय विवेचन की कसौटी पर खरे न उतरते हों, किन्तु स्वाभाविकता व मार्मिकता की दृष्टि से यदि परखा जाये तो ये नायिकायें शास्त्रीय नायिकाओं से कहीं अधिक सजीव हैं ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 69

संयोग श्रृंगार --

नायक व नायिका का सौंदर्य-वर्णन इसका प्रमुख अंग है । इस विषय के अनेक गीत उपलब्ध होते हैं । सौंदर्य-चित्रण के अन्तर्गत नायिका के अट्ठाइस अलंकार, बत्तीस लक्षण, व सोलह श्रृंगार एवं नायक के नाट्य-शास्त्र में वर्णित दस लक्षण आते हैं । सौंदर्य चित्रण के अतिरिक्त नायक-नायिका का रति स्वरूप, उनके मानसिक, कर्माश्रित, सामाजिक, शाब्दिक व आंगिक रत्युपचारों का भी वर्णन होता है । सोहर, विवाह, सावन और फाल्गुन के गीतों में इस रस की अधिकता होती है । छन, सींटणे व गाली के गीतों में यह रस खूब खुलकर गाया जाता है । सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए फाल्गुन आनन्दोपभोग का संदेश लेकर आता है । इस मास में प्रकृति में सर्वत्र आनन्द और उल्लास छा जाता है । ऐसे वातावरण में नायिका अत्यन्त प्रसन्न है । शब्दों के माध्यम से उसकी प्रसन्नता फूटी पड़ रही है --

"फागण के दिन चार री सजनी, फागन के दिन चार ।

मध जोबन आया फागण मैं,

फागण बी आया जोबण मैं,

झाल {ज्वाला} उठै सैं मेरे मन मैं,

जिसका बार न पार री सजनी,

फागन के दिन चार ।

प्यार का चंदन मैहकण लाग्या,

गात का जोबन लचकण लाग्या,

मस्ताना मन बैहकण लाग्या,

प्यार करण नै त्यार री सजनी,

फागण के दिन चार।

गाओ गीत मस्ती मैं भर कै,

जी जाओ सारी मर-मर कै,

नाच्चण लागो छम-छम करकै,

उट्ठण द्यो झणकार री सजनी,

फागण के दिन चार ।"[1]

फागुन मास में नायिका आनन्दित है । इसमें आलम्बन 'नायक', आश्रय 'नायिका' है । उद्दीपन 'फागुन मास' है और स्थायी भाव रति है ।

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले 'होलरों' में भी संयोग श्रृंगार का ~~स्वाभाविक~~ स्वाभाविक चित्रण हुआ है --

"कोड्डी कोड्डी बगड़ बुहारूँ, दर्द उठा सै कमर मैं हो राजीड़ा,

इब ना रहूँगी तेरै घर मैं ।

घोर जिठाणी मेरी बोल्ली मारैं, जिब क्यूं सोवै भी बगल मैं,

हो राजीड़ा, इब ना रहूँगी तेरै घर मैं ।

छोट्टा देवर खरा रसीला, दाई नै बुलावै इक छन मैं,

हो राजीड़ा, इब ना रहूँगी तेरै घर मैं ।

छोट्टा देवर नै बाह्मण बिह्वाधूं, दाई बुलावै इक छन मैं ।

हो राजीड़ा, इब ना रहूँगी तेरै घर मैं ।"

गर्भवती स्त्री की देवरानी जेठानी उसका उपहास कर रही हैं, जो उसे असह्य है । वह पति को घर छोड़ देने की धमकी देती है । लेकिन सास व ननद उसे धीरज बंधाती हैं । देवर सान्त्वना के साथ दाई को भी बुला देता

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 246

है, पारितोषक के रूप में स्त्री अपनी छोटी बहन का विवाह देवर से करने का वचन देती है । पति को पीड़ा का कारण समझकर उसके घर में न रहने का नायिका का निर्णय सामयिक है ।

विप्रलम्भ श्रृंगार :-

लोकगीतों में विप्रलम्भ श्रृंगार का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है । इस रस की अभिव्यक्ति में अधिकांश कवियों ने अपने को रमाया है । लोकगीतों में विरह का सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा हृदयग्राही वर्णन प्रचुरता से मिलता है । लोकगीतों में विरह का कारण अधिकतर व्यापार, नौकरी अथवा प्रशिक्षण हेतु पति का विदेश चले जाना है । बांगरू विरह गीतों की बहुलता का कारण वहां के अधिकांश वीर पुरूषों का सेना में कार्यरत होना है । विप्रलम्भ श्रृंगार का मार्मिक उदाहरण द्रष्टव्य है --

"अरी ! हेरी ! प्रिया नै भेज्या संदेश, खड़ी खड़ी बांचती ।
अरी ! हेरी ! संग की सहेलियां बूझती, जीजा का हाल क्यूं ना
बतावती ।
अरी ! हेरी ! सब नै लिखी परणाम, याद घणेरी आवती ।
बांचत-बांचत हुई बेहाल, आंख्या ते आंसू ढारती ।
हाय री अभागण नार, पिया बिन दिन एकली काटती ।"[1]

नायक का पत्र आया है । उसे पढ़कर प्रसन्न होने की अपेक्षा नायिका दु:खी होती है और आंसू बरबस उसके गालों पर लुढ़क पड़ते हैं, क्योंकि

1- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 67

पत्र को पढ़कर उसके घाव पुन: हरे हो गये । वह स्वयं को अभागन मानती है कि पति के होते हुए भी उसे अकेले दिन व्यतीत करने पड़ रहे हैं ।

"हाय री अभागण नार पिया बिन दिन एकली काटती ।"

आसुओं के साथ हृदय से निकला यह वाक्य किस सहृदय के हृदय को द्रवित नहीं कर देगा ?

इस गीत में आलम्बन नायक व आश्रय नायिका है । नायक का पत्र उद्दीपन है । नायिका पति का साथ चाहती है, अत: 'रति' स्थायी भाव है । पति को याद करना स्मृति संचारी भाव है । 'पिया बिन दिन एकली काटती' यह कहना अनुभाव हुआ । इस प्रकार इसमें रस की पूर्ण निष्पत्ति है ।

करूण रस :-

लोकगीतों में करूणा की धारा सतत् प्रवाहित होती रहती है । स्त्रियों के गीतों में करूणा का सागर लहराता है । श्रृंगार रस के समान इसका व्यापक प्रसार हुआ है । करूण रस का स्थायी भाव शोक है । प्रियजन के वियोग, सम्बन्धियों का नाश, निराशा, धन की हानि आदि कारणों से यह रस उत्पन्न होता है --

"प्रिय के विप्रिय करण ते, आन करूण रस होत,
ऐसो वरण बखानिये, जैसे तरूण कपोत ।"[1]

करूण रस के सिद्धहस्त कवि भवभूति ने एकमात्र करूण रस को ही रस माना है -- "एको रस: करूण एवं निमित्तभेदाद् भिन्न: पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।"[2]

1- रसिक प्रिया, प्रकरण 14/18

2- भवभूति - उत्तररामचरित ।

गुलाबराय ने करूण रस का स्वरूप निर्मल नवनीत-सा स्निग्ध, सुष्ठु, सरस एवं दिव्य माना है । उनका मत है कि इसके द्वारा मानव हृदय से उत्तमोत्तम सुकोमल भावों का उदय होता है । इसमें निहित शुद्धता, सहृदयता, और सहानुभूति के तत्व मानव हृदय में अमल अलौकिकता का संचार करते हैं ।[1]

वैधव्य के गीतों में करूणा की अमिट छाप होती है । पति के निधन पर विधवा का जग सूना हो जाता है । उसे पूर्व स्मृतियां कांटे-सी बेधती हैं । विधवा-विलाप अत्यन्त कारूणिक है --

"ए सास्सू जब धसूं मैहल मैं दरी बिछौना सून्ना,
कुछ ए दिनां की नां से, मन्नै सारे जनम का रोणा ।
याणी थी जब रही बाप कै मनै सोच समझ कुछ नां था,
इब क्युक्कर कटै दिन रात, मेरे कोय एक दिनां की नां से ।"

वियोग में एक पल युग के समान व्यतीत हो रहा है, तो पूरी आयु कैसे व्यतीत होगी ? समूचा गीत शोक के ताने-बाने से बुना गया है । इसमें मृत्यु के कारण 'शोक' स्थायी भाव है । 'मृत्यु पति' आलम्बन व 'विधवा' आश्रय है । 'सूना दरी बिछौना' उद्दीपन तथा दु:ख की अभिव्यक्ति करना अनुभाव है । 'दाम्पत्य जीवन' की याद आना 'स्मृति' संचारी है । अत: यहां करूण रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है ।

विधवा की दारूण दशा ही नहीं अपितु विधुर के विलाप को भी बांगरू लोकगीतों में अभिव्यक्ति मिली है[2] --

---

1- गुलाब राय, नवरस, पृ0 444

2- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 332

"ब्याही थी रे बिलसी नहीं, यो के हुआ प्यारी ए,
तोड़ी थी रे सूंघी नहीं, ली थी गले में डाल प्यारी ए
घर घर दीवा, घर घर बाती, रंडुवे कै घर घोर अंधेर,
घर घर भोजन, घर-घर रोट्टी, मेरै घर रोट्टी मैं चून ए,
दाम्मण ओढ़नी खूंट्टी धरे सैं, इक बर पैहर दिखा प्यारी ए,
पाणी की दोघड़ रीत्ती धरी सैं, एक बर पाणी प्याय प्यारी ए,
गहणे का डिब्बा भर्या धर्या सै इक बर पैहर दिखाय प्यारी ए,
बीरा तेरा लेवणहार, एक बर पीहर जाय प्यारी ए,
सेज्जा मेरी सून्नी पड़ी सै, इक बर सूरत दिखाय, प्यारी ए,
डाल खटोल्ला पोली मैं सोया, इक बर सुपने मैं आय प्यारी ए"

गीत का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है । आलम्बन 'मृत पत्नी' व आश्रय 'विधुर' है । पत्नी की मृत्यु के कारण 'शोक' स्थायी भाव है । पत्नी की अनुपस्थिति से फैली अव्यवस्था उद्दीपन है तथा दु:ख की अभिव्यक्ति करना अनुभाव है । स्मृति संचारी पूर्व दाम्पत्य जीवन की याद करना है । अत: यहाँ करूण रस की पूर्ण समायोजना हुई है ।

वैधव्य के अतिरिक्त वियोग, विदाई और स्त्री के निस्सन्तान रहने पर भी करूण रस का उद्रेक होता है ।

वन्ध्या स्त्री अवसर मिलने पर भी पूर्णता को प्राप्त करने में असमर्थ रहती है, अत: वह गृहस्थ जीवन में शनै: शनै: अपने वास्तविक स्थान से च्युत होती जाती है । अन्य बालकों को देखकर उसका मन होता है कि वह भी बालक की अंगुली पकड़कर पति के साथ घूमने जाये । लेकिन पति उसे वास्तविकता से अवगत कराता है । वन्ध्या स्त्री उदास हो जाती है । लोकगीतकार ने उसकी करूणा को

अभिव्यक्ति दी है --

"चाल्ली म्हारा राजीड़ा सैह्रां मैं चाल्लो
जो कोय बालक पकड़ै आंगली जी,
बोल्ली ए धण मूरख गंवार,
बिन जाया कैसे पकड़ै आंगली जी
लीप्या पोत्या बांझलड़ी कै सोह्वै
ना कोय बालक खेल्लैं आंगणै जी ।[1]

न वन्ध्या को अंगुली पकड़ने वाला मिलता है, न उसकी घूमने की साध पूरी होती है । सपूती स्त्रियां उसे अशुभ जानकर उसकी छाया से भी दूर भागती हैं--

"रहो रहो बांझलड़ी दूर रहियो,
तेरी ए लाम्मण सै म्हारे फूल झड़ैं ।"

उन्हें भय है कि वन्ध्या के संग से उसके दुर्भाग्य का दुष्प्रभाव सपूती पर भी पड़ सकता है । आलम्बन अजन्मा शिशु और आश्रय वन्ध्या स्त्री है । निपूती रहने का भाव शोक स्थायी भाव है, सपूती स्त्रियों के ताने उद्दीपन है । पति से घूमने की इच्छा व्यक्त करना अनुभाव व बालक की अंगुली पकड़कर घूमने का भाव संचारी है । करूण रस की यहां पूर्ण निष्पत्ति हुई है ।

कन्या की विदाई के समय वातावरण करूण हो उठता है । जिस कन्या ने जन्म से युवावस्था तक का समय पिता के घर व्यतीत किया, विवाहोपरान्त वह अनजान व अपरिचित घर में चली जाती है । उसे पितृ-गृह का लाड-दुलार स्मरण हो आता है । उसकी मानसिक वेदना आंसू बनकर फूट निकलती है । कालिदास

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 11

ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उद्विग्नचेता महर्षि कण्व के मुख से जिस भावोद्गार को व्यक्त कराया है, वह अत्यन्त कारुणिक था । कन्या ससुराल जा रही है, कन्या के साथ समस्त परिवार व सखियाँ भी रो रही हैं --

"म्हारे री घेर मैं आए बटेऊ, सात्थण के लणिहार ।
सात्यण चाल पड़ी री मेरे डब डब भर आये नैण ।।"

ससुराल जाती कन्या को अपने पिता की चिन्ता सर्वाधिक है । उससे हुए सब अभावों की पूर्ति हो जायेगी, लेकिन बेटी के बिना उसे 'बाबल' कौन कहेगा --

"तन्नै बाबल कौणकहवै बाबल तेरी धीय बिना । आँसू तो भर आये नैण, क लाडो बेट्टी जाय घरां ।"

~~बोलियों में मिलते हैं~~ । एक भोजपुरी गीत में बेटी की विदाई के अवसर पर पिता के रोने से गङ्गा में बाढ़ उमड़ आई है । माता के अश्रुपात से आँखों के आगे अँधेरा छा गया है और भाई के रोने से उसकी धोती चरण तक भीग गई है । परन्तु भावज इतनी वज्र-हृदया है कि उसकी आँखें नम भी नहीं हुई --

"बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर ।
भइया के रोवले चरण धोती भीजै,
भऊजी नयनवा न लोर ।"[1]

1- भोजपुरी लोकगीत, भाग-1 डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 74

इसी भाव साम्य का कन्नौजी गीत परिवर्तित शब्दावली में प्रचलित है[1] --

"माया के रोए छतिया फटत है, ददुली के रोए सागर पार
भइया के रोए पटुका भिजत है, भउजी ठाड़ी मुसकाय ।"

गुजराती कन्या अपने मन की व्यथा प्रकट करते कहती है कि मैं तो चिड़िया सदृश हूँ, कल उड़ जाऊँगी --

"अमेरे लीलुडा बननी चरकलड़ी,
उड़ी जाशुं परदेश जो,
आजे रे दादाजी ना देश मां,
काले जइशुं परदेश जो ।"[2]

पंजाबी कन्या के भाव भी कुछ इसी प्रकार के हैं । उसे चिन्ता है कि मेरे जाने के बाद बाबुल का चौका बरतन कौन करेगा --

"साड्डा चिड़ियां दा चम्बा वे, बाबल असीं उड़ जाणा ।
साड्डी लम्बी उडारी वे, बाबल केहडे देश जाणा,
तेरा चौंका-पाहण्डा वे, बाबल तेरा कौण करे ?
तेरे मैहलां दे विच-विच वे मेरा डोला अड़े ।"

जिस प्रकार भवभूति की करूण कविता सुनकर वज्र का भी हृदय फट जाता है और पत्थर भी पसीज जाता है,[3] उसी प्रकार इन करूण रस से ओतप्रोत गीतों को पढ़कर पत्थर के समान कठोर पुरुषों का भी कलेजा आंसुओं के रूप में पसीज-पसीज कर बाहर निकलने लगता है --

---

1- कन्नौजी लोक साहित्य, डॉ0 सन्तराम अनिल, पृ0 121

2- लोक साहित्य, झवेरचन्द मेघाणी, पृ0 183

3- अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।
भवभूति: उत्तररामचरित ।

"आँसुन के मग जब बह्यो
हियो पसीज-पसीज ।"[1]

वीर रस :- वीर रस का स्थाई भाव 'उत्साह' है । बाँगरू लोकगीतों में इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं । लोकगीतों का वीर नायक कहीं मुगलों से लोहा लेता है तो कहीं फिरंगियों से । निहालदे व चन्दरावल लोकगीतों में वीरता की प्रतीक ऐसी नारियाँ हैं, जिन्होंने मुगल सेनाओं के मध्य अपनी सतीत्व रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया । चन्दरावल जल भरने पनघट पर गई, जहाँ मुगल सैनिकों ने उसे घेर लिया । उसने अपने पिता, भाई व पति के पास संदेश भिजवाया । अपने भरसक प्रयत्नों से भी वे चन्दरावल को छुड़ा नहीं सके । अन्ततः चन्दरावल वीरतापूर्वक स्वयं को अग्नि में समर्पित करके सतीत्व रक्षा करती है --

"पीछा मुड़ के देख ले ओ बाबल,
तम्बू लग रई आग ।
खड़ी ए जलै चन्दरावली ।
राखी कुल की ल्हाज, फौज पड़ी बाहर मुगलां की ।"[2]

चन्दरावल के आत्म बलिदान की हिन्दू-मुसलमान दोनों ने मुक्त कंठ से सराहना की --

"हिन्दू कहै राम-राम, मुसलमान तौबा-तौबा,
तोड़ी थी, चाखी नहीं ।"[3]

1- लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय, पृ० 230
2- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 4
3- वही ।

हरियाणा में अनेक ऐतिहासिक लोक राग गाये जाते हैं । जिसमें वीरों की वीरता का वर्णन होता है । राव किशन गोपाल भारतमाता के मस्तक पर लगे परतन्त्रता के कलंक को मिटाने वाला अहीर वीर था । 1857 के युद्ध में उसने अंग्रेजों के दांत खट्टे किये थे । किस्सा राव गोपाल का वीर-रस से ओतप्रोत एक छन्द प्रस्तुत है, जिसमें राव रणक्षेत्र में अपने साथियों को युद्ध-धर्म का उपदेश दे रहे हैं --

"बोल्या किस्न गोपाल राव भाई रामलाल ।
बोदा नै मत मारियो है जीवन जंजाल ।
बोदा लड़ै चून के कारणै करै निमक हलाला ।
तकल्यो टोपीवान नै जिन बैठे लाल ।।
मेरा जन मारा पातक कटै कटै जीव जंजाल ।
रोवैं विलायत मेम लोग, माच्चै कौलाट ।"

इस छन्द में लड़ने का उत्साह स्थायी भाव है । अंग्रेज आलम्बन तथा राव किशन आश्रय है । युद्ध क्षेत्र उद्‌दीपन है । अंग्रेजों को चुन-चुन कर मारना अनुभाव है । विलायती मेमों के रोने पर गर्वित होना संचारी है । अतः इसमें वीर रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है ।

द्वितीय महायुद्ध, भारत-पाक युद्ध आदि में हरियाणा के रण बांकुरों की वीरता के अनेक गीत प्रचलित हैं, जिनसे वीर रस का संचार होता है ।

हास्य रस :-

हास्य रस को श्रृंगार का पोषक एवं सहयोगी माना गया है । इसका स्थाई भाव 'हास' है । इसमें चित्तवृत्ति का विकास होकर अनुरंजन होता है ।

एक रतजगे के गीत में स्त्री गंगा-स्नान करने जाना चाहती है, लेकिन भैंस उसके हान्तड़ है । पत्नी पति को समाधान सुझाती है कि वह उसके कपड़े पहनकर दूध निकाल ले । जब पति दूध निकालने लगता है, तो द्वार पर साधु भिक्षार्थ आता है । पति के बोलने पर भैंस उसकी आवाज़ पहचान कर भाग जाती है । स्त्री वेश में पति लाठी लेकर उसका पीछा करता है, भागने से उसकी चूनर उड़ जाती है । मूंछों वाली नारी को देखकर लोग हंसते हैं --

"मन्नै तो पिया गंगा न्हुवादे, जारी सै संसार,
हां ए जा री सै संसार ।
तन्नै तो गोरी क्युक्कर न्हुवाद्यूं, हात्तड़ पड़री भैंस,
हां ए हात्तड़ पड़ री भैंस ।
एक जतन पिया मैं बतलाद्यूं -
खूंटी पै मेरा दाम्मण लटकै चुंदड़ी छाप्पेदार,
हां ए चुंदड़ी छाप्पेदार ।
डब्बे में मेरी नाथ धरी सै पैह्र काढियो धार,
हां ए पैह्र काढियो धार ।
बाह्र तैं इक मोड्डिया आया,
बेब्बे भिक्षा डाल, हां ए बेब्बे भिक्षा डाल ।
बेब्बे तो तेरी न्हाण गई सै,
जीज्जा काढै धार, हां ए जीज्जा काढै धार ।
खुंटा पाड़गी, जेवड़ा तुड़ागी, भाजगी सै भैंस,
हां ए भाजगी सै भैंस ।

डंडा लेके पाच्छै होलिया, लैण गया था भैंस,

हां ए लैण गया था भैंस ।

गात्ती खुलगी, पल्ला उड़ग्या, मूंछ फड़ाके लैं,

हां ए मूंछ फड़ाक्के लैं ।

गलियां मैं या चरचा हो री, देखी मुछड़ नार,

हां ए देखी मुंछड़ नार ।

कोट्ठे चढ़कै रूक्के मारै कोय मत भेज्जो नहाण

हां ए कोय मत भेज्जो न्हाण ।"[1]

इक जकड़ी गीत में 'हास' स्थायी भाव है । पत्नी आलम्बन व पति आश्रय है पति द्वारा पत्नी के वस्त्र पहनना उद्दीपन है । भैंस का पति की आवाज़ पहचानकर भाग जाना और पति का पीछे भागना अनुभाव है । चूनर उड़ने पर मूंछों वाली नारी को देखकर लोगों का हँसना संचारी भाव है । इस प्र-कार गीत में हास्य रस पूर्णरूपेण अवतरित हुआ है ।

हास्य गीतों द्वारा समाज का स्वस्थ मनोरंजन होता है।ये मनुष्य की खुशहाली के द्योतक हैं ।

शान्त रस :-

भरत मुनि ने शान्त रस में ही सब रसों का अवसान माना है, किन्तु नाटक में स्थान नहीं दिया । लोक में ऐसे गीत भी प्रचलित हैं जिनमें संसार की निःसारता और अनित्यता का उल्लेख हुआ है । इस जीवन और जगत्व्यापी आपाधापी से त्रस्त मनुष्य का ध्यान अलौकिक सत्ता के प्रति आकृष्ट होता है । जीवन की सन्ध्या में गाये जाने वाले निर्गुण पद, हरजस अथवा

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 178

भजनों में शान्त रस की अवस्थिति मिलती है। हरियाणा में 'बाबा गरीबदास' के 'सबद' अत्यन्त प्रचलित हैं । प्रस्तुत भजन में यही भाव व्यक्त हुए हैं --

"सुणियो संत सुजान दिया हम हेल्ला रे ।
और जनम ब्हौतेरे होंगे, माणुस जनम दुहेल्ला रे ।
तूं जो कह्वै मैं लश्कर जोड़ूं, चलना तुझे अकेला रे ।
अरब खरब लौं माया जोड़ी, संग न चाल्लै धेल्ला रे ।
यों तो मेरी सत् की नवरिया, सतगुरू पार पहेल्ला रे ।
दास गरीब कह्वै भई साधो, सबद गुरू चित्त चेल्ला रे ।"[1]

भजनों में अधिकतर शान्त रस मिलता है । इनके विषय जगत् की नश्वरता, जीवन की अनित्यता और भौतिकता की क्षण-भंगुरता होते हैं ।

अद्भुत रस :-

किसी विचित्र वस्तु अथवा घटना को देखकर जो आश्चर्य का संचार होता है, उससे अद्भुत रस का प्रादुर्भाव होता है । इसका स्थायी भाव आश्चर्य है । एक जकड़ी गीत में अनेक विचित्र वस्तुओं की उद्भावना की गई है । पानीपत की सड़क पर बैठे मेंढ़क रस्सी बुन रहे हैं । बिल्ली दूध बिलोती है, कुत्ता सिर पर मटकी रखकर लस्सी लेने आया है । चिड़िया और मोर कृषि-कार्य में संलग्न हैं । कछुआ भैंस चरा रहा है, मादा मेंढ़क खेत में भोजन लेकर आई है, पहाड़ पर से उतरकर चींटी नौ मन तेल पी गई । उसके मरने पर निर्जीव शरीर में नौ मन बोझ हो गया । चमारों ने उसकी खाल में से लगभग सौ-जोड़े जूते बनवाये । इस आश्चर्य की उद्भावना करने वाले विचित्र गीत के बोल इस प्रकार हैं --

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 334

"झूंठ नहीं बोल्लूंगी झूंठ की सै म्हारै आण,
पाणीपत की सड़क ऊप्पर मिंडक बांटठै बाण ।।
बिल्ली तो म्हारै दूध बिलोवै,
कुत्ता आवै शीत लेण, सिर पर धरकै झाव ।
चिड़िया तो म्हारै करै लावणी मोर दांत्ती बे ।
झूंठ नहीं बोल्लूंगी झूंठ की सै म्हारै आण ।
कछुवा तो म्हारै भैंस चरावै पाली बण कै ।
मींडकी तो रोट्टी ले जा, बहू बण के ।
पहाड़ पर तै कीड़ी उतरी नौ मण पी गी तेल,
झूंठ नहीं बोल्लूंगी है सिर पर धररी रेल ।
मरी पड़ी कीड़ी मैं नौ मण होग्या बोझ,
घीसणियां पै घिसदी कोन्या, घींसण चले चमार ।
सौ जोड़े तो जुत्ती बणी, सांट्टे कई हजार ।
झूंठ नहीं बोल्लूंगी, झूंठ की सै महारै आण ।"[1]

वात्सल्य रस :-

लोकगीतों में वात्सल्य रस का व्यापक प्रसार है । जन्म विषयक गीतों में इसकी अधिकता मिलती है । यह रस स्नेह भाव पर आश्रित है। पुत्र जन्म के अवसर पर इसका उद्रेक द्रष्टव्य है --

"जनम लिया नन्दलाल लाला मेरा घूंटी मांगै जी राज"

पुत्री के ससुराल जाते समय गाये जाने वाले विदाई के गीतों में

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 177

इस रस के उदाहरण मिलते हैं । माता-पिता का हृदय वात्सल्य से भरा होता है ।

उपर्युक्त रसों के अतिरिक्त भक्ति रस की अवधारणा बांगरू लोकगीतों में हुई है, लेकिन वीभत्स, भयानक व रौद्र रस के गीत अत्यल्प हैं ।

: भाषा :

लोकगीतों का भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व होता है । भाषा किसी भी समाज की परिचायक होती है । लोकगीतों की भाषा में तत्सम व तद्भव शब्द उस भाषा को सौंदर्य प्रदान करते हैं । बांगरू बोली ने संस्कृत, उर्दू व अंग्रेजी के अनेक शब्दों को अपने सांचे में ढाल लिया है । ऐसे शब्द भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । इन गीतों में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका सम्बन्ध संस्कृत से है । जैसे, केश ̄/ केस

"छज्जे ऊप्पर मैं खड़ी

खड़ी सुकावूं केस"

इस गीत में 'केस' शब्द संस्कृत के 'केश' शब्द से विकसित हुआ है । संस्कृत के अतिरिक्त बांगरू लोकगीतों में अरबी - फारसी शब्दों का बाहुल्य मिलता है । सैंकड़ों वर्षों तक हमारे देश पर मुगलों ने शासन किया । हरियाणा के दिल्ली के निकटस्थ होने के कारण यहां की बोली पर मुगलों की भाषा का बहुत प्रभाव पड़ा । उदाहरणार्थ --

- "उतरे बन्ना घोड़िया साहेजादा बन्ना,
- चार तका दें गांठ का जे कोय लसकर जाय,
- आगै फौज मुगल पठान की, चंदो पकड़ लई ।

इन पंक्तियों में 'साहेजादा' और 'लसकर' क्रमश: 'शहजादा' और 'लश्कर' का विकृत रूप है । 'फौज मुगल पठान' उर्दू शब्द है ।

अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग प्रस्तुत हैं --

-- " टिकटिया काट दे बाबू, हमें बारात जाणा है ।

- बन्ना हो म्हारा हो लिया जैन्टर मैन

हात के घड़ी जेब मैं पैन ।"

'टिकटिया', 'जैन्टरमैन', क्रमशः 'टिकट' और 'जेन्टलमैन' से बने हैं । पैन भी अंग्रेजी शब्द है ।

लोकगीतों की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा होती है । उसमें चमत्कार, वक्रता, उक्ति वैचित्र्य और वाग्विदग्धता की आशा करना व्यर्थ है । हाँ, यदि अनायास ही इनका प्रयोग मिलता है तो वह संयोग मात्र होगा। इसीलिए ये गीत सरल-स्वाभाविक होते हैं । इनमें भावानुकूल शब्दों का प्रयोग होता है । वीर रस के वर्णन में भाषा ओजमयी होगी एवं उसमें महाप्राण ध्वनियों जैसे ट ड ढ घ का प्रयोग अधिक होगा । उदाहरण प्रस्तुत है --

"बोल्ला किसन गोपाल राव कर दोन्नूं जोड़ ।
सुणिये हिंद के बादसाह अंगरेज अमोड़ ।
तू जाता रहा जमीन तै आया तेरा ओड़ ।
बिना गुनात सरदार नै दी सूली तोड़ ।
सुण कैं जब अंगरेज के झाल उठी कठोर ।
यो गदबद गदबद करै कोण द्यो सूली तोड़ ।"

कोमल कान्त पदावली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

"मेरा डोल कुएं मैं लटकै सै,
मेरी पोरी पोरी मटकै सै,
मेरा झिलमिल करै सरीर,
परे नै हो लै नैं ।"

भाषा में लक्षणा और व्यंजना लाने के लिए मुहावरे अत्यन्त महत्त्व रखते हैं । ये लोक मेधा के परिचायक होते हैं । बांगरू लोकगीतों में प्रयुक्त मुहावरे प्रस्तुत हैं । हिन्दी में `पगड़ी की लाज रखना` मुहावरा सम्मान रखने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । बांगरू बोली में इसी अर्थ के लिए `साफा की ल्हाज रखना` मुहावरे का प्रयोग हुआ है --

"ऐसी होली खेलों मिरगानैणी,
म्हारा साफा की राखियो ल्हाज ।"

ऐसे अनेक मुहावरों का प्रयोग बांगरू लोकगीतों में हुआ है ।

"शब्द शक्तियां"

अभिधा :-

आचार्य मम्मट के अनुसार साक्षात् सांकेतित अर्थ, जिसे मुख्य अर्थ कहा जाता है, ~~जिसे=मुख्य=अर्थ~~ उसका बोध कराने वाले व्यापार को अभिधा व्यापार अथवा शक्ति कहते हैं । साहित्य में इसका अत्यन्त महत्त्व है। लक्षणा व व्यंजना इसी पर आधारित हैं । विद्वानों ने अभिधा को उच्च धरातल पर आसीन किया है । पुत्री जन्म का वर्णन एक लोकगीत में अभिधा के माध्यम से प्रस्तुत है --

"म्हारे जनम मैं बाज्जै ठेकरे, भाई के मैं थाली,
बुड्डा बी रोवै बुढ़िया बी रोवै रोवै हाली पाली ।"

लक्षणा :-

यह शब्द शक्ति साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । इसमें मुख्य अर्थ बाधित होकर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ का बोध होता है । जिस शब्द से लक्षणा का अर्थ बोधित हो वह `लक्षक` एवं बोधित अर्थ लक्ष्यार्थ होता है। लक्षणा के लिए तीन बातें आवश्यक हैं - मुख्य अर्थ में बाधा, लक्ष्यार्थ व मुख्यार्थ में सम्बन्ध एवं लक्ष्यार्थ का किसी प्रयोजन या रूढ़ि के कारण जान लिया जाना ।

लोकगीतों में लक्षणा के अनेक उदाहरण मिलते हैं । द्रष्टव्य है एक गीत जिसमें मन की संवेदन-विहीनता को नायिका ने लक्षणा द्वारा प्रकट किया है --

"मन की तै अर्थी बंधी पड़ी,
आंख्या मैं लागी हाय झड़ी ।"

व्यंजना :-

अभिधा और लक्षणा शक्तियां जब किसी अर्थ को स्पष्ट नहीं कर पाती तब व्यंजना-शक्ति का सहारा लिया जाता है । इसके दो भेद

होते हैं -- शाब्दी व्यंजना व आर्थी व्यंजना । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत में क्रोधी चाहे किसी ओर झपटे या न झपटे उसका यह कहना ही कि "मैं उसे पीस डालूंगा" क्रोध की व्यंजना के लिए काफी होता है । ----- वाणी के प्रसार की कोई सीमा नहीं, उक्तियों में जितनी नवीनता और अनेकरूपता आ सकती है या भावों का जितना अधिक वेग व्यंजित हो सकता है उतना अनुभव कहलाने वाले व्यापारों द्वारा नहीं ।"[1]

व्यंजना शब्द शक्ति द्वारा एक गीत में हरियाले बन्ने को चेतावनी दी गई है --

"हरियाला बन्ना ! काच्ची कली मत तोड़िये,
माल्न देगी गालियां ।
हरियाला बन्ना ! पाकण दे रस होण दे,
नवा ढूंगी डालियां ।"

एक अन्य गीत में राधा-कृष्ण के लड़कर अलग होने व फिर मिलने का वर्णन व्यंजना द्वारा हुआ है --

"ए जी ! एक चणा दोय दाल, दले पीछे ना मिलै भगवान् ।
ए जी ! दही दूजे दूध, पटे पीछे ना मिलै भगवान ।
ए जी ! एक पुरुष दूजी नार, लड़े पीछै ना मिलै भगवान्
ए जी ! एक चणा दोय दाल पिसे पीछै रल मिलै भगवान् ।
ए जी ! एक दही दूजो दूद, बिलोये पीछै मिल जै ए भगवान् ।
ए जी ! एक पुरुष दूजी नार, मनाये पाछै मन जै ए भगवान् ।"

1- चिन्तामणि :- आ॰ रामचन्द्र शुक्ल, 'भाव या मनोविकार' निबन्ध, पृ० 3,4

﴾अलंकार - योजना﴿

भाषा को सुन्दर बनाने वाले विधानों को अलंकार कहते हैं ।[1] डॉ० नगेन्द्र अलंकारों को बाह्य शैली के उपकरण के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक आधार भी मानते हैं । उनका मत है कि लोककाव्य में अलंकार योजना अनुभूति और अभिव्यक्ति की अन्विति से भिन्न तथा अभ्यास या शास्त्र से सीखी हुई विधा नहीं है ।[2]

मानव स्वभावत: सौंदर्यप्रिय है । काव्य रचना में अलंकार योजना उसकी इसी रूचि का परिणाम है । काव्य के क्षेत्र में अलंकारों का विशेष महत्त्व है । संस्कृत साहित्य के प्राचीन आचार्यों यथा भामह, दण्डी, उद्भट एवं रूद्रट ने अलंकार को काव्य की आत्मा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । आचार्य भामह मानते हैं कि जैसे सुन्दर मुख वाली स्त्री आभूषणों के बिना शोभित नहीं होती, उसी प्रकार कविता अलंकारों के अभाव में फीकी लगती है ।[3]

आचार्य दण्डी काव्य के शोभादायक धर्मों को अलंकार मानते हैं ।[4] कविता की भाँति लोकगीतों में भी कोमल भावों की अभिव्यक्ति होती है । इसमें हृदय के उद्गार सर्वथा मुक्त रूप में विचरण करते हैं । लोककवि अलंकारों की योजना पर सोच-विचार नहीं करता, लेकिन फिर भी उसके गीतों में कहीं-कहीं अलंकार विधान मिलता है । लोककवि द्वारा प्रयुक्त उपमानों में मौलिकता

1- काव्य मीमांसा - रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', पृ० 3
2- रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, पृ० 95
3- काव्यालंकार, भामह - 1/13
4- काव्यादर्श - दण्डी

होती है । ये उपमान लोक में से लिये गये होते हैं ।

लोकगीतों में अलंकार के दोनों प्रकार शब्दालंकार व अर्थालंकार, का प्रयोग अनायास ही मिलता है ।

शब्दालंकार :-

काव्योचित वर्णनीय विषय के वर्णन की भाषा को चातुर्य चमत्कार के साथ सजाने के उस ढंग को कहते हैं, जिसमें भाषा में मनोरंजक रुचिरता व प्रतिभा प्रतिभात होती है ।[1] बाँगरू लोकगीतों में निम्नलिखित शब्दालंकारों की योजना ~~कूक~~ मिलती है --

अनुप्रास :-

अनुप्रास अलंकार के अनेक भेद प्राप्त होते हैं -- छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रृत्यनुप्रास, अन्त्यनुप्रास आदि ।

छेकानुप्रास :-

जहाँ पर अनेक वर्णों या व्यंजनों की एक बार आवृत्ति अथवा समता होती है, वहाँ छेकानुप्रास होता है । जैसे--

'बागों बंगला छिवादे मेरे मारूजी'

'बाद्दल बिजली भंवर हो मैं बणूँ'[2]

यहाँ 'बागों बंगला' व 'बाद्दल- बिजली' में 'ब' वर्ण की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ छेकानुप्रास है ।

1- काव्य मीमांसा, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 63

2- हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डाॅ0 शंकरलाल यादव, पृ0 220

वृत्यानुप्रास :- जहां पर एक वर्ण अथवा अनेक वर्णों की क्रमानुसार अनेक बार आवृत्ति होती है । वर्णों में स्वर की समानता आवश्यक नहीं है । उदाहरण द्रष्टव्य हैं --

"छलियाई नै छल करया, छल कर लिया सै बुलाय,
छलकरां ना तो के करां, थम छाया परदेस।"

-- --

"जब वो काली पाणी नै वाल्ली,
काले काले कलसे उनकी काली हैं लुगाइयां ।"[1]

श्रुत्यनुप्रास :- जहां पर किसी छन्द या पंक्ति में एक ही स्थान, जैसे कंठ, तालु आदि से उच्चरित वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है, वहां श्रुत्यनुप्रास होता है --

"परस बठन्ता अपणा बाबल बूझ्या,
कहो तो कात्तक न्हात्यां हो राम ।"

-- --

पीसणा पीसती अपणी भावज बूजी,
कहो तो कात्तक न्हा त्यां हो राम ।"[2]

अन्त्यानुप्रास :- छन्द के अन्तिम चरण में स्वर या व्यंजन की समता अन्त्यानुप्रास कहलाती है । प्राय: लोकगीतों में लय बनाने के लिए तुकबन्दी की जाती है --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 222

2- वही, पृ0 239

"मध जोबन आया फागन मैं,
फागन बी आया जोबन मैं,
झाल उठैं सै मेरे मन मैं,
जिसका बार न पार, री सजनी
फागन के दिन चार ।"[1]

वीप्सा अलंकार --

जहां पर शब्द की पुनरूक्ति द्वारा अन्त की कोई विरक्ति या घृणा का भाव व्यक्त किया जाता है, वहां वीप्सा अलंकार होता है ।

"बांचत-बांचत हुई बेहाल
आंख्यां ते आंसू सारती ।"

श्लेषालंकार :- श्लेष को कुछ आचार्यों ने शब्दालंकार व कुछ ने अर्थालंकार माना है । कई विद्वान् इसे उभयालंकार मानते हैं । जहां दो या दो से अधिक अर्थ देने वाले शब्दों का प्रयोग हो, वहां श्लेष अलंकार होता है ।

"हरियाले बन्ने । काच्ची कली मत तोड़िये,
माली नै देगी गालियां ।"[2]

यहां कच्ची कली अल्पव्यस्क`नायिका` व `कच्ची कली` के लिए प्रयुक्त हुआ है, और माली, माली व पिता के लिए ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 246
2- वही, पृ0 188

अर्थालंकार

काव्य में अर्थ का चमत्कार उत्पन्न करने वाले अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं । इसके अनेक भेद हैं । लोकगीतों में सभी अलंकारों के उदाहरण मिलना कठिन है तथापि जिन प्रमुख अलंकारों की अवस्थिति मिली है, उनका विवेचन प्रस्तुत है ।

उपमा अलंकार :-

जहाँ प्रस्तुत व अप्रस्तुत के बीच गुण सादृश्य प्रतिपादित किया जाता है, वहाँ उपमा अलंकार होता है । इसके चार प्रमुख तत्व होते हैं -- उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक । उपमेय वह वस्तु है जो प्रस्तुत या वर्ण्य है । उपमान अप्रस्तुत वस्तु होती है जिससे समता की जाती है । उपमेय और उपमान का सादृश्य जिस गुण के आधार पर होता है उसे साधारण धर्म कहते हैं । जिस शब्द से उपमेय और उपमान के बीच समता स्पष्ट की जाती है, उसे वाचक कहते हैं । लोकगीतों में इन सभी तत्वों को सर्वत्र ढूंढ निकालना कठिन है । लोकगीतों के उपमान लोक में से लिये गये हैं । आँखों की उपमा नींबू की फांक से देना कितना सटीक है --

"मोट्टी - मोट्टी थारी अँखियाँ जीजा जी,
नींबू बरगी फांक ।"[1]

वर की उपमा लोककवि ने चन्द्र से दी है --

"सखी हे तेरा बन्दड़ा, चन्दा की हुणियार
म्हुं बटवा-सा, आँख डली सी,
बत्तीसी खिल-खिल जाय ।"[2]

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 320
2- वही,

मुंह की तुलना लोक प्रचलित उपमान 'बटुवे' से देना स्वाभाविक है । एक अन्य गीत में पति के दुबलेपन व लम्बेपन को पतंग की डोर से दर्शाया गया है --

"राजा पतले रे, राजा पतले रे,
जिसी पतंग की डोर ।"[1]

रूपक अलंकार :-

रूपक अर्थात् रूप धारण करना । जब उपमेय उपमान का रूप धारण कर लेता है, तब वहां रूपक अलंकार होता है । लोकगीतों में इसका यत्र-तत्र सुन्दर प्रयोग हुआ है । यद्यपि रूपक संक्षिप्त हैं, लेकिन कहीं-कहीं इनके द्वारा गंभीरता को व्यंजित किया गया है ।

एक रूपक द्वारा जीवन रूपी वृक्ष की मधुर व मर्मस्पर्शी दार्शनिक व्याख्या की गई है --

"पत्ता टूट्या डाल सै, वों तो ले गई पवन उड़ाय ।
इब के बिछुड़े कद मिलैं, वो तो दूर पड़ै सै जाय ।"[2]

पत्ता प्राण का, डाल जगत् का और पवन मृत्यु की प्रतीक है ।

पति के दुर्व्यवहार का रूपक लोक प्रचलित कैर की कांटेदार झाड़ी से दिया गया है, जो न फल देता है न छाया, अपितु कष्ट देता है । गीत के बोल इस प्रकार हैं --

"के तूं कैर कटीलड़ा, के तेरी गैह्री छां "

उत्प्रेक्षा अलंकार :- जहां उपमान व उपमेय में संभावना दिखाई जाय, वहां उत्प्रेक्षा अलंकार होता है । इसके अनेक उदाहरण लोकगीतों में मिलते हैं । एक विवाह गीत में वर के उठने में सूर्य के उदय का, वर की गति में हाथी की

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 321
2- वही

झूलती चाल का और उसकी सुन्दर वाणी में तोते की बोली का आरोप हुआ है[1] --

"उठा ए बन्दड़ा अंग मरोड़, जणों कुल में सूरज ऊगिया,
बनड़े की चाल अध्यक सरूप, जणों कोय हस्ती आवै झूमता ।
बनड़े की बोली अध्यक सरूप, जणों कोय बागां बोल्या सूवटा ।"

सन्देह अलंकार :-

जब उपमेय में अन्य किसी वस्तु का संशय उत्पन्न हो जाता है और उपमेय में किसी उपमान का निश्चय नहीं हो पाता, तो संदेह अलंकार होता है । नायिका को हुचकी आ रही है । वह समझ नहीं पाती कि यह हुचकी अपच के कारण आ रही है, प्रिय के याद करने पर आ रही है अथवा राम ने उसे स्मरण किया है --

"यो हुचकी क्यूं आवै सै राम यो हुचकी ।
के यो कवजी की हुचकी सै, जो सारी हाण सतावै सै
--- --- --
बिछड़े सात्थी की हो ना कदे याद करण की हुचकी ।
-- -- --
अच्छा ते फिर के बेरा होगी मरणे की यो हुचकी ।[2]

स्मरण अलंकार :-

जब किसी वस्तु को देखकर या सुनकर अन्य वस्तु का स्मरण हो जाय वहां स्मरण अलंकार होता है । स्मरण अलंकार से पूरा लोक-साहित्य भरा पड़ा है । कभी नायिका को प्रिय की किसी वस्तु द्वारा याद

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 321
2- वही, पृ0 262

आ जाती है तो कभी कन्या को पीहर की । विधुर अपनी मृता पत्नी के आभूषणों-वस्त्रों को देखकर उसे स्मरण करता है --

"दाम्मण चुदंड़ी धरे सैं, एक बर पैहर दिखाय प्यारी ए ।
पाणी की दोघड़ रीति धरी सै, इक बर पनवट जाय प्यारी ए
गैहणे का डिब्बा भर्‌या धर्‌या सै, इक बर पैहर दिखाय प्यारी ए[1]

विनोक्ति अलंकार :- किसी वस्तु के बिना जब कोई वस्तु दु:खदायी अथवा अशोभनीय लगती है, वहां विनोक्ति अलंकार होता है । नायिका को फाल्गुन का आगमन प्रिय के बिना दु:खदायी लगता है --

"जब साजन गये परदेस
मस्ताना फागण क्यूं आया ।"[2]

पुत्र के अभाव में वन्ध्या स्त्री दु:खीहै --

"इक दु:ख री मैंन्नै कोख का,
कोय या मेरे मारे सै मान ।"[3]

पुत्री के बिना माता-पिता का घर सूना हो जाना है । प्रिय सखी के चले जाने से सखियों में उदासी छा जाती है --

"सात्थण चाल पड़ी री मेरे डब डब भर आये नैण ।"

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 332
2- वही, पृ० 247
3- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ० 14

विभावना अलंकार

विभावना अलंकार में कारण कार्य सम्बन्धी वैचित्र्य रहता है । प्राय: कारण के बिना या पूर्ण उपस्थित किये बिना कार्य उत्पत्ति का वर्णन इस अलंकार में होता है । एक भजन में उदाहरण प्रस्तुत है --

"धरती बिन माली बाग लगावै,
बिन सींचै रस पौंह्चावै ।
बिन डाली बिन पात फूल कै,
बिन फल चाखै स्वाद । "

बिना धरती व पानी के माली बाग लगाता है और बिना फल-फूल के उनको चखता है ।

उल्लेख अलंकार :-

जब एक ही व्यक्ति अथवा वस्तु का तात्पर्य भेद से अनेक रूपों में वर्णन किया जाये, वहां उल्लेख अलंकार होता है ।

"ए जी । एक चणा दोय दाल,
दलें पीछै ना मिलै भगवान् ।
ए जी । एक दही दूजे दूद,
पटे पीछै ना मिलै भगवान् ।
ए जी एक पुरुष दूजी नार,
लड़े पीछै ना मिलै भगवान् ।"[1]

यहां पृथकता के भाव को अनेक रूपों में वर्णित किया गया है ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 219

दृष्टान्त अलंकार :-

जहाँ दो समान धर्म वाली वस्तुओं में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से तुलना की जाती है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है । पीहर से आई ओढ़नी में जुड़े घुंघरूओं की ध्वनि नायिका को माँ के बोलीं के सदृश मधुर लगती है :-

"अल्लै तो पल्लै हे माँ मेरी घुंघरू जी,
ए जी कोय बिच मायड़ के लाड"

और पीहर में वह खिलड़ी में घी सदृश रहती है --

"पीहर मैं बेट्टी हे माँ मेरी न्यूं रहवै जी,
ए जी कोय ज्यूं खिलड़ी बिच घी ।"

इसके विपरीत वह ससुराल में इस प्रकार रहती है मानो कढ़ाई में तेल खौल रहा हो --

"सासरे मैं बेट्टी हे माँ न्यूं रहवै जी,
ए जी कोय ज्यूं रै कढ़ाई बिच तेल ।"[1]

उक्ति वैचित्र्य :-

किसी बात को सीधे शब्दों में न कहकर किसी उक्ति के द्वारा स्पष्ट किया जाये, वहाँ उक्ति वैचित्र्य होता है । लोकगीतकार कहीं कहीं विशेष अर्थों को उक्ति के माध्यम से व्यक्त करता है । वन्ध्या से सम्बन्धित एक उक्ति लोक में प्रचलित है कि सोना-चाँदी माँगने से उधार मिल सकते हैं; लेकिन पुत्र नहीं --

"सोन्ना र चाँद्दी मिलै ए उधारे,
कोय पूत उधार न देय ।"

1- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 39

उलटबांसियां :-

लोकगीतों में उलटबांसियां प्रचलित हैं, जिनकी शैली सन्ध्या-भाषा है --

"काला हिरण कोल्हू चलै, गोह गंडीलो देय ।
कछुवा बैठा गुड़ करे, मिंढक झोक्के देय ।।"[1]

व्याजोक्ति अलंकार :-

किसी व्याज के माध्यम से जहां अपनी बात कही जाय, वहां व्याजोक्ति अलंकार होता है । रतजगे में जाकर आई नायिका से पति हाथों में मेंहदी न रचने का कारण जानना चाहता है --

"गोरी न तेरे हात्तां मैंदी रच रई,
ना तेरे नैणां नींद ।"

पत्नी व्याजोक्ति के माध्यम से असली कारण (प्रिय से मिलना) न बताकर कहती है --

"राज्जा मैंदी की बिरियां सो गई,
न्यूं ना नैणां नींद ।"

अतिशयोक्ति :-

अत्यधिक बढ़ाचढ़ा कर किया जाने वाला वर्णन अतिशयोक्ति होता है । दूल्हे के बल का वर्णन एक 'बन्ना' गीत में अतिशयोक्ति द्वारा हुआ है ।

"चलती मोटर नै डाट्टै, बाणां तै निसान्ना काट्टै ।
सांक्कल तोड़ै मा-री हमारा बनड़ा ।"

पुत्री के जन्म से व्याप्त अंधकार का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है --

---

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० 257

"जिस दिन लाडो तेरा जनम हुआ था,

हुई ए बजर की रात ।

चौसठ दिवला जोय धर्या था,

तो बी घोर अंधेर ।"

अनगिनत दीप प्रज्वलित करने पर भी कन्या जन्म से फैला सूचीबेध अन्धकार जस का तस था । लोकगीतों में अतिशयोक्ति व्यक्त भाव को सशक्त करती है ।

::::

(बिम्ब विधान)

काव्य अनुभव की बिम्बात्मक स्थिति है । बिंब विधान काव्य में अनिवार्यतः रहता है । इससे काव्य की विशेषताओं का मूल्यांकन होता है । बिम्बों के द्वारा कवि वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विचार, भाव आदि को साकार करता है । 'बिम्ब' काल्पनिक या वास्तविक वस्तुओं या घटनाओं के रंग, ध्वनि, गति और आकार प्रकार के पूर्ण चित्र का नाम है ।[1] बिंब अप्रस्तुत की मानसिक रूप रचना है । "काव्य बिंब एक प्रकार का ऐन्द्रिय शब्द चित्र है जो कुछ अंश तक अलंकृत होता है -- जिसके साथ कोई मानवीय संवेग जुड़ा रहता है तथा जो पाठक के मन में वैसा ही संवेग जगा सकता है ।"[2]

बिम्ब योजना के मुख्य कार्य चार प्रकार के हैं -- काव्यार्थ को पूर्णतया स्पष्ट करना, वस्तु या घटना को प्रत्यक्ष करना, रूप का गुण को हृदयंगम कराना और भाव को सम्प्रेषित या उत्तेजित करना ।[3]

लोकगीतों में यद्यपि बिंब योजना का महत्त्व है, लेकिन इसकी योजना में लोककवि ने प्रयास नहीं किया है ।

दृश्य बिम्ब :- जहां किसी वस्तु को स्पष्ट करने के लिए ऐसे बिम्बों की योजना की जाती है, जो उस वस्तु को हमारे सामने पूर्णतः प्रत्यक्ष कर देते हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

1. Stiphon J.Brown- A World of Imagery, P-5/112
2. C.J.Leuis - Boetic Image, P-22.
3. काव्य मनीषा, डॉ0 भगीरथ मिश्र, पृ0 285

"कुआं की पणिहारणी म्हारे घर की कुसल बताय,
बालक झूल्लै पालणै कोय जोय रसोइयां जी बीच ।"[1]

इन पंक्तियों द्वारा दृश्य आंखों के आगे स्पष्-ट हो जाता है कि बालक पालने में झूल रहा है और पत्नी रसोई में व्यस्त है ।

गति बिम्ब :- रूपाकार के चित्रण को अधिक सजीव बनाने के लिए गति बिम्ब का प्रयोग होता है । जीजा के आने की प्रसन्नता में साली कूद रही है --

"जीजा आया मैं सुण्या, कूदूं नौ नौ हाथ ।"[2]

नाद बिम्ब :- नाद बिम्ब लोकगीतों में अपनी सम्पूर्ण अनुरणन क्षमता के साथ उपस्थित हैं --

"म्हारे जनम में बाजैं ढेकरे,
भाई के मैं थाली ।"

-- --

"म्हारै बाज रह्या थाल, हुआ नन्दलाल ।"

पुत्र जन्म के शुभ अवसर पर थाली बजाकर प्रसन्नता व्यक्त की गई है । थाली बजाना कितना स्वाभाविक है । वर्षा ॠतु में पानी बरसने की ध्वनि का नाद बिम्ब प्रस्तुत है --

"छिन्न-मिन्न बरसे मेह"[3]

-- --

"री रिमझिम रिमझिम अम्मां मेहा री बरसै
बादलड़ी झड़ लाई ए ।"[4]

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 222
2- हरियाणा के लोक गीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 35
3- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 132
4- हरियाणा के लोक गीत, राजा राम शास्त्री, पृ0 41

समय के अन्तराल को प्रस्तुत करने वाले बिम्ब --

समय के अन्तराल को दर्शाने वाले सुन्दर बिम्बों की संयोजना लोक गीतों में हुई है । बाल्यावस्था में नायिका का विवाह हुआ । विवोहोपरान्त पति परदेस चला गया । लम्बे समय के उपरान्त जब वह लौटा तो नायिका उसे पहचान न सकी । लोककवि के बिम्ब की सुन्दरता द्रष्टव्य है --

"जिब तो उमर नदान थी रे,
इब हुआ ज़वान्नीं का जोर रे,
इन्नै नहीं पिछाण्या खेत में ।"[1]

स्वाद बिम्ब --

इसमें जिन बिम्बों की सृष्टि की जाती है उनका सम्बन्ध जिवहा की आस्वाद शक्ति से रहता है --

"या कुण करै कढ़ाइयां, या कुण करै कढ़ाइयां,
या कुण फेरै चमचा, मीठी लागै पंजीरियां ।"[2]

सान्द्र बिम्ब :- लोकगीतों में एक बिंब के आधार एक से अधिक हो सकते हैं। जैसे :-

"भाज्जूं तो मैं ढह पड़ूं, हेल्ला दिया ना जाय"[3]

इसमें गति बिंब 'भाज्जूं' और नाद बिंब 'हेल्ला' का समावेश एकसाथ हुआहै ।

1- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 70
2- वही, पृ0 17
3- वही, पृ0 41

ज्यामितीय बिंब :-

कन्या कौवे को संदेशावाहक बनाकर अपने पिता के घर की स्थिति बताती है --

"ऊँची सी मैढ़ी लाल किवाड़ी,
वा घर कहिये मेरे बाप का ।"[1]

कन्या के पिता का घर ऊँचे टीले पर स्थित है ।

प्राकृतिक बिम्ब :-

एक ॠतुगीत में श्रावण मास की बरसात का चित्र उपस्थित किया गया है --

"री रिमझिम रिमझिम अम्मा मेहा री बरसै,
बादलड़ी झड़ लाइयां ।"[2]

लोक सांस्कृतिक बिम्ब --

त्यौहारों - पर्वों के वर्णन में इस बिंब की अधिकता होती है । देवी की स्तुति का चित्र उपस्थित है --

"माता कीं नै तेरा बाग लगाइयां,
कीं नै तेरा सींच्वा सै पेड़,
सोवैं-सोवै हे मिजाजण माता नींद मैं ।"

इस प्रकार लोकगीतों में सामाजिक, सांस्कृतिक व जीवन के बिम्बों का वर्णन मिलता है । लोक गीतों में इन बिम्बों का सहजता से वर्णन हुआ है ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ0 शंकरलाल यादव, पृ0 259
2- हरियाणा के लोकगीत, राजाराम शास्त्री, पृ0 4।

: प्रतीक :

प्रत्येक साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग होता है । कबीर,सूर,तुलसी, जायसी,प्रसाद,निराला आदि कवियों ने भी अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग किया है । बांगरू लोकगीतकार प्रतीक-योजना में किसी से पीछे नहीं है । प्रतीक लोक व्यवहार में सदा से प्रयोग में आते रहे हैं । यह एक प्रकार से अलंकार का दूसरा रूप है । सादृश्य के अभेदत्व का घनीभूत रूप प्रतीक है ।

सामान्यतया रूप,गुण तथा व्यापार के सादृश्य के कारण जब कोई वस्तु, चरित्र या व्यापार किसी अप्रस्तुत वस्तु, चरित्र या व्यापार के रूप में पहले का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रकट की जाती है, तब यह प्रतीक होती है।[1] बांगरू लोकगीतों में निम्नलिखित प्रतीकों की योजना मिलती है ।

1- प्राकृतिक प्रतीक :- इन प्रतीकों के अन्तर्गत प्रकृति के बीच से लिये गये पदार्थों या व्यापारों का प्रयोग इस प्रकार से होता है कि उसमें अन्य भावनाओं विचारों, व्यापारों का संकेत मिलता है । एक बांगरू गीत में नायिका अपने भाई के समक्ष श्वसुर पक्ष के सदस्यों का प्रतीकों के माध्यम से वर्णन करती है । द्रष्टव्य है गीत --

"सासू तो रे बीरा चूल्हे की आग,
नणद भादों की बीजली ।

राजा तो रे बीरा मेंहदी का पेड़,
कदी रचै कदी ना रचै ।"

1- काव्य मनीषा, डॉ0 भगीरथ मिश्र,पृ0 298

2- सांस्कृतिक प्रतीक :-

जहां जीवन के सांस्कृतिक पक्षों से सम्बन्धित वस्तुओं व व्यापारों का प्रयोग प्रतीक रूप में हो वहां सांस्कृतिक प्रतीक होता है । गांधी जी की मृत्यु पर लोककवि ने चन्द्र को उनका प्रतीक बनाकर तारों को जनता का प्रतीक बनाया । प्रस्तुत है गीत --

"भारत के चन्दरमा छिपग्ये, बिलख रये तारे ।

नत्थू नीच मरहटा था जिनैं गांधी जी मारे।।"

3- ऐतिहासिक प्रतीक :-

इतिहास के चरित्रों और घटनाओं के माध्यम से जब किसी भाव या विचार को व्यक्त किया जाता है, तो वहां ऐतिहासिक प्रतीक होता है ।

विवाह गीतों में श्री कृष्ण को दूल्हे का प्रतीक माना जाता है । दुल्हन की प्रतीक रूकमणि मानी गई है--

"इस पेड़ के नीचे आओ हे रूक्मण, आयो हे रूक्मण

गलियां में किरसन मुरारियां

अब कैसे आऊँ स्याम सुन्दर, मदन मोहन

बाबाजी मण्डप छाइयां ।"

4- जीवन व्यापार सम्बन्धी प्रतीक :-

जिन प्रतीकों के अन्तर्गत नित्यप्रति जीवन में देखे-सुने पदार्थों, व्यापारों तथा दैनिक घटनाओं को प्रतीक बनाकर भाव व्यक्त किया जाता है, वहां जीवन व्यापार सम्बन्धी प्रतीक प्रयुक्त होता है । इस प्रतीक के अनेक उदाहरण बांगरू लोकगीतों में मिलते हैं । एक गीत में वृद्ध शरीर के लिए पुराने चरखे को प्रतीक बनाया गया है । गीत प्रस्तुत है --

"बहु अर बेटूटा न्यूं बतलाये ओ रामा,

यू रै पुराणा चरखा कद रै छिजैगा"

इसी भाव साम्य का गीत कनौजी बोली में मिलता है, जिसमें शरीर के लिए 'पिंजरा' और आत्मा के लिए 'पंछी' को प्रतीक बनाया गया है --

"बड़ोई जतन करि पिंजरा बनाओ,
तामें घने घने तार लगाये जी,
तुला के कागत पै पिंजरा मढ़ाय दओ
मेरो 'पंछी' ना कहूं उड़ जाय जी ।"

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्रतीकों द्वारा लोकगीतों में कवित्व भरने का सफल प्रयास किया गया है ।

"शैली"

बांगरू लोकगीतों की शैली सरल होती है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता पुनरावृत्ति है । यह पुनरावृत्ति शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों आदि कई रूपों में दिखाई देती है । यह प्रभाव को बढ़ाने और संबद्ध भावों को जागृत करने में सहायक होती है । इससे गीत में संगीतात्मकता का आविर्भाव होता है । उदाहरण प्रस्तुत है --

"जैरी माता तू सतजुग की कहिये राणी
रसते में बाग लगाया माता सतजुग की ।
पाछा तो फिरके देखो रे लोगो,
आम्ब अर नींबू झड़न लागे माता सतजुग की ।"

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है--

"कोड्डी-कोड्डी बगड़ बुहारूँ दर्द उठा से कमर मैं
हो राजीड़ा इब ना रहूँगी तेरै घर मैं ।
द्योर जिठाणी बोल्ली ठोल्ली मारै जिब क्यों सोवै थी बगल मैं
हो राजीड़ा इब ना रहूँगी तेरै घर मैं ।"

कहीं कहीं इन लोकगीतों में क्रमिक विकास काज्ञान कराने के लिए भी शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है --

"साढ जे मास सुहावना सुआ रे ।
जे घर होता हर को लाल, मैं हाली संदावती ।
सामण जे मास सुहावना सुआ रे ।
जै घर होता हर को लाल, मैं हिंदो घलांवती ।
भादूड़ा जे मास सुहावणा सुआ रे ।
जै घर होता हर को लाल, मैं गूगा मनावती ।"

इस प्रकार लोकगायक जब तक एक एक करके सभी मास गिना नहीं देता, चैन से नहीं बैठता । शिष्ट साहित्य की लिखित परम्परा में संभवत: यह शब्दों की मितव्ययिता कही जायेगी, लेकिन लोक में यह सौंदर्य है, भाव की पुष्टता में सहायक है ।

बांगरू लोकगीतों की शैली को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । वर्णनात्मक और भावात्मक शैली ।

वर्णनात्मक शैली -- बांगरू लोकगीतों में यह शैली अधिक मिलती है । संस्कार गीतों में, प्रकृति गीतों में, झूला गीतों में यह शैली अपनाई जाती है । इस शैली में नाटकीय तत्वों का समावेश मुख्य रूप से हुआ है । प्रश्नोत्तर अथवा संवाद रूप में घटना का विवरण प्रस्तुत करना लोकगीतों में नाटकीय शैली को जन्म देता है । लोक की जिज्ञासा वृति, अभिव्यक्ति की भावना और बोलचाल के माध्यम से विषय को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति के कारण बांगरू लोकगीतों में स्वाभाविक रूप से इस शैली का समावेश हो जाता है । उदाहरणार्थ घुड़चढ़ी के एक गीत में माता एवं बहन अपने लाडले बन्ने के प्रति अपने अपने संबंध की महत्ता का प्रदर्शन करती हैं ।

माता -- दूधी की मारूं धार, गुमानी बेटा मौंनै कदे भूल नहीं जा
याद दिलावूं सूं अक आवैगी नई बहू राणी बेट्टा भूल नहीं जा

बहन -- गुड़्या मैं मारी मन्नै लात,
बीरा खिलाया दिन रात, बीरा भूल नहीं जा ।

प्रश्नोत्तर शैली का एक गीत द्रष्टव्य है --

बेटी -- सास मेरी नै दाणे भून्ने, खील्लां चुग ली आप ।

मां -- मेरी क्यै रोड़्यां जोग्गी थी ?

बांगरू लोकगीतों में बारहमासा गीत भी वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत आते हैं जिसमें कृषक जीवन का और प्रकृति का वर्णन होता है ।

2- भावात्मक शैली --

भावात्मक गीतों की मार्मिकता सावन के गीतों, विदा गीतों, फागु, बिरहा आदि में देखी जा सकती हैं । इस शैली में भाव-प्रवणता अधिक देखने को मिलती है । अभिव्यक्ति की मार्मिकता और भावों की सुकुमारता के लिए निम्नलिखित पंक्तियां कितनी सशक्त हैं --

"कैसे धण ठाढ़ी अनमनी रै, अर कैसे तिरा मैला भेस ।
कै तेरी सासू करकसा रै, ए जी कै बाले भरतार ।
रै मेरी बावली मल्होर ।
रतन कटौरी घी जलै रै, बीरा कोय चूल्हे जलै रै कसार ।
घूंघट में तै गोरी जलै, जा के याणे हों भरतार ।
रै मेरी बावली मल्होर ।"

निष्कर्षत: बांगरू लोकगीतों की शैली के विषय में कहा जा सकता है कि इसमें भाव और वर्णन का समन्वय सा देखा जा सकता है । किसी गीत में भाव प्रधान है और किसी में वर्णन लेकिन दोनों की अवस्थिति अवश्य होती है । वस्तुत: इन गीतों की शैली वर्णन तथा भाव मिश्रित हैं ।

(छन्द विधान)

छन्द योजना का काव्य और संगीत दोनों दृष्टियों से विशेष महत्त्व है । छन्द भावों को आच्छादित करते हैं, इसीलिए इन्हें छन्द कहा जाता है । प्रातिभ साहित्य में छन्द योजना का पूरा ध्यान रखा जाता है, लेकिन लोक कवि गीतों को रचते समय छन्द योजना की ओर ध्यान नहीं देते । पं० रामनरेश त्रिपाठी के कथन "इसमें छन्द नहीं केवल लय है"[1] का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि लोकगीतों में छन्दों का नितान्त अभाव होता है । उनका तात्पर्य है कि लोकगीतों में छन्दों पर आग्रह नहीं किया जाता । वस्तुत: लोकगीत की रचना अशिक्षित तथा छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ लोगों के द्वारा होती है । इसी कारण इनमें मात्रा और गुणों के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता । ये पिंगल शास्त्र के नियमों से मुक्त हैं । इनमें लय और भाव की प्रधानता होती है ; छन्द उनके साधन मात्र हैं । बांगरू लोकगीतों में निम्नलिखित छन्दों का प्रयोग मिलता है ।

1- सोहर :- शिशु जन्म के समय गाये जाने वाले गीत सोहर कहलाते हैं । लोक कवि गीतों की रचना करते समय छन्द विधान पर ध्यान नहीं देते, इसीलिए कहीं एक पंक्ति बड़ी हो गयी है तो दूसरी छोटी । उदाहरण प्रस्तुतहै --

"म्हारे आंगणा बाज्जा बाजियो जी म्हाराज,
मैं तै नित उठ लिप्पां आंगणों ।"

इस गीत की प्रथम पंक्ति में 17 अक्षर हैं और दूसरी में 12 अक्षर हैं । इसी प्रकार तीसरी व चौथी पंक्ति में अन्तर है । एक अन्य गीत प्रस्तुत है --

---

1- कविता कौमुदी, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० 69

"वा घड़ी सुब दिन जाणूंगी ।

मेरारी होलड़िया अपणा दादा कै घर जावैगा ।

दादी कै घर जावैगा री, दादी हंस हंस लाड लडावैगी ।"

इसमें प्रथम पंक्ति में 10 अक्षर हैं, द्वितीय में 18 और तृतीय में 21 अक्षर हैं ।

स्त्रियां इन गीतों को गाते समय छन्द भंग के दोष को बचाने के लिए कहीं ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बनाकर गाती हैं । यदि कहीं अक्षरों की कमी हुई तो उसे अपनी ओर से जोड़ लेती हैं, इस प्रकार छन्द पूर्ण लगता है और गेयता में बाधा उपस्थित नहीं होती ।

बिरहा :- बिरहा अहीरों का स्वच्छन्द छन्द है । डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने इस छन्द के विषय में लिखा है कि "इसे चारकड़िया भी कहते हैं क्योंकि इसमें चार पंक्तियां होती हैं । इसके प्रथम व द्वितीय चरण में 16 व द्वितीय और चतुर्थ चरण में 10 पंक्तियों का विधान है ।"[1] बांगरू लोकगीतों में यह छन्द मिलता अवश्य है, लेकिन इसमें पूर्णतः नियमों का पालन नहीं हुआ है --

"क्यूं जी कोय काली छटा डरपावणी,

धौली बरसण हार ।

क्यूं जी कोय कीघट छटा मारू डरामी,

किंघट बरसण हार ।"

इसमें प्रथम पंक्ति व तृतीय पंक्ति में क्रमशः 14 व 15 अक्षर हैं जबकि द्वितीय व चतुर्थ में क्रमशः 8 व 9 अक्षर हैं । डॉ0 ग्रियर्सन ने बिरहा का विधान बताते हुए लिखा है कि "पढ़ते समय ये बिरहे शायद ही छन्द के अनुसार मिलें, जब तक हम याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिये जाते हैं, और

1- भोजपुरी लोकगीत, भाग-1, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 447

लघु दीर्घ । इसमें कभी कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अंगूभूत नहीं होते ।"[1]

आगे उन्होंने कहा है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनके संबंध में शिथिल पड़ जाते हैं ।[2]

झूमर :-

जहां जीवन की आनन्दात्मक अनुभूति का वर्णन होता है वहां झूमर छन्द होता है । यह द्रुत लय में शीघ्रता के साथ गाया जाता है । इसकी प्रत्येक पंक्ति छोटी होती है । संभवत: झूम-झूम कर गाये जाने के कारण ही इसका नाम झूमर पड़ गया । बांगरू लोकगीतों में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं --

"फागण के दिन चार री सजनी,
फागन के दिन चार ।
मध जोबन आया फागन में,
फागण बी आया जोबन में ।
झाल उठै से मेरै मन में,
जिसका बार न पार री, सजनी
फागन के दिन चार ।
प्यार का चंदन मैहकण लाग्या,
गात का जोबण लवकण लाग्या,

---

1. In reading thom-Birhas- They will rarely be found to agree with this, unless we remember that many long syllables must be read as short that is one instant. Some times, there are superflous words which do not form part of the metre. JRAS (1885)

2. The peculiarities of all these songs is that the fetters of metre lie upon them very loosely indeed. JRAS(1885).

मस्ताना मन बेह्कण लाग्या;

प्यार करण नै त्यार री सजनी,

फागन के दिन च्यार ।

गाओ गीत मस्ती मैं भर कै,

जी जाओ सारी मर मर कै,

नाचण लागो छम छम करके,

उट्ठण धो झणकार री सजनी,

फागण के दिन चार।

चंदा पोंहचा आन सिखर में,

हिरणी जा पौंह्ची अम्बर में,

सूनी सेज पड़ी सै घर मैं,

साजन करैं तकरार री सजनी,

फागण के दिन च्यार ।"[1]

आल्हा छन्द :-

जहाँ वीरता और साहस का भाव प्रदर्शन होता है, वहाँ आल्हा छन्द की योजना की जाती है । इस छन्द को उच्च स्वर में गाया जाता है, और शब्दावली परूष होती है । प्रसिद्ध कवि जगनिक ने महोबे के अति प्रसिद्ध वीर आल्हा ऊदल की कथा 'आल्हा' नामक छन्द में लिखी थी । इस छन्द की लोकप्रियता के कारण कालान्तर में उस पुस्तक का नाम 'आल्हा' पड़ गया । तत्पश्चात् इस छन्द में लिखी कविता आल्हा नाम से जानी जाने लगी ।

1- हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ०246

इस छन्द में वीर रस का सुन्दर वर्णन होता है । हरियाणा में सैनिक वृत्ति को जीवन का उज्जवलतम एवं प्रमुख अंग स्वीकार किया जाता है, इसलिए वीर रस से युक्त गीत यहां अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है --

"सुमर निगाही सुरसरी तूं पाक इलाही
चलता भाऊ पेशवा नौबत बजवाई
गोले और बारूद की पेटी भरवाई
मजलों मजलों चालते ना ढील लगाई
दिल्ली में आये पेशवा होणी नैं चाही
गाजुद्दीन खां वजीर नै हिकमत बतलाई
जामा मैहजंत की लई सूध घर तोप चढ़ाई
अगन पलीतो दई छाप छूटी हड़खाई
गोला मार्‌या किले मैं कचहड़ी ढाई
दुज्ज मारया बुर्ज में उड़ गये सिपाही ।"

यद्यपि यह पूर्णत: आल्हा छन्द के अन्तर्गत नहीं आती तथापि वीरता का भाव और परूष शब्दावली इसे इस छन्द के समीप ले जाती है ।
इस प्रकार बांगरू लोकगीतों में जन-जीवन के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुख आदि जिन परिस्थित्तियों का वर्णन हुआ है, प्राय: उन्हीं के अनुकूल छन्दों का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार छन्द और भावों के सामंजस्य का लोक कवियों ने पर्याप्त ध्यान रखा है ।

---

§लय§

लय लोकगीतों का आधार है, इनकी आत्मा है । गीतों की पंक्तियों को बार-बार लयात्मक बनाने के लिए इनकी पुनरावृत्ति की जाती है । पुनरावृत्तियों का संयोजन इस प्रकार से किया जाता है कि इससे गीत के माधुर्य में उत्कर्ष आ जाय । कहीं-कहीं पूरी पंक्ति दोहराई जाती है तो कहीं आधी । इस आवृत्ति में एक लय, समगति होती है । लोकगीतों का वास्तविक आनन्द समवेत स्वर से लयपूर्वक गाने से हैं । गीतों को गाते समय उसे लयानुरूप बनाने के लिए स्त्रियां शब्दों को तोड़-मरोड़ देती हैं । "जब स्त्रियां सामूहिक रूप से किसी गीत को गाने लगती हैं तब वे लय के अनुसार किसी ह्रस्व स्वर को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर देती हैं । जहां किसी पंक्ति में अक्षरों की कमी होती है, वहां वे नये शब्दों को जोड़कर उनकी पूर्ति कर देती हैं । उनके कलकंठ से गीतों का लयपूर्ण गायन गीतों में जान-सी डाल देता है, जिसको सुनकर श्रोतागण आनन्द-सागर में डूबने लगते हैं । शुष्क से शुष्क गीतों में भी स्त्रियां लय द्वारा सरसता तथा मधुरता का संचार कर देती हैं ।"[1]

बांगरू लोकगीतों में लय बनाने के लिए जोड़े जाने वाले अक्षर अथवा शब्द ए जी, हां जी, अजी, म्हारे राम, म्हाराज आदि हैं । इनका प्रयोग पंक्ति के आदि, मध्य और अन्त में होता है । इनसे तुकबन्दी होती है और लय गीतों को कण्ठस्थ कराने में सहायक होती है ।

लोकगीतों की लय में विषय के अनुरूप भिन्नता पाई जाती है । कुछ गीत तार स्वर व कुछ मन्द स्वर में गाये जाते हैं । लम्बे गीतों को, जैसे बिरहा और आल्हा, उच्च स्वर से अथवा तार स्वर से गाया जाता है । लोक गाथाएं

1- लोक साहित्य की भूमिका, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 274

इसी के अन्तर्गत आती हैं। गूगन, किशन गोपाल, पूरन, जयमल, निहालदे आदि के गाने में तार स्वर प्रयुक्त होता है । स्त्रियों द्वारा गेय गीत मन्द अथवा विलम्बित स्वर में गाये जाते हैं । इनके विषय होलड़, बन्ना, बन्नी, सावन व फाल्गुन के गीत होते हैं । यद्यपि सामूहिक रूप से गाने के कारण ये कभी-कभी तार-स्वरता को छूने लगते हैं ।

निष्कर्ष :-

लोकगीतों में काव्य अपनी सम्पूर्ण छटा के साथ दृष्टिगोचर होता है । भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का वैभव युगपत् देखा जा सकता है । बांगरू लोकगीत भी इसके अपवाद नहीं हैं । इनमें भावों का प्राबल्य है, क्योंकि लोकगीत जनमानस के सरल हृदय से निकले स्वाभाविक उद्गार हैं, और कला इनका अनुगमन करती है ।

गीतिकाव्य के सभी प्रमुख तत्त्व बांगरू लोकगीतों में अपनी सम्पूर्ण छटा के साथ दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे आत्म-निष्टता ,सूक्ष्मता,भावावेगों की तीव्रता, मार्मिकता, भावों की अभिव्यंजना, संगीतात्मकता, प्रतीकात्मकता, प्रकृति से तादात्म्य एवं कल्पना की प्रमुखता आदि ।

काव्य को पढ़ने सुनने अथवा नाटक को देखने से जो अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होता है, वह रस कहलाता है । लोकगीतों में भावों से रस की धारा उत्पन्न होती है । बांगरू लोकगीतों में न्यूनाधिक सभी रसों का परिपाक मिलता है, किन्तु श्रृंगार और करूण रस की अधिकता है ।

किसी भी श्रृंगार रस युक्त रचना का आधार नायक व नायिका होती है । बांगरू लोकगीतों में अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन हुआ है ।

बांगरू लोकगीतों का भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है । इनमें संस्कृत,अरबी-फारसी व अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्द मिलते हैं । गीतों की भाषा में मुहावरों का प्रयोग यत्र तत्र हुआ है ।

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों द्वारा बांगरू लोकगीतों की भाषा समृद्ध हुई है । इन गीतों में शब्दालंकार व अर्थालंकार का प्रयोग हुआ है । यद्यपि ये अलंकार काव्य शास्त्र की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, क्योंकि लोकगीतकार ने इनकी योजना के लिए कोई प्रयास नहीं किया,तथापि

ये मिलते हैं । ये लोक से लिये गये हैं और मौलिक हैं ।

काव्य अनुभव की बिंबात्मक स्थिति है । इनके द्वारा कवि वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विचार, भाव आदि को साकार करता है । बांगरू लोकगीतों में यद्यपि बिंबों का यत्र तत्र प्रयोग मिलता है, लेकिन इन्हें लाने में लोककवि ने प्रयास नहीं किया । बांगरू लोकगीतों में दृश्य बिंब, गति बिंब, नाद बिंब, प्राकृतिक बिंब और लोक सांस्कृतिक बिंबों की अवस्थिति मिलती है ।

लोक व्यवहार में प्रतीकों का प्रयोग सदा से होता रहा है । बांगरू लोकगीतों में मुख्यत: प्राकृतिक प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, जीवन व्यापार संबंधी प्रतीक मिलते हैं । इन गीतों की शैली सरल है । अधिकतर इनमें वर्णनात्मक व भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । लेकिन इन दोनों की अवस्थिति न्यूनाधिक रूप से प्रत्येक लोकगीत में मिलती है । भाव और वर्णन का समन्वय अधिकतर लोकगीतों में मिलता है । किसी गीत में भाव प्रधान है तो किसी में वर्णन ।

छन्द योजना का काव्य व संगीत, दोनों दृष्टियों से अतुलनीय महत्व है । लोकगीतों की रचना चूंकि अशिक्षित व छन्दशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ लोगों द्वारा होती है, इसलिए इसमें मात्रा व गुणों के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता । ये लय प्रधान हैं और इसी आधार पर इनका वर्गीकरण किया गया है सोहर, बिरहा, झूमर और आल्हा लोक के प्रसिद्ध छन्द हैं । बांगरू लोकगीतों में भावानकुल छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

लय लोकगीतों का आधार है, इनकी आत्मा है । पुनरावृत्ति लय की वृद्धि में सहायक होती है । गीतों को लयात्मक बनाने के लिए स्त्रियां शब्दों को तोड़-मरोड़ देती हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बांगरू लोकगीतकार ने जहां भावों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है, वहां उसके गीतों में कलात्मकता का पूर्ण निदर्शन हुआ है ।

Bibliography

"सहायक ग्रंथ सूची"

क्र0सं0 (1)	पुस्तक का नाम (2)	लेखक/सम्पादक/संग्रहकर्ता (3)	प्रकाशक (4)	संस्करण (5)	वर्ष (6)
1-	अवधी का लोक साहित्य	डॉ0 सरोजनी रोहतगी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज, दिल्ली-6	प्रथम	1971
2-	अर्चना	निराला	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद	आठवां	सं0 2026 वि0
3-	अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ0 विद्याबिन्दु सिंह	परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम	1983
4-	आध्यात्मिकता और हरियाणवी संस्कृति बोध	डॉ0 रामकुमार भारद्वाज	चिन्ता प्रकाशन, पिलानी	प्रथम	1981
5-	कविता कौमुदी, भाग-5	रामनरेश त्रिपाठी	नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, बम्बई	प्रथम	1958
6-	कबीर	हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई	प्रथम	1968
7-	कनउजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिंब	डॉ0 सुरेश चन्द्र त्रिपाठी	रूपायन प्रकाशन, अशोक विहार, दिल्ली	प्रथम	1977
8-	कन्नौजी लोक साहित्य	डॉ0 सन्तराम अनिल	अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली	प्रथम	1975
9-	काव्य के रूप	गुलाब राय	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	प्रथम	1965
10-	काव्य मनीषा	डॉ0 भगीरथ मिश्र	हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ	प्रथम	1969
11-	कुल्लई लोक-साहित्य	पद्मचन्द कश्यप	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	प्रथम	1972
12-	गंगा धीरे बहो	देवेन्द्र सत्यार्थी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम	1959
13-	गढ़वाली लोकगीत: एक सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ0 गोविन्द चातक	विद्यार्थी प्रकाशन दिल्ली	प्रथम	1973

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
14-	गढ़वाली नारी - एक लोकगीतात्मक पहचान	डॉ० कुसुम नौटियाल	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम	1982
15-	गोरखबाणी	सं०-पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल	हिन्दी साहित्य सभा, प्रयाग	द्वितीय	
16-	ग्राम साहित्य, पहला भाग	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी मन्दिर, प्रयाग	प्रथम	1951
17-	ग्रामीण हिन्दी	डॉ०धीरेन्द्र वर्मा	साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद	नवीन संशोधित संस्करण	1950
18-	ग्राम साहित्य, तीसरा भाग	रामनरेश त्रिपाठी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	प्रथम	1953
19-	गीतावली, तुलसी कृत	सं०-रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी		
20-	घाघ और भड्डरी	सं०रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	द्वितीय	1949
21-	जातक, प्रथम, चतुर्थ एवं षष्ठ खण्ड	भदन्त आनन्द कौसल्यायन	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग		
22-	जायसी ग्रंथावली	सं-डॉ०मनमोहन गौत्तम	रीगल बुक डिपो, दिल्ली	नवीन संस्करण	1977
23-	जैन साहित्य का इतिहास	नाथूराम प्रेमी			
24-	पद्मावत-जायसी (द्वितीय आवृत्ति)	व्याख्याकार श्री वासुदेव शरण अग्रवाल	साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी	प्रथम	2018 विक्रम
25-	पालि जातकावलि	बटुकनाथ शर्मा (एम०ए०)	मास्टर खिलाड़ी लाल एण्ड सन्स वाराणसी	प्रथम	
26-	पालिभाषा का इतिहास	भरत सिंह उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	प्रथम	2008 विक्रमी
27-	बांगरू बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन	डॉ० शिवकुमार खण्डेलवाल	वाणी प्रकाशन दिल्ली	प्रथम	1980

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
28-	ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन	डॉ0 सत्येन्द्र	साहित्य रत्न भण्डार, आगरा	द्वितीय	1957
29-	बीजक कबीर साहब		श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई	प्रथम	1961
30-	बोलचाल	पं0अयोध्या-सिंह	हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस	द्वितीय	सं0 2023
31-	बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ0 विनोद तिवारी	साहित्यवाणी, इलाहाबाद	प्रथम	1979
32-	बुन्देलखण्ड की कहानियां	पं0 शिवसहाय चतुर्वेदी	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	प्रथम	1974
33-	भोजपुरी ग्रामगीत, भाग-1	डॉ0कृष्णदेव उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	द्वितीय	सं02000 विक्रमी
34-	भारतीय लोक साहित्य	श्याम परमार	राजकमल पब्लिकेशन्स लि0बम्बई	प्रथम	1954
35-	भोजपुरी लोकगाथा	डॉ0 सत्यव्रत सिन्हा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	प्रथम	1962
36-	भोजपुरी लोक साहित्य	डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय	भारतीय लोक साहित्य शोध संस्थान कार्यालय इलाहाबाद	प्रथम	
37-	भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी खण्ड-1	डॉ0राम विलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम	1979
38-	भारतीय समाज, संस्कृति और संस्थाएं	कैलाशनाथ शर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम	1982
39-	मैथिली लोकगीतों का अध्ययन	डॉ0 तेजनारायण पाल			
40-	मालवी लोकगीत	डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय	मंगल प्रकाशन, जयपुर।	प्रथम	1975
41-	धरती गाती है	देवेन्द्र सत्यार्थी	राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0दिल्ली	प्रथम	1962
42-	रढियाली रात, भाग-1	झवेरचन्द मेघावी	गुर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय अहमदाबाद	प्रथम	1940

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
43-	रश्मिबंध	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली	चतुर्थ	1963
44-	राजस्थानी लोकगीतों में बारहमासा	प्रो॰ सूर्यकरण पारीख	हिन्दी साहित्य सभा, प्रयाग		
45-	राजस्थानी कहावतें- एक अध्ययन	कन्हैयालाल सहल	हिन्दी मन्दिर, प्रयाग	प्रथम	सं0 2006
46-	राजस्थानी लोक साहित्य	प्रो0 सूर्यकरण पारीख	हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग	प्रथम	सं0 1999
47-	रस मीमांसा	आ॰ रामचन्द्र शुक्ल, सं0 विश्व नाथ प्रसाद मिश्र	काशी नागरी प्रचारिणी सभा	प्रथम	
48-	रस सिद्धान्त	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	प्रथम	1980
49-	रीतिकाव्य की भूमिका	डॉ0 नगेन्द्र	गौतम बुक डिपो, दिल्ली	प्रथम	1949
50-	रसिकप्रिया	केशवदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	पंचम	सं॰ 2007 वि
51-	रामचरित मानस	गो॰ तुलसी दास (मूल गुटका)	गीता प्रेस, गोरखपुर	प्रथम	
52-	लोकायन	डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय	मंगल प्रकाशन, जयपुर	प्रथम	1974
53-	लोक साहित्य, एक निरूपण	श्री रामचन्द्र बोड़ा	नमिता प्रकाशन औरंगाबाद	प्रथम	1971
54-	लोक कथा विज्ञान	श्री चन्द जैन	मंगल प्रकाशन, जयपुर	प्रथम	1977
55-	लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या	श्रीकृष्ण दास	साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद	प्रथम	1956
56-	लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन	डॉ0 कुलदीप	प्रगति प्रकाशन, आगरा	प्रथम	1972
57-	लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ0 विद्या चौहान	प्रगति प्रकाशन, आगरा	प्रथम	1972

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
58-	लोक साहित्य विज्ञान	डॉ0 सत्येन्द्र	शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रा• लि• आगरा	प्रथम	1962
59-	लोक साहित्य का अध्ययन	त्रिलोचन पाण्डेय	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम	1978
60-	लोक साहित्य की भूमिका	डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय	साहित्य भवन प्रा0 लि0इलाहाबाद	प्रथम	1957
61-	लोक साहित्य	श्री झवेर चन्द मेधाणी	गुर्जरग्रंथ रत्न कार्यालय अहमदाबाद	द्वितीय	1971
62-	लहर	जयशंकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मन्दिर- वाराणसी	प्रथम	
63-	श्रीमद्भागवद्गीता		गीताप्रेस गोरखपुर	28वां	सं0 2037 विक्रमी
64-	वेद धरातल	गिरीशचन्द्र अवस्थी			
65-	विवेचनात्मक गद्य	महादेवी वर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम	1978
66-	वैदिक साहित्य और संस्कृति	बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर, काशी	द्वितीय	1968
67-	स्मारक ग्रंथ	बालमुकुन्द गुप्त			
68-	सूर संचयन	सं0 डॉ0 मुंशीराम शर्मा	साहित्य भवन, प्रा0लि0 इलाहाबाद	प्रथम	
69-	सिद्ध साहित्य	धर्मवीर भारती	किताब महल, इलाहाबाद	प्रथम	1970
70-	हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य	डॉ0शंकरलाल यादव	हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद	प्रथम	1965
71-	हिन्दी साहित्य की भूमिका	हजारी प्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0नईदिल्ली	प्रथम	1979
72-	हरियाणा गौरव गाथा	उदयभानु हंस	शिशिर प्रकाशन, भिवानी	प्रथम	1981
73-	हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन			
74-	हरियाणा के लोकगीत	एम•एस•रंधावा	अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली		

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
75-	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ0रामकुमारवर्मा	रामनारायण लाल प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता इलाहाबाद	द्वितीय	1948
76-	हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास	डॉ0 उदयनारायण तिवारी	भारती भण्डार, प्रयाग	प्रथम	2012 विक्रमी
77-	हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षोडश भाग	सं• महापंडित राहुल सांकृत्यायन	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	प्रथम	सं02017 विक्रमी
78-	हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 व 2	सं• धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञान मण्डल प्रकाशन लिमिटेड, वाराणसी	प्रथम	आश्विन सं0 2020
79-	हरियाणा: एक सांस्कृतिक अध्ययन	देवीशंकर प्रभाकर	उमेश प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम	1983
80-	हिन्दी लोक साहित्य में हास्य और व्यंग्य	डॉ0 बैरिस्टर सिंह यादव	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम	1979
81-	हिन्दी लोक साहित्य	डॉ0 गणेशदत्त सारस्वत	विद्या विहार, कानपुर	प्रथम	1981
82-	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी	छठा	सं0 2007 वि0
83-	हरियाणा के लोकगीत	राजाराम शास्त्री	हरियाणा लोक सम्पर्क प्रकाशन		
84-	हिन्दू संस्कार	राजबली पाण्डेय	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी	प्रथम	1957
85-	हिन्दू सामाजिक संस्थाएं	शिवस्वरूप सहाय	किताबमहल, इलाहाबाद	प्रथम	1973

संस्कृत ग्रंथ

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1-	ऋग्वेद संहिता	भाष्यकार-पं0जयदेव शर्मा	आर्य साहित्य मण्डल लि0, अजमेर	प्रथम	सं02000 विक्रमी
2-	निरुक्त (द्वितीय भाग)	यास्क	गुरु मण्डल ग्रन्थ माला, कलकता	प्रथम	1952
3-	ऐतरेय ब्राह्मण		आनन्दाश्रम, संस्कृत सिरीज़, पूना	द्वितीय	1931
4-	जैमिनीय ब्राह्मण	सं॰ डॉ0रघुबीर तथा लोकेशचन्द्र	सरस्वती विहार, नागपुर	प्रथम	1954
5-	तैत्तरीय ब्राह्मण		आनन्दाश्रम, संस्कृत सिरीज़, पूना		
6-	शतपथ ब्राह्मण	सं0वंशीस्धर शास्त्री	अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, काशी	प्रथम	1997 विक्रमी
7-	पारस्कर गृह्यसूत्र माध्यन्दिन शखीयम्	टिप्पणीकार-विद्याधर शर्मा	मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, बनारस	प्रथम	1995 विक्रमी
8-	मनुस्मृति	सं0पं0तुलसीराम शर्मा	स्वामीप्रेस, मेरठ	11वां	1926
9-	अभिज्ञानशाकुन्तलम	कालिदास	चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, बनारस	द्वितीय	सं02009 वि0
10-	रघुवंश	कालिदास	चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, बनारस		
11-	काव्यमीमांसा	राजशेखर	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना	प्रथम	1954
12-	महाभारत	महर्षि व्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर		1956-58
13-	पातंजलमहाभाष्य, नवाह्निकरूप		निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	तृतीय	1932
14-	बाल्मीकि रामायण	बाल्मीकि	गीताप्रेस गोरखपुर		1960
15-	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ, व्याख्याकार-डॉ0 सत्यव्रतसिंह	चौखम्बा विद्या भवन चौक, वाराणसी		1957

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
16-	हर्षचरित	बाणभट्ट व्याख्याकार जीवानन्द	आशुबोध विद्याभूषण तथा नित्यबोध		1918
17-	पाणिनी अष्टाध्यायी				
18-	नाट्य शास्त्र	भरतमुनि, अनु० भोलानाथ शर्मा	सां०निकेतन, कानपुर		
19-	सिद्धान्त कौमुदी		व्यंकटेश्वर प्रेस, बम्बई		

ENGLISH BOOKS

No.	Title	Author	Publisher	Year
1.	Ozark Folksongs in 4 Volumes	Vance Randolph	State Historical Society of Missouri, Columbia	1946-50
2.	Humour in American Songs			
3.	The English Ballads	Robert Gracks		
4.	Primitive Culture (2 Vols)	Taylor E.B.		
5.	Anthropology (Vol. 1-2)	Taylor E.B.		
6.	A History of Indian Literature	Winternitz		
7.	The Legends of Punjab	Temple (RC)		1885
8.	A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and the NWFP Tribes (Lahore)	Rose (H.A.)		1846
9.	The study of Folklore	Prof. Alen Dundes		1965
10.	Handbook of Folklore	Revised and Enlarged by C.S.Burn, London		1914
11.	History of Indian Literature, Vol.-2	Morris Winternitz		
12.	Old English Ballads	Edited by F.B. Gummere with a lender introduction and notes	Athenaeum Press Series Ginn & Co. N.Y. Price 80 cents	

13. English and Scottish Popular Ballads — Edited by Helen Child Sargent an George.L.Kittredge — Students Cambridge edition in one Volume; Houghton Miffin Co.

14. The English Ballad — Dr.Murry

15. The Golden Bough (12 Vols) — Frazer (J.G.) — (Abridged edition in one Vol) — 1907

16. A World of Imagery — Stiphon J. Brown

17. Poetic Image — C.J.Levis

18. Linguistic Survey of India, Vol.1.9. — Grierson (G.A.) — First edition

: कोष :

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1-	हिन्दी शब्द सागर		नागरी प्रचारिणी, सभा, बनारस	प्रथम	1929
2-	हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 व 2	धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञान मण्डल प्रकाशन लिमिटेड, अजमेर	प्रथम	अश्विन सं० 2020
3-	अंग्रेजी हिन्दी कोश	फादर कामिल बुल्के	एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली	तृतीय	1981
4-	अभिधान रत्नमाला कोष हलायुध	जयशंकर जोशी	प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा, सरस्वती भवन, वाराणसी	प्रथम	शकाब्द 1879
5-	बृहत्कथा कोश	हरिषेण	सिंधी ग्रंथमाला, बम्बई		
6-	शब्द कल्पद्रुम	राजा राधाकान्त देवबहादुर	चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ आफिस, वाराणसी-1	प्रथम	1961
7.	Oxford Dictionary of English Proverbs		Oxford University Press, London	First	1936
8.	Chambers Encyclopedia, Vol.2.		William and Robert Chambers Ltd., Adenburg	First	1906
9.	Encyclopedia Britanica, Vol. 9				

10. The Encyclopedia Americana, Vol.21

11. The Encyclopedia of The Social Science, Vol. V-VI — Editor in Chief Edition - RA Silidgeman the Macmillan No, New York.

पत्रिकायें

1- हरियाणा संवाद पत्रिका, मासिक, लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा

2- आलोचना, त्रैमासिक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

3- जनपद ।, काशी विश्वविद्यालय, काशी

4- हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग

5- हिन्दुस्तान, साप्ताहिक, दिल्ली

6- धर्मयुग, साप्ताहिक, ~~दिल्ली~~ बम्बई

7- हिन्दुस्तानी, त्रैमासिक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

8- ~~हिन्द~~ सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

9- दस्तावेज़ - गोरखपुर।

Gazetteers of Districts

1. ROHTAK
2. HISSAR
3. DELHI
4. KARNAL
5. JIND.

LAXMI BENIWAL.
~~7th JUNE 1985.~~
1. 7. 85